सेठ श्री मोतीशा

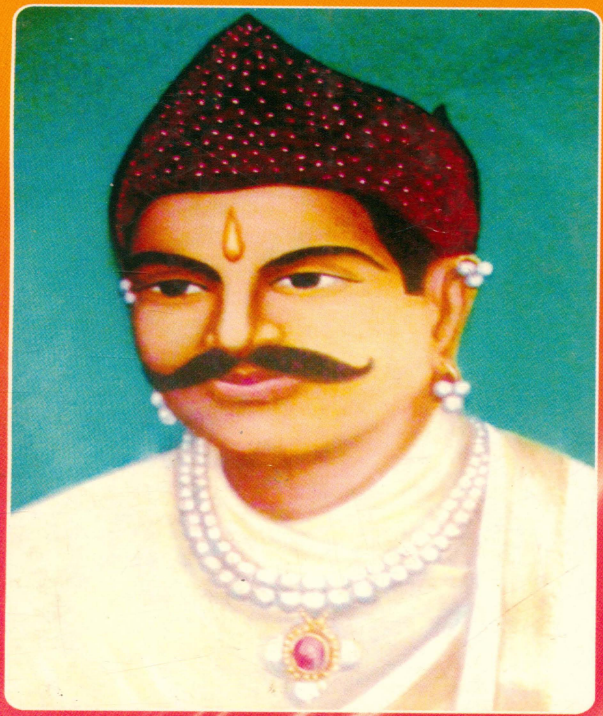

साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री

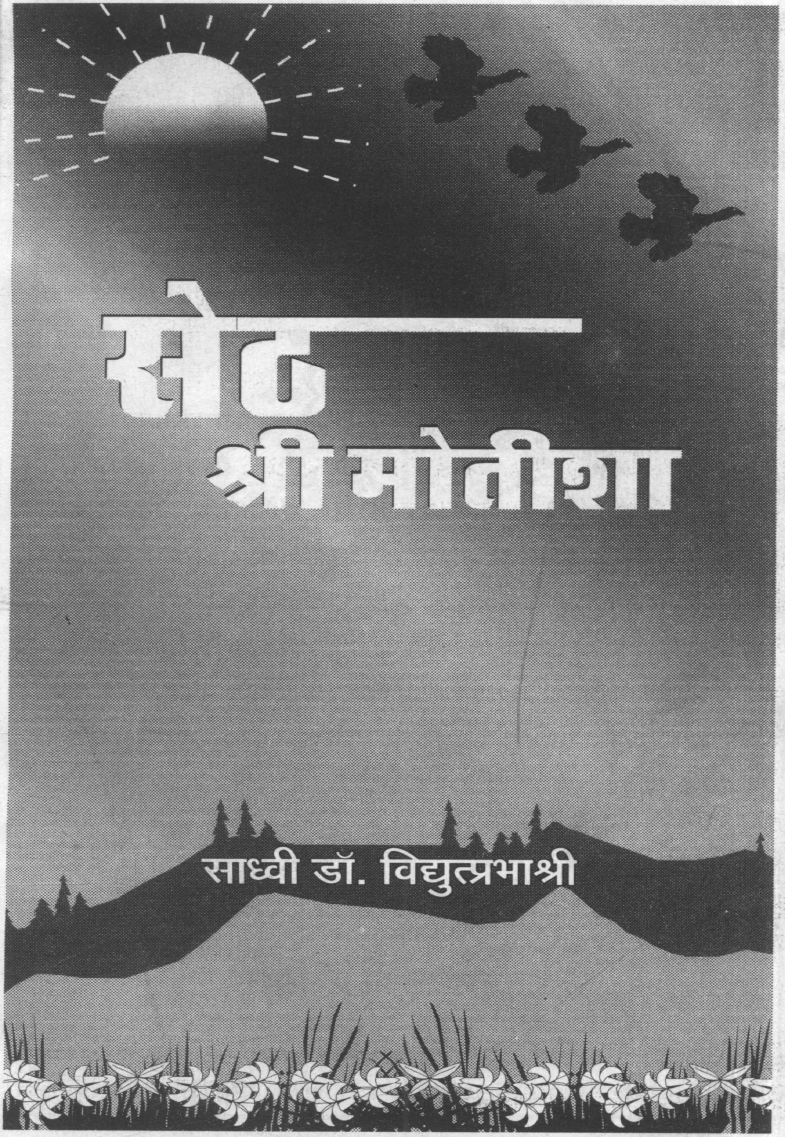
सेठ
श्री मोतीशा
साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री

आशीर्वाद
पू. प्रवर्तिनी
स्व. श्री प्रमोद
श्रीजी म.सा.

लेखन
साध्वी
डॉ. विद्युत्प्रभाश्री

संपादन
गणि
मणिप्रभ

मूल्य
60 रूपये

प्रेरणा
हरखचंदजी
नाहटा

-: तृतीय संस्करण :-
अक्षय तृतीया, वि. २०६६
सन् 2009, अप्रेल

-: मुद्रक :-
श्री एस. कम्प्युटर सेन्टर, जोधपुर
फोन : 0291-2434782

-: प्रकाशक :-
श्री रतनमालाश्री प्रकाशन
श्री जिनकांतिसागर सूरि स्मारक ट्रस्ट
जहाज मंदिर तीर्थ, मांडवला-343042, जिला-जालोर (राज.) फोन : 02973-256107
e-mail : jahaj_mandir@yahoo.co.in, www.jahajmandir.com

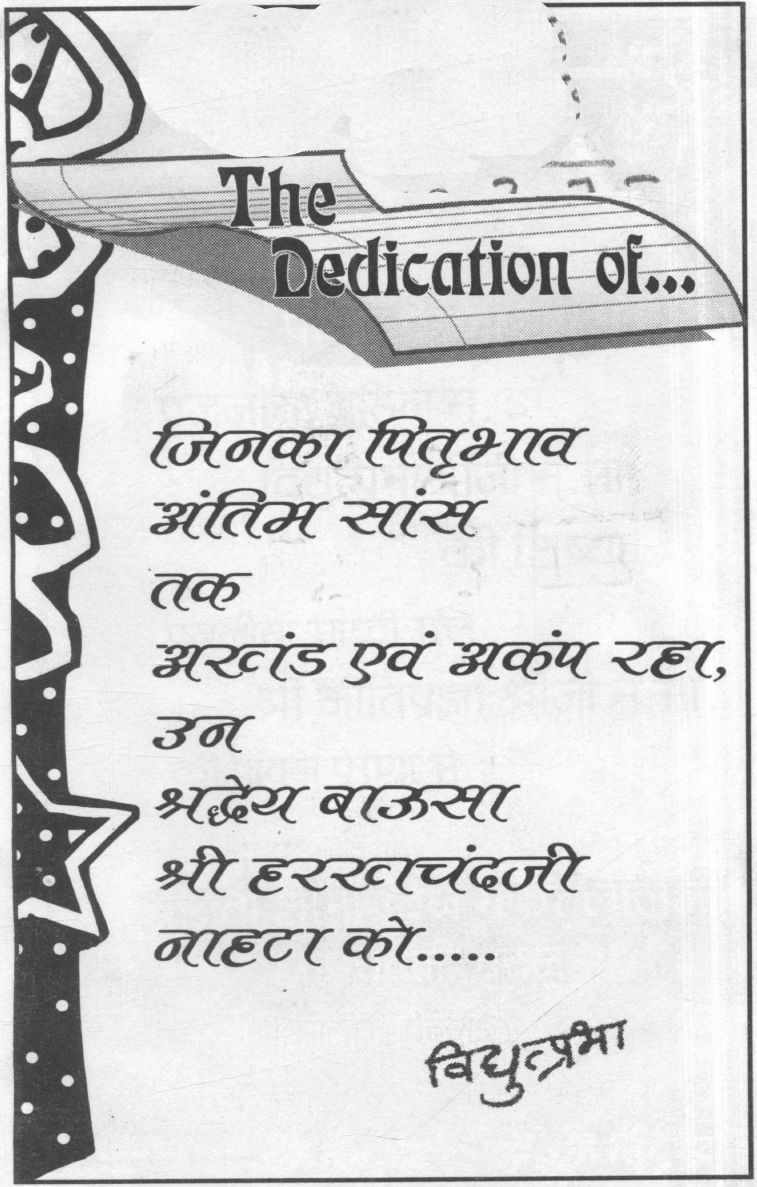

The Dedication of...

जिनका पितृभाव
अंतिम सांस
तक
अखंड एवं अकंप रहा,
उन
श्रद्धेय बाऊसा
श्री हरखचंदजी
नाहटा को.....

विद्युत्प्रभा

पावन प्रेरणा

पूजनीया बहिन म. डॉ.
विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा.
की शिष्या

पूजनीया साध्वी रत्न
श्री नीतिप्रज्ञा श्रीजी म.सा.
की पावन प्रेरणा से

श्रीमती शोभागबेन मफतलालजी
रूपचंदजी चंदन
(सांचोर-चेन्नई)

अर्थ सहयोग

स्व. श्री रूपचन्दजी
गुणेशमलजी चन्दन
साचोर-सत्यपुर (राज.)

स्व. श्रीमती केशीदेवी
रूपचन्दजी चन्दन
सांचोर - सत्यपुर (राज.)

श्री मफतलालजी
रूपचन्दजी चन्दन
सांचोर-चैन्नई

श्रीमती शोभागबेन
मफतलालजी चन्दन
सांचोर-चैन्नई

वर्षीतप आराधना एवं
वीश स्थानक तप आराधना
की पूर्णाहुति के उपलक्ष्य में

श्रीमती शोभागबेन मफतलालजी
रूपचंदजी चंदन (सांचोर - चैन्नई)

लाभार्थी की हृदयभावना

गृह मंदिर में बिराजित
शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान

आज हमारे हृदय में भारी आनंद है। प्रस्तुत प्रकाशन में अर्थ सहयोग का अपूर्व लाभ हमें प्राप्त हुआ है। यह हमारे परिवार के पूर्वजों का पुण्य हैं।

आज संस्कार देने वाले स्व. दादाजी श्री रुपचन्दजी गुणेशमलजी चन्दन एवं स्व. दादीजी श्रीमती केशीदेवी रुपचन्दजी चन्दन सहज ही स्मृतिपथ में आते हैं। जिन्होंने अपने जीवन में अट्ठाई, उपधान, बरसीतप आदि अनेक छोटी–बड़ी तपस्या एवं शत्रुंजय, गिरनार, नाकोडा, सम्मेतशिखर, शंखेश्वर, कुलपाकजी आदि तीर्थों की यात्रा की थी। जीवित अवस्था में ही अट्ठाई महोत्सव सांचोर नगर में किया था। इन दोनों पूज्यों के दिये संस्कारों के शुभ फल स्वरुप ही हमारे पिताश्री मफतलालजी रुपचन्दजी चन्दन एवं मातुश्री सौभागदेवी मफतलालजी चन्दन के जीवन में धर्मभावना की वृद्धि एवं सुकृतों की मानो एक हारमाला बन गई है।

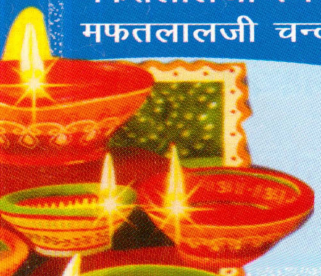

परस्परोपग्रहो
जीवानाम्

पिता श्री
एवं मातुश्री ने
अपने जीवन में
शत्रुंजय की नव्वाणुं
यात्रा, सम्मेतशिखर, राणकपुर,
राजगृही, पावापुरी, जैसलमेर, गिरनार, नाकोड़ा,
तारंगा, कुलपाकजी, आबू आदि प्रायः बहुत सारे तीर्थो
की जीवन में भावपूर्ण यात्रा की है एवं पिताश्री ने
शंखेश्वर से शत्रुंजय तीर्थ के छः रि पालक संघ की
यात्रा की है।

पिताश्री एवं मातुश्री ने अपने जीवन में अट्ठाई,
उपधान, दो वरसीतप, सिद्धितप, ज्ञानपंचमी,
पौषदशमी, नवपद औली, वीशस्थानक, निगोद
निवारण तप, वर्द्धमान तप की 26 ओली, मौन एकादशी
(चालू) एवं पावापुरी तीर्थ भूमि में मासक्षमण किया।
मातुश्री ने इसके अलावा तीन वर्षीतप, 81 आयंबिल,
मासक्षमण, वर्धमान तप की 28 ओली तथा मोक्षदण्डतप
एवं श्री सांचोर तीर्थ से शत्रुंजय
तीर्थ की छ'री पालक
संघ यात्रा
की है।

जीवन के अन्य सुकृत

भरुचतीर्थ में मूलनायक श्री मुनिसुव्रतस्वामी की दाहिनी ओर श्री चन्द्रप्रभस्वामीजी की प्रतिष्ठा, कुलपाकजी में चन्द्रप्रभस्वामी की शाश्वती ध्वजा का लाभ, कर्णावती–सेटेलाईट में श्री गौड़ीपार्श्वनाथ प्रेरणातीर्थ में श्री चन्द्रप्रभस्वामीजी की डेरी एवं ध्वजा का लाभ, डीसा जैन बोर्डिंग के पास चन्द्रलोक सोसायटी में जिनालय के पूरे चैत्य का अभिषेक, कर्णावती में शाहिबाग–शिलालेख सोसायटी में अभिनन्दनस्वामी जिनालय एवं प्रतिष्ठा महोत्सव के मुख्य लाभार्थी, सिद्धाचल में नव्वाणु यात्रा के सहआयोजक, मद्रास पोरूर में मिनी पालीताणा श्री आदिनाथ जिनालय के शिलान्यास में एक शिला का लाभ, श्री अरावली सोयायटी, ईडर तीर्थ में अंजनशलाका प्रतिष्ठा महोत्सव में प्रभु के माता पिता बनने का लाभ, सांचोर में तपागच्छ महावीरस्वामी जिनालय में शिलान्यास के अवसर पर एक शिला का लाभ, ऐसे कई सुकृतों का लाभ लिया है।

उपरोक्त सभी सुकृत कार्यों में हमारे बडे पापा श्री मनोहरमलजी एवं चाचाजी श्री फूलचन्दजी का पूरा पूरा सहयोग मिला है।

सदा धर्म को अग्रसर रखने वाले धर्मदाता पिताश्री एवं मातुश्री के चरणों में नत मस्तक नमन करते हुये एक ही विज्ञप्ति है कि वे अपने जीवन को पावन कर हमारे में भी कुछ अच्छे संस्कारों का सिंचन कराने में उद्यमवंत बनें। एवं आगे भी ऐसे सुकृतों में सहभागी होकर धर्म के मर्म को समझकर हम धर्मनिष्ठ बने, ऐसा मंगल आशीष प्रदान करें।

निवेदक

सुपुत्र : दीपक,अशोक,भरत पुत्रवधू : आरती,गीता,शीतल

पौत्र : गौरव, मानव पौत्री : दिव्या, निशी

मे. आर. अेम. कम्प्युटर्स प्रा. लि.

शोप नं. ३१, बी.जी.पी. मॉल, ग्राउन्ड फ्लोर नं. १७, अन्ना सलाई (माउन्ट रोड़), चेन्नई-६००००२

मो. 098840 38111 / 098840 73111 / 098840 74111 / 98333 73430

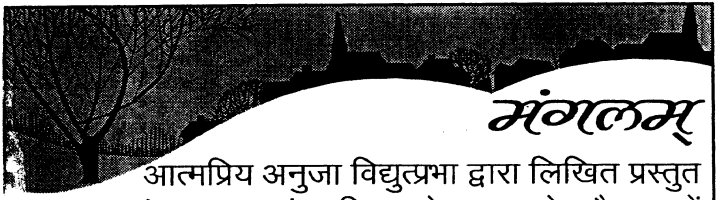

मंगलम्

आत्मप्रिय अनुजा विद्युत्प्रभा द्वारा लिखित प्रस्तुत उपन्यास संघ, गच्छ एवं साहित्य को अमूल्य देन है। उसमें स्वाभाविक लेखन क्षमता है। प्रारम्भ से ही वह भावुक एवं कल्पनाप्रवण है अतः उसके लेखन में जहाँ उसकी दार्शनिक विद्वत्ता टपकती है, वहीं हृदय को स्पर्श करती कोमलता एवं कल्पना भी स्पष्टतः दृष्टिगत होती है।

विगत वर्षों से वह लेखन से प्रायः उदासीन थी। विभिन्न प्रसंगों पर मैं संकेत भी करता रहता था कि वह निरंतरता बनाए रखें, परन्तु उसका रटा–रटाया एक ही उत्तर था–पहले शोध! अनुजा होने के कारण वह तो फिर भी आदेशात्मक भाषा का प्रयोग कर लेती है पर मैं उसके प्रति आदेशात्मक भाषा के प्रयोग में संकोच करता हूँ।

गत वर्ष संघ गौरव श्री मोतीशा के लेखन में उसे सतत् प्रयासरत देखा तो मेरा मन तृप्ति के गौरव से भर गया। उसने भाईजी की आदेशात्मक प्रेरणा को लक्ष्य करके गच्छ और साहित्य को एक सुरुचिपूर्ण पुस्तिका प्रदान की है। मैं भाईजी के व्यक्तित्व के ताज में प्रशंसा के कोई मोती टांकू, यह उनकी आत्मीयता से मेरी प्रवंचना होगी। उनकी स्नेहमयी आत्मीयता के निर्देशों से विद्युत्प्रभा का व्यक्तित्व और कृतित्व निखरे, यह मेरी शुभाशा है।

– गणि मणिप्रभ

स्वप्न–साकार बना

स्व–गोत्रीय, प्रखर संकल्प के धनी, दृढ़ प्रतिज्ञ मोतीशा का तेजस्वी व्यक्तित्व मेरे जीवन का आदर्श है। आज भी जब सिद्धाचल की यात्रा पर जाता हूँ तो तीर्थाधिपति श्री आदिनाथ के दर्शन के साथ ही मोतीशा की स्मृति सहज ही में हो आती है। तीर्थयात्रियों की राह में आने वाली बाधाओं को समाप्त करने में उन्होंने जो प्रयास किए, वे आज के वैज्ञानिक और यांत्रिक युग में भी दुःसाध्य प्रतीत होते हैं। अपने प्रखर संकल्प व आस्था के आधार पर उन्होंने उस मानवीय युग में भी कुंतासर की दुर्गम और भयंकर खाई को भरवाकर नवीन टूंक का निर्माण करवाया। यही टूंक उनके जीवन की स्वर्णिम और अमर देन है।

इस युग में मोतीशा ने अपनी प्रबंधन क्षमता के आधार पर जिस प्रकार से टूंक कार्य को अंजाम दिया है, वह अभिनंदनीय एवं स्तुत्य है। इस कार्य को उन्होंने अपनी प्रकृष्ट भक्ति के बल पर तो सम्पन्न करवाया ही है, साथ ही उन्हें अपने इष्टबल का भी पूरा सहयोग प्राप्त था। विराट कार्य बिना इष्टबल के नामुमकिन है।

मैं वर्षों से चाहता था कि मोतीशा के आदर्श चरित्र को परिष्कृत भावशैली में जन–जन तक पहुँचाया जाय। जब

जन्मदिन को लक्ष्य कर साध्वी
विद्युत्प्रभाजी ने ऐसा ही कुछ प्रसंग छेड़ा
तो यकायक मैं अपनी भावनापूर्ति का लोभ संवरण
नहीं कर पाया। मैं उनकी साहित्यिक प्रवृत्ति से अपरिचित
नहीं था। उनकी भावपूर्ण लेखन शैली ने मुझे प्रभावित
किया था, परन्तु विगत वर्षों से उनका लेखन बंद प्रायः
था। मैं चाहता था, उनका लेखकीय व्यक्तित्व पुनः जगे।
इसी मंगल उद्देश्य से मैंने उन्हें मोतीशा के लेखन का
निर्देश दे दिया। निर्देश देते वक्त वे सम्पूर्णतः स्वस्थ थी।
पर धीरे–धीरे अपनी ही लापरवाही से वे अस्वस्थ हो
गयी। कार्यक्रमों की व्यस्तता भी बढ़ती चली गयी थी। मैं
उनका प्रतिभा का विकास चाहता था। पर इसके लिए वे
मानसिक रूप से तनावग्रस्त रहे और स्वास्थ्य के मूल्य पर
इसक़ा लेखन करे, यह मुझे कतई अभीष्ट नहीं था। मैंने
रोकने का प्रयत्न भी किया पर उनकी प्रतिबद्धता कायम
थी। मैं पश्चात्ताप से भर जाता, जब उन्हें विश्राम के स्थान
पर निर्देश पूर्ति में संलग्न देखता।

उनके लेखन की गति से मुझे विश्वास था कि
मोतीशा का लेखन सम्पूर्ण होगा पर लेखन के बाद प्रारंभ
हुई उनकी व्यस्तता से सशंकित भी था पर यकायक

उन्होंने 18 जुलाई को जब पाण्डुलिपि का नायाब तोहफा मुझे सौंपा तो आनंद और गौरव के हर्षाश्रु से मैं नहा उठा। निःसंदेह जन्मदिन का जो तोहफा मुझे इस बार प्राप्त हुआ था, वह अभूतपूर्व, ऐतिहासिक और बेशकीमती था। अनेकों उपहार आज तक प्राप्त किए हैं, भविष्य में भी होंगे पर इसका कोई सानी नहीं हो सकता। यद्यपि यह मुझे दिया गया उपहार था पर इसकी उपयोगिता सार्वजनिक थी। यद्यपि इसका लेखन मेरी भावना से हुआ था पर इसी बहाने एक लौहपुरुष/एक स्वप्न दृष्टा के कर्तृत्व से साहित्य जगत रूबरू होगा, यह निःसंदेह था। एक पुत्री का पिता को इससे अधिक मूल्यवान तोहफा असंभव था।

वह क्षण अनिर्वचनीय था, जब अगणित परेशानियों से जूझते हुए भी उन्होंने इसे लिखकर अपने स्नेहपूर्ण कर्त्तव्य का निर्वाह किया था। पाण्डुलिपि को ग्रहण करते हुए मैं भावातिरेक से भर उठा। वर्षों की कामना पुत्री के माध्यम से पूर्ण बनी देखकर अव्यक्त अनुभूति से रोयां–रोयां खिल उठा, साथ ही मेरे मस्तिष्क में सांचोर का प्रतिष्ठा प्रसंग उभर आया। मैं कोटा दादावाड़ी शिलान्यास प्रसंग पर प्रथम बार उनसे मिला था तो उनके

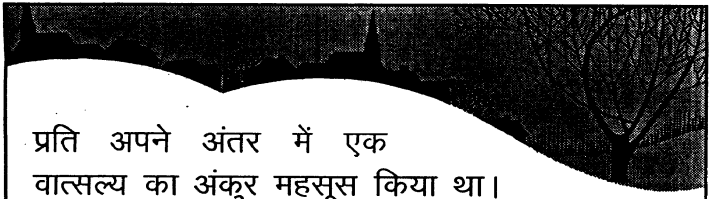

प्रति अपने अंतर में एक
वात्सल्य का अंकुर महसूस किया था।
वही वात्सल्य का अंकुर विशाल वटवृक्ष बनकर
सांचोर में बेटी के संबोधन और स्वरूप में स्थापित हो गया था।

मैं अभिभूत था पाण्डुलिपि देखकर! जिस कौशल और पैनी क्षमता से मोतीशा की जीवनी को उन्होंने लिखा, वह मेरे लिए व संघ के लिए गौरवपूर्ण है। निःसंदेह वे बहुआयामी है। वे भावों से संवेदनशील, विचारों से तेजस्वी और वक्तृत्व में प्रखर हैं। लेखन और वक्तृत्व, दोनों का वे दुर्लभ संयोग हैं। उनका सरल, सहज, भावुक और मासूम व्यक्तित्व ही उनके प्रति मेरे स्नेह का आधार बना है।

उनके जीवन और आत्म विकास में निरंतरता बनी रहे, मैं उसमें कुछ सहभागिता निभा सकूँ, इन्हीं मंगलकामनाओं के साथ!.....

— हरखचंद नाहटा

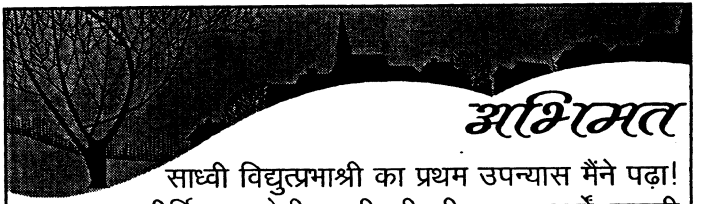

अभिमत

साध्वी विद्युत्प्रभाश्री का प्रथम उपन्यास मैंने पढ़ा! लगा–एक कीर्तिपुरुष मोतीशा की जीवनी व सद्कार्यों, उनकी धार्मिक निष्ठा, धर्म निरपेक्षता के बारे में कई जानकारियाँ देता है यह!

जीवनी परक यह उपन्यास मनुष्य के संघर्ष, उतार–चढ़ाव और आर्थिक स्थितियों के प्रभावों से संचालित जीवन को आध्यात्मिक अनुशासन का संदेश कई स्थलों पर देता है, जो आज की भौतिक भागमभाग में एक स्वस्थ चिंतन पथ है। रचना में कई चरित्र ऐसे हैं, जो मानवीय रिश्तों को अत्यंत संवेदनशीलता से उकेरते हैं। चूँकि लेखिका साध्वी हैं, अतः जैन धर्म के उद्देश्यों तथा पद्धतियों को आत्मिक स्तर पर उद्वेलित करके मार्गदर्शक का काम करती हैं। 'कुत्तों की रक्षा' के अभियान के सूत्रधार बनकर मोतीशा तथा उसकी रक्षार्थ एक संगठन बनाकर, साथ ही गोस्वामी जी का सहयोग इसमें लेकर धार्मिक विराटता को बताया गया है।

वस्तुतः यह उपन्यास पारिवारिक सुख–दुःख और धन के सदुपयोग की संत–दृष्टि से व्याख्या करता है। यही कारण है कि आधुनिक कथा साहित्य की सर्वांग दृष्टि व विसंगतियां इसमें नहीं है। श्रद्धालु पाठकों को यह उपन्यास प्रेरणादायक लगेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
विख्यात लेखक

आशालक्ष्मी,
नया शहर
बीकानेर – 334 004 (राज.)

स्वकथ्य

आज स्वप्न दृष्टा मोतीशा के जीवन का औपन्यासिक शैली में लोकार्पण करते हुए मैं आनंद एवं गौरव से भर रही हूँ। मोतीशा एक व्यक्ति नहीं अपितु स्वयं में एक महान इतिहास है। इनके जीवन में संस्कारों का बीज जन्मजात था, जिसे माता–पिता ने अपने आचरण से पुष्पित और पल्लवित किया था। संस्कारों का विपुल वैभव उनके पास होने के कारण वे सुख–दुःख दोनों में मुस्काते रहे। अगर कभी विचलित भी हुए तो उन्हें पुण्य संयोग से सारा परिवार ही ऐसा मिला था कि उनके व्यथित प्राणों पर मल्हम लगा देते और पुनः उनकी जीवन गाड़ी दुगुनी रफ्तार से धर्म और साधना की पटरी पर दौड़ पड़ती।

उनके समकालीन उनसे भी धनाढ्य थे पर जिस कार्य को मोतीशा ने सम्पन्न किया था, वैसा करना तो दूर, करने की कल्पना भी संभव नहीं थी। मैंने अनेकों बार यह लोकोक्ति सुनी है कि जो साहस के साथ आगे बढ़ता है, भगवान भी उसको सहयोग करते हैं। यह लोकोक्ति सत्य के समीप है, क्योंकि संकल्प की ऊर्जा असीम होती है। उस संकल्प से उद्‌भूत ऊर्जा मानव को इतना सहयोग देती है कि लोग उसे भगवान कहकर संबोधित कर देते हैं।

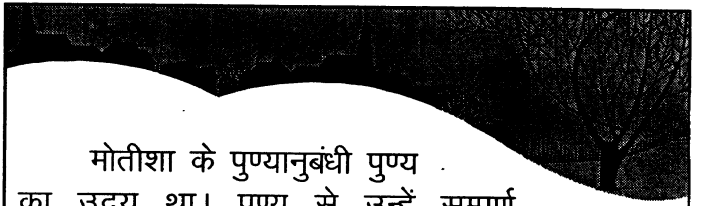

मोतीशा के पुण्यानुबंधी पुण्य का उदय था। पुण्य से उन्हें सम्पूर्ण अनुकूलता उपलब्ध थी पर वह अनुकूलता उनकी जीवन शैली का साधन न बनकर सर्वजनहिताय बनी। उनको प्राप्त सामग्री इसलिए सार्थक व धन्य थी कि उसका उपयोग स्वहित में न होकर सर्वहित में था। सचमुच वे लौह पुरुष थे। पालीताना पहाड़ पर प्रभु आदिनाथ के दर्शन में आ रही कुंतासर खाई की बाधा को अनुभूत तो आदिकाल से किया जा रहा था, पर उसे दूर करने का उपक्रम कोई नहीं कर पाया था।

मोतीशा के जीवन से ऐसा लगता है, जैसे उनका जन्म परमात्मभक्ति के लिए ही हुआ था। उम्र से अगर उन्हें तौला जाए तो निःसंदेह आश्चर्य होता है। इतनी अल्पायु में ही उन्होंने विकास की सीढ़ियों को कैसे तय किया होगा पर यह भी लगता है कि आत्म विकास हो अथवा संसार विस्तार, वे कभी उम्र की बैसाखी पर नहीं चलते। आस्था के प्राणों से संकल्पवान् होकर अगर किसी चट्टान से भी टकराया जाए तो चट्टान भी खंड–खंड हो जाती है।

मोतीशा युग पुरुष थे। युग में बहती आँधी से घबराने की अपेक्षा उससे वे अकंप भावों से टकराते रहे। जिस समय उन्होंने टूंक निर्माण का निर्णय लिया, उस समय उनसे कोई

भी सहमत नहीं था। सभी ने उसके प्रति एक अव्यक्त उदासीनता और निराशावादी दृष्टिकोण को अख्तियार कर लिया था, पर मोतीशा ने बिना किसी हिचकिचाहट के पलक झपकने मात्र में उस असंभव कार्य को संभव बनाने हेतु निर्णय ले लिया। उन्होंने उस कुंतासर की विशाल और दुर्गम खाई को पलभर देखा, चेहरे पर निश्चय भरी मुस्कान आई और बिना किसी सलाहकार की सलाह लिए मात्र आत्म विवेक से उस खाई पर ही टूंक निर्माण का निर्णय ले लिया। यह एक निर्णय ही ऐसा निर्णय था, जो उन्हें तारों के बीच चंद्रमा का खिताब देने को पर्याप्त था।

वह युग, जहाँ यंत्रों का आविष्कार कल्पना में भी नहीं था, ऐसे में मोतीशा का यह निर्णय लोगों को दुःस्साहस पूर्ण लगा था, पर उन्होंने दुनिया को दिखा दिया कि निर्णय की पैनीधार पर असंभव शब्द कभी नहीं टिकता और निर्णय के अभाव में छोटा–सा कार्य भी असंभव हो जाता है।

उनके जो भी निर्माण हैं, वे सारे अद्‌भुत एवं कालजयी हैं। उनके जीवन का सम्पूर्ण परिदृश्य भी उनके अनुकूल था। कितने भाग्यशाली और कृतपुण्य थे वे कि उनके अपने परिवार, सलाहकार और भृत्य वर्ग भी उनकी भावनात्मक क्रियाओं से संलग्न हो गए थे। इतने विराट् निर्माण में

उनका इकलौता पुत्र अनुगामी बना
था और उन्हीं के इंगित पर समस्त लोक
परम्परा का परित्याग कर मात्र पितृश्रद्धा से अनुप्राणित होकर पुत्र ने अधूरे कार्य को सम्पूर्ण निष्ठा से संपन्न करवाया था।

मुझे मोतीशा एवं पुत्र खेमचंद की अपेक्षा भी उनकी सहभागिनी दीपा देवी अधिक आकृष्ट करती है। पति की छाया बनकर सर्वतोभावेन समर्पित होकर दीपा देवी ने भी अपने पति का सम्पूर्णतः अनुसरण किया था। दीपा देवी की जीवनशैली से प्रतीत होता है कि वे भिन्न रूपा होने पर भी भावात्मक दृष्टि से पतिमय ही थी। दीपादेवी ने जिस पद्धति से जीवन जीया, वह भारतीय संस्कृति की आदर्श एवं अक्षुण्ण धारा का केन्द्र बिन्दु बन गया। पति वियोग से पीड़ित प्राणों को उन्होंने कितनी कठिनाई से सहेजकर पुत्र को अपनी मातृममता से भीगे आँचल में छिपाया होगा?आगे की समस्त कार्यविधि हेतु निर्दिष्ट किया होगा? निःसंदेह मेरी भावुक मानसिकता में यह विषय कल्पनातीत है। आँसू पौंछकर, चेहरे पर मुस्कान सजाकर संघयात्रा एवं प्रतिष्ठाविधि में दीपादेवी के चरित्र की जो प्रखरता मुखर हुई, उससे यही प्रतीत होता है कि सेठ स्वयं के शरीर का विसर्जन कर दीपादेवी में स्थापित हो गए थे।

मेरे गौरव का एक व्यक्तिगत कारण यह भी है कि कीर्ति पुरुष श्री मोतीशा लुंकड गौत्र के दोहिते थे। मेरी पारिवारिक पृष्ठभूमि भी लुंकड गौत्र से जुड़ी हुई है। निःसंदेह मैं पितृश्रेष्ठ भाईजी की कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने ऐसे प्रखर पुरुष के लेखन से मुझे जोड़ा।

इस उपन्यास का कथ्य जितना रोचक है, इसके सृजन के निर्णय की स्मृति भी उतनी ही आनंददायक और रोमांचक है। आज भी सरसरी निगाहों से उस घटनाक्रम पर निगाहें डालती हूँ तो बरबस ही होठों पर महीन हास्य छा जाता है। कितनी सहजता और सरलता से भाईजी (श्री हरखचंदजी नाहटा) ने मुझे अपनी चाणक्य बुद्धि से मोतीशा के लेखन हेतु वचनबद्ध कर लिया था। उस समय तो ऐसा ही लगा था जैसे उन्होंने मेरी क्षमताओं को अतिशयोक्ति दी है। घटनाक्रम यों बना था।

उनका अपना 58 वाँ जन्मदिन था। मैंने साध्वी जीवन की मर्यादा के अन्तर्गत पुत्री के भावों में पूछा—बाउसा! मैं आपको क्या समर्पित करूं?

सस्मित आवाज में उन्होंने पूछा—सच! मैं जो मांगूंगा, वह तुम मुझे दे सकोगी?

मुझे उनकी गरिमा एवं शालीनता पर स्वाभाविक

गौरव था। सहज प्रसन्नता से कहा–प्राचीन से अर्वाचीन युग की गौरवमयी परम्परा में भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत बेटी ने सदैव पिता से लिया ही है, पर उस परम्परा के विपरीत आपने मुझसे लेने का ही निर्णय कर लिया है तो मुझे देने में कोई कष्ट नहीं। आप अपनी इच्छा प्रकट करें! उनका मानस मेरे इन संस्कृतिपरक नीति वाक्यों से अप्रभावित रहा। अपनी बात को गति देते हुए उन्होंने कहा–तुम्हारी कृतियों का पारायण करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि तुम्हारे अंदर सृजन क्षमता है। विगत काफी समय से तुम इस प्रवृत्ति से उदासीन हो। मेरी आकांक्षा है कि तुम अपनी लेखनी को पुनः सक्रिय करके आगामी जन्मदिन तक एक नवीन कृति का सृजन करो।

इस संवाद के पलों में मुझे उनसे परिचित हुए अधिक समय नहीं हुआ था। मेरे व्यक्तित्व के किस पहलू ने मुझे उनका भाव–सामीप्य प्रदान करते हुए बेटी के संबोधन तक की यात्रा करवायी थी, मैं स्वयं इस तथ्य से अनभिज्ञ थी। बहुधा ऐसा होता है कि शाब्दिक यात्रा मात्र शब्दों के रूखे जंगलों में भटक जाती है, पर भाईजी के शब्द मात्र उनकी जुबान के स्पर्श तक ही सीमित न थे। वे उनकी आत्मिक गहराइयों से स्फुरित हुए थे। हृदय की असीम गहराइयों से

उन्होंने पुत्री के पिता का गंभीर उत्तरदायित्व समझा है। तूफानों का कारवाँ भी उनके पितृ हृदय को कंपित करने में सक्षम नहीं हो पाया है। इन दो वर्षों की स्वानुभूति से मैं कह सकती हूँ कि गरिमापूर्ण उनका व्यक्तित्व समस्त पूर्वाग्रहों को तोड़कर जिस रूप में मेरे समक्ष उभरा है, वह अद्‌भुत एवं अकल्प्य है, पर ये समस्त अनुभूतियाँ वर्तमान की है। अतीत में मैं उनके इस स्वरूप की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। उनके ईर्द गिर्द सत्ता और संपत्ति का मजबूत, दृढ़ एवं अभेद्य किला था, जिसे तोड़ने की न मैं कामना करती थी और न स्वयं को इस योग्य समझती थी।

जिस समय यह संवाद हुआ, उस समय उन्होंने मुझे यद्यपि आत्मिक गहराइयों से बेटी का रूप दे दिया था, पर मैं उनके पितृरूप को आत्मसात् नहीं कर पायी थी। मेरे हृदय में उनके संघ समर्पित व्यक्तित्व के प्रति सम्मान तो था पर उनके प्रभावी व्यक्तित्व के पूर्वाग्रह से उपजा संकोच उस सम्मान पर हावी था।

फिर भी उन्होंने अपनी चाणक्य बुद्धि से मुझे वचनबद्ध कर ही लिया। यद्यपि इन दिनों मेरा लेखकीय व्यक्तित्व सुषुप्त अवस्था में था पर मुझे उसका जागरण करना था, क्योंकि अस्वीकृति का कोई सशक्त कारण सामने नहीं था।

यह तो उनका बड़प्पन था कि
उन्होंने पिता बनकर निर्देश दिया था पर
अगर मात्र महासंघ अध्यक्ष के रूप में भी वे मुझे निर्दिष्ट करते तो भी उचित और मर्यादित निर्देश मानना संघ सदस्या के रूप में मेरा कर्त्तव्य था।

उनकी इस साहित्यिक माँग की आपूर्ति में हिचकिचाहट स्पष्ट रूप से महसूस करते हुए भी इन्कार करना संभव नहीं था। मैने एकाध वाक्य का जुमला छोड़ते हुए स्वीकृति दी और विषय के संबंध में पूछा।

पूछने भर की देरी थी, उन्होंने तुरन्त कहा–मुझे मोतीशा, जिन्होंने पालीताणा तीर्थ पर अगणित चुनौतियों का सामना करते हुए कुंतासर खड्डे पर विशाल टूंक का निर्माण करवाया, ने बहुत ही प्रभावित किया है। मैं चाहता हूँ–मोतीशा के घटनाक्रम को तुम अपनी शैली में अंकित करो।

मैं उन दिनों मलयासुंदरी के आदर्श जीवन चरित्र को लिखने की मानसिकता बना रही थी। मोतीशा के बारे में मैंने कभी नहीं सोचा था। उनसे संबंधित विषय वस्तु की भी मुझे जानकारी नहीं थी। सामग्री कैसी होगी, कितनी होगी, उसे मैं जीवंत बना सकूंगी या नहीं आदि अनेक प्रश्न मुझे चुनौती की मुद्रा में नजर आए पर निराश होने के स्थान पर मुझे

यह अपनी क्षमता को तौलने का एक अवसर लगा और मैंने यह कहते हुए स्वीकृति दी कि अगर आपको कूटनीतिज्ञ, चाणक्य और राजनैतिक खिलाड़ी कहा जाता है तो यह सत्य है।

वे मेरी इन उपाधियों से अप्रभावित रहे और कहा–भारतीय पिता की नियति ही पुत्री के आक्रामक रूख को झेलना है और मैं इसका अपवाद नहीं होना चाहता। मैं इतना ही जानता हूँ कि सन् 94 की 18 जुलाई को मोतीशा की पांडुलिपि मेरे हाथों में होनी चाहिए। बस यही पृष्ठभूमि है, जिसने एक अकल्पित विषय से मुझे जोड़ा। मैं सोच भी नहीं सकती थी कि आगामी काल में मुझे कभी ऐतिहासिक चरित्र लेखन में अपनी प्रतिभा को प्रकट करने का मौका मिलेगा। वैसे इसे मैं अपनी कम, भाईजी की कृति ज्यादा कहूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसके लेखन में मैं तो निमित्त ही बनी हूँ, इसके वास्तविक निर्माता तो भाईजी ही हैं। उन्होंने चाहा और इसका लेखन हो गया।

दिसम्बर 93 तक मेरे पास विषयवस्तु का अभाव भी था और चिकित्सकों द्वारा पूर्ण विश्राम का निर्देश भी, पर जब मैं वर्ष के अंतिम सप्ताह में सांचौर पहुँची तो श्री जिनदत्तसूरि मंडल द्वारा प्रकाशित मोतीशा की पुस्तक निगाहों में आई। उसे देखते ही मेरा विश्वास चरमरा गया।

इतिहास और उससे संबंधित सामग्री मेरे लेखन क्षेत्र के दायरे में नहीं आती, क्योंकि मैं इस विषय से उदासीन रही हूँ फिर भी वचनबद्ध होने से यह तो लिखना ही था। धीरे–धीरे अपने ढंग से जनवरी के प्रथम सप्ताह में हाड़ेचा (सांचोर) की धरती पर लिखना प्रारंभ कर दिया। कुछ पृष्ठ लिखकर दिल्ली भाईजी के पास भेज दिए। मैं उत्सुकता से इंतजार करने लगी, पर पृष्ठों को पुनः मुझ तक पहुँचने में आशातीत विलम्ब हुआ। मैंने समझा–संभवतः मेरी लेखनशैली भाईजी को संतुष्ट नहीं कर पायी है।

पुनः जब तक पृष्ठ आए, तब तक कु. बब्बिता श्री श्रीमाल का दीक्षा समारोह निकट आ चुका था। और उसके बाद कार्यक्रमों की एक श्रृंखला ही प्रारंभ हो गई और उस कारण लेखन में समय देना नामुमकिन हो गया। फिर भी जब–जब मौका मिलता, कुछ न कुछ का प्रयास अवश्य करती। जब व्यस्त कार्यक्रमों के बावजूद 80 पृष्ठ तैयार हो गए तो मैंने कुछ राहत महसूस की, परन्तु मेरी दृढ़ता और संकल्प अभी और परीक्षा की कसौटी पर कसा जाना था। असावधानी वश जोधपुर प्रवास के अंतर्गत मेरे 80 पृष्ठ गुम हो गए। हड़बड़ाना स्वाभाविक था। शारीरिक अस्वस्थता एवं व्यस्त कार्यक्रमों के बीच बड़ी कठिनाई से समय बचाकर

लिखना जारी रखा था। उसमें यह व्यवधान..... परन्तु समय के साथ हताशा दूर हो गयी। विचारों का संतुलन बना। मस्तिष्क में छायी निराशा की धूंध साफ हो गयी और लिखने का क्रम पुनः नियमित रूप से गतिशील हो गया।

प्रकृति जब भयंकर रूप से आग बरसा रही होती, आकाश और आँगन दोनों ही जब जल रहे होते, तब भी मेरी अंगुलियाँ लिखने में व्यस्त रहती। एक धुन लग गयी थी कि अपनी क्षमता का उपयोग करके इसे प्रत्येक स्थिति में 18 जुलाई तक पूर्णता के शिखर पर पहुँचाना है और आखिर बहु प्रतीक्षित वह घड़ी आ गयी, जब मेरा परिश्रम लेखन की प्रक्रिया से गुजरता हुआ पूर्णता के कगार पर पहुँच गया।

निम्बाहेड़ा के महावीर भवन का विशाल प्रांगण! अनेपक्षित रूप से 17 जुलाई को चातुर्मासिक प्रवेश पर भाईजी का आगमन! संभवतः भाईजी को भी कल्पना नहीं थी कि मोतीशा का लेखन परिपूर्ण हो गया होगा।

18 जुलाई को प्रातः जब वे महावीर भवन पहुँचे तो आनंद और संकोच के मिश्रित भावों के साथ पाण्डुलिपि मैने उन्हें समर्पित कर दी।

अद्‌भुत थे वे पल! अनिर्वचनीय था वह आनंद! खुशियों का सागर उनकी आँखों में लहरा गया। निःसंदेह

उस घड़ी और उस पल उनके चेहरे
पर छायी रौनक, उनकी वह भावमुद्रा! मेरे
स्मृति कोश की अक्षय अमानत है। उस पल की अनुभूति को अभिव्यक्ति का जामा नहीं पहना सकती। उनका रोम–रोम वात्सल्य का झरणा प्रवाहित कर रहा था। उन पलों में ऐसा लगा जैसे मेरी सारी मानसिक थकान उस झरणे में दूर सुदूर बहती चली जा रही है। उनके चेहरे पर आयी चमक मेरे परिश्रम का सार्थक मुल्य था। उनके वात्सल्य को देखकर मेरे स्मृति पथ में प्रभु महावीर की प्रमुख शिष्या चंदनबाला के धर्मपिता धन्ना सेठ सहज ही उतर आए।

प्रस्तुत उपन्यास का सौंदर्य बढ़ाने में अग्रज गणिवर्य श्री मणिप्रभजी ने पूर्ण योगदान दिया है। अपने महत्वपूर्ण कार्यों को परे रखकर भी मेरे कार्यों को वे सदैव प्राथमिकता प्रदान करते हैं, उनके स्नेह की यह सहज परिणति है। चूँकि यह मेरा जन्मसिद्ध और प्राकृतिक अधिकार है अतः उनके प्रति आत्मख्याति की कृत्रिमता से मैं स्वतंत्र रहना चाहती हूँ।

इसकी प्रेसकॉपी को तैयार करने में प्रमुख शिष्या साध्वी शासनप्रभा की हस्तलिपि उपयोगी बनी है। मैं उसके मंगलमय जीवन की शुभाकांक्षी हूँ।

जिनकी पावन स्मृति ही मेरी मूल्यवान अमानत है, जिनके आगमज्ञान की निर्मल किरणें मुझे अल्पावधि हेतु उपलब्ध हुई थी, जिनकी दिव्याशीष का मंगलनाद मेरे प्रत्येक कार्य का संगीत है, उन गुरुवर्या प्र. श्री प्रमोदश्री जी म.सा. की स्मृति को अनंतशः भावभरी वंदनाएँ समर्पित कर धन्यता की अनुभूति कर रही हूँ।

जिनका शांत और समाधिमय निर्देशन मेरे संयम जीवन का आलोक है, उन शांतमूर्ति पू. प्रकाशश्रीजी म.सा. एवं माताजी म. श्री रतनमाला श्रीजी म.सा. की कृतज्ञता इस प्रस्तुति की वेला में सहज है।

जिनका समर्पण मेरे जीवन की खुश्बू है, उन साध्वी नीलांजना, प्रज्ञांजना, दीप्तिप्रज्ञा, नीतिप्रज्ञा एवं विभांजना का भी लेखनकार्य में प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष योगदान सतत उपलब्ध हुआ है। उनके लिये मेरी हार्दिक मंगलकामना है।

उपन्यास की निष्पक्ष एवं स्वतंत्र समीक्षा काम्य है।

साध्वी विद्युत्प्रभा

13 फरवरी 1995
महावीर बाग मंदिर प्रतिष्ठा दिवस
इन्दौर

संक्षिप्त संशोधन एवं परिवर्धन के साथ यह तीसरा संस्करण सेठ मोतीशा के नाम से प्रकाशित हो रहा है। पूर्व में दोनों संस्करण 'स्वप्नद्रष्टा' के नाम से प्रकाशित हुए थे। निःसंदेह प्रकाशन वेला में मेरा आनंदित होना स्वाभाविक है। यद्यपि इस अवसर पर मेरा मन विगत की उन स्मृतियों का स्मरण कर उदास भी है, जब मेरे श्रद्धेय, पितृपुरुष बाऊसा श्री हरखचंदजी नाहटा ने इसके लेखन हेतु मुझे प्रेरित किया था। आज उनकी अनुपस्थिति मुझे प्रतिपल अखरती है पर प्रकृति के समक्ष निरूपाय हूँ।

प्रस्तुत संस्करण को शिष्या साध्वी डॉ. नीलांजना ने अपनी गहरी और पैनी निगाहों से जांचा-परखा है। उसके तेजस्वी एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के प्रति मेरी गहरी मंगलकामना एवं शुभाशीष.....

साध्वी विद्युत्प्रभा श्री

"क्या बात है देवी? आज चेहरा कुछ अधिक ही चमक रहा है। कोई आभूषण खरीदा है या कहीं से नए वस्त्र उपहार में प्राप्त हुए हैं?जरूर कुछ न कुछ अनूठा हुआ है।" सूर्योदय की बेला में अपने निजी कक्ष में प्रातःकालीन प्रभुस्मरणादि नित्यक्रियाओं से निवृत्त होने के पश्चात् अपनी पत्नी रूपादेवी से सेठ अमीचंद ने पूछा।

"आपको आभूषण और साड़ियों के अतिरिक्त कुछ दृष्टिगत भी होता है?आपने मेरी मनोवृत्ति को इतना संकुचित समझा है?क्या मैं इनके अतिरिक्त कुछ अलग से नहीं पाकर आनंदित नहीं हो सकती?" कुछ नाराजगी भरे स्वर में सेठानी रूपादेवी ने कहा।

"लो बाबा! तुम तो नाराज हो गई। मैं तो यूँ ही तुमसे मजाक कर रहा था। क्या मुझे तुमसे हास–परिहास नहीं करना चाहिए?चलो मान लेता हूँ कि न तो आभूषण आए हैं और न वस्त्र, पर जरूर हमारी सासुजी ने नई–नई स्वादिष्ट मिठाइयाँ भेजी होंगी! अच्छी बात है, आज सबसे पहले हम अपनी ससुराल के मिष्ठान्न से ही अपना मुँह मीठा करेंगे। ससुराल की मिठाई तो वैसे भी भाग्यशाली को ही मिलती है। अन्यथा वे तो दामाद के गले में अपनी बेटी की जंजीर बाँधकर पूर्णतः निश्चिंत हो जाते हैं। बाद में उन्हें क्या गरज पड़ी है, जो जमाई के नखरे उठावें। जमाई को ही उनकी

गरज करनी होती है।" अपनी प्रियपत्नी को छेड़ते हुए अमीचंद ने कहा।

"लगता है गत रात आपने कुछ गहरा ही नशा किया है। अन्यथा सुबह–सुबह इस प्रकार से आप बहकी–बहकी बातें नहीं करते। ठीक है, अब बैठे–बैठे उबासियाँ खाना, मैं अपनी प्रसन्नता का कारण आपको नहीं बताऊँगी। अन्यथा मैं तो आपको एक विचित्र अनुभूति बताने वाली थी," कहते–कहते रोष–खीज के साथ सेठानी रूपादेवी त्वरा से कदम उठाते हुए सेठजी के निजी कक्ष से बाहर निकलने लगी।

"अरे–अरे! सुनो तो सही भाग्यवान्! मैं तो तुम्हें यों ही छेड़ रहा था और हाँ तुमने अभी–अभी हम पर क्या आक्षेप लगाए हैं?क्या मैं नशा करता हूँ?प्रभु महावीर का अनुयायी नशा करना तो दूर, नशा करने वालों से भी अपने आपको दूर रखता है। नशा करके क्या मैं अपनी कुल परम्परा को कलंकित करूँगा? जिनशासन की बगिया के पौधे इस प्रकार की बदबू से अपने आपको कभी गंदा नहीं करते। हाँ! मैं नशा करता हूँ परमात्मा की वाणी का, उनकी अमृतमयी प्रतिमा का, उनके द्वारा प्ररूपित विशुद्ध आत्मशुद्धि की क्रियाओं का और इन सभी का नशा करने के बाद अगर बन्दा होशोहवाश में रहता है तो तुम्हारे प्यार और समर्पण में छलकते नयन कटोरे गिरवी तो नहीं रखे हैं न?"

"तुम्हारा यह सदाचार की महक से सुगंधित अपूर्व

सौन्दर्य.....क्या मदिरा के जाम से कम है?'' पलंग से उठकर रूपादेवी के कंधों को झकझोरते हुए पूछा।

अपने सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर रूपा का गौरवर्णीय चेहरा संकोच से रक्तिम हो उठा। अपने पति के प्यार से छलकते शब्दों से मन ही मन वह गौरवान्वित हो उठी।

बड़े ही प्रेम से उसके कोमल मुख को अपनी दोनों हथेलियों से ऊपर उठाते हुए सेठ ने उत्सुकता से पूछा–''हाँ, अब मूल बात पर आओ। इस समय तुम कौनसी अनोखी अनुभूति को अभिव्यक्त करने आई थी?मजाक ही मजाक में असली बात तो तुम बताना ही भूल गई। हमें लक्ष्य तो प्रतिपल दिमाग में रखना चाहिए। चाहे हम कितना भी इधर–उधर भटकें पर मूल लक्ष्य विस्मृत नहीं होना चाहिए। अगर मूल लक्ष्य ही तितर–बितर हो जाए तो उसका जीवन निःसंदेह खतरों से घिर जाता हैं।''

रूपादेवी ने देखा–उसके पति दर्शन झाड़ने के मूड़ में आ रहे हैं और वार्तालाप अगर यों लम्बा हो गया तो उसका सारा दिन अस्त–व्यस्त हो जाएगा। न तो समय पर वह पूजा करने हेतु मंदिर जा पाएगी और न समय पर सेठ को अपने हाथों से नाश्ता करवा पाएगी और अगर इन दो क्रियाओं में किसी प्रकार का व्यवधान आ गया तो उसका दिमाग दिनभर उखड़ा–उखड़ा रहेगा। दिनभर उसे एक प्रकार का खालीपन, उदासीनता और असंतुलन की स्थिति

महसूस होती रहेगी।

उसने झट से अपने आपको मुक्त करवाया और बाहर निकलने हेतु कदम बढ़ाए पर इतना सरल कहाँ था सेठ की पकड़ से मुक्त होना?तुरन्त दोनों हाथों से रूपादेवी को उन्होंने पकड़ लिया और अपने समीप पलंग पर बिठाते हुए पुनः अपना प्रश्न दोहराया– "तुम कौनसी अनुभूति की चर्चा कर रही थी?"

रूपादेवी का चेहरा उस अनुभूति की कल्पनामात्र से ही हर्ष, उल्लास के मिश्रण से जगमगा उठा। लगा जैसे स्वयं प्रसन्नता मूर्तिमान हो उठी है। उस समय रूपादेवी का चेहरा किसी अनोखे आह्लाद के कारण सदैव की रूपादेवी से भिन्न था। उसका सम्पूर्ण चेहरा निर्मल और पवित्र सौन्दर्य से दपदपा उठा। सेठ उसके इस सौन्दर्य पर मुग्ध हो उठे और साथ ही इसका कारण जानने को और भी अधिक उतावले हो गए।

रूपादेवी ने कहा, "स्वामी! तीन–चार दिन से लगातार लगभग शैय्या त्याग से कुछ समय पूर्व अर्धजागृत अवस्था में मुझे सिद्धाचल का ऊपरी भाग अर्थात् दादा दरबार के कुछ पहले का, जहाँ पहाड़ दो भागों में विभक्त है, मिला हुआ–सा प्रतीत होता है। मैं समझ नहीं पा रही हूँ कि इस प्रकार का स्वप्न दर्शन बार–बार मुझे क्यों हो रहा है?क्या तुक है इस प्रकार की अनुभूति का? एक बार जब

मुझे स्वप्न आया तो मैंने उसे सहजता से लिया, पर जब बार–बार मुझे इस प्रकार के स्वप्न दर्शन होते रहे तो मैं इसका कारण जानने को उत्सुक हो उठी हूँ।''

सेठ की चंचलता भी अपनी पत्नी की इस विचित्र अनुभूति को सुनकर छूमंतर हो गई। वह भी इसका कोई उचित कारण नहीं जान पाया। वैसे भी वह तो जौहरी था और इस नाते रत्नों को तो परख सकता था। उसमें उसे कुदरत की तरफ से विशेषज्ञता भी प्राप्त थी और रही–सही वर्षों के अनुभव से प्राप्त हो गई थी, पर स्वप्न ज्ञान के संबंध में तो उसे जरा भी जानकारी नहीं थी। उसका चेहरा गंभीर हो उठा। उत्सुकता और जिज्ञासा बढ़ रही थी, पर समाधान दोनों में से किसी के पास भी नहीं था। तभी रूपादेवी ने एक और दूसरा धमाका किया–''मैं एक और बात आपको बताना चाहती हूँ पर वह अभी नहीं। इस समय तो आप तैयार हो जाइए, मैं भी तैयार होती हूँ। दोनों साथ जाकर परमात्मा का पूजन करेंगे। प्रवचन श्रवण करेंगे।''

सेठ ने आग्रह किया कि वह अभी ही बता दें पर रूपादेवी को उस महत्वपूर्ण बात को सुनाने के लिए पूर्ण मानसिक एकाग्रता और स्वस्थता की जरूरत थी, अतः उसने संध्या को जल्दी आने का कहते हुए उस जिक्र को टाल दिया। विवश सेठ को पत्नी के आग्रह के समक्ष हथियार डालने पड़े और कक्ष छोड़कर बाहर आना पड़ा।

विधिपूर्वक दोनों ने स्नान किया। स्नान विधि की चर्चा करते हुए अमीचंद ने कहा–विवेकपूर्ण की हुई सामान्य क्रिया भी अत्यधिक फलदायक बनती है, साथ हीं दर्शकों पर भी प्रभाव छोड़ा जा सकता है। अन्यथा अविवेकपूर्वक की हुई वही क्रिया भक्त को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण परम्परा और क्रिया को भी बदनाम करवाती है। विधि कितनी भी शुद्ध क्यों न हों, जहाँ विधिकारक का विवेक जागृत नहीं होता, वहाँ विधि त्रुटिपूर्ण और कलंकित बन जाती है।

श्राद्धविधि प्रकरण में पूजन की विधि का व्यवस्थित निरूपण आता है। आगम और प्रकरण ग्रंथों में आलेखित विधि की वर्तमान में प्रचलित विधि से तुलना की जाए तो चौंकाने वाले तथ्य नजर आ सकते हैं। पानी का सीमित उपयोग करते हुए यह सावधानी भी अनिवार्य रूप से रखी जानी चाहिए कि वह पानी जीवोत्पत्ति का कारण तो नहीं बनेगा?

अपने बंधुओं की कुछ क्रियाएँ तो बहुधा मुझे व्यथित कर देती है कि आत्मशुद्धि की परम–पुनीत यह क्रिया क्या मात्र प्रदर्शन का रूप तो नहीं ले चुकी है?हमने परम्परा को पकड़ अवश्य लिया है, पर क्या हम उस परम्परा की तह में छिपे हार्द को समझने का कष्ट नहीं कर सकते?पूजन संबंधी पुष्पों की तो और भी शोचनीय स्थिति है।

पूजन विधि के प्रकरण में स्पष्ट उल्लेख आता है कि वाटिका में संध्या के समय स्वच्छ पवित्र सफेद वस्त्र बिछा देना चाहिए। रात्रि में स्वतः गिरे हुए फूल ही परमात्मा के पूजन में उपयोगी बनते हैं। लाखों फूलों द्वारा परमात्मा को ही नहीं, सम्पूर्ण जिनालय को अलंकृत करने की विधि देखकर अवश्य ही महाविदेह में विचरण कर रहे देवाधिदेव सीमंधर स्वामी आदि करूणा के आँसू बरसाते होंगे।

परमात्मा तो स्पष्ट रूप से आगमों में उल्लेख करते हैं कि जितनी पीड़ा पंचेन्द्रिय मानव शरीरधारी आत्मा को होती है, उतनी ही पीड़ा वनस्पति के जीवों को भी होती है। आचारांग के "शस्त्रपरिज्ञा" उद्देशक में इसका स्पष्ट विवेचन आता है।

पत्नी रूपल ने आगमों से पुष्ट अपने पति की विवेकयुक्त वाणी सुनी तो कुछ देर के लिए तो स्थान, व्यक्ति, माहौल आदि सभी के संबंध में भ्रमित हो गई। उसे यों लगा कि वह उपाश्रय में बैठी किसी संत की पवित्र अमृतधारा का पान कर रही है, पर जब भ्रम टूटा तो उपाश्रय के स्थान पर अपना कक्ष और संत के स्थान पर स्वयं के प्राणप्रिय स्वामी को देखा। वह उनके अगाध ज्ञान की गंभीरता पर मुग्ध हो उठी। प्रसन्नता से मुखमण्डल चमकने लगा।

रूपादेवी ने सेठ अमीचंद के विचारों से सहमत होते हुए कहा—"आप ठीक कह रहे हैं स्वामी! क्रिया करने की

अपेक्षा उसे समझना पहली आवश्यकता है। आज अधिक कठिनाई तो इस बात की है कि हम स्वाध्याय और ज्ञान प्राप्ति की ओर अधिक प्रयत्न नहीं करते। खैर ! इस विषय पर हम बाद में चर्चा करेंगे, अभी तो पूजन करने की तैयारी करें।"

सेठ ने सहमति सूचक सिर हिलाया और पुत्र नेमी के विषय में जानकारी चाही। रूपा ने कहा– "आज रविवार है अतः अभी तक उठाया नहीं है। देवपूजादि से निवृत्त होने के बाद उसे उठा दूँगी।" इस पर सेठ ने एतराज करते हुए कहा– "नहीं! आज रविवार है तो उसे भी पूजा के लिए साथ में लेना चाहिए। तुम्हें मदालसा महासती का प्रतिनिधित्व करना चाहिए, जो बच्चों को आत्मा के स्वरूप और विवेचनयुक्त लोरियाँ गाकर सुलाने का प्रयास करती थी।"

मदालसा ने बचपन में लोरियों के साथ ही इस प्रकार के संस्कारों से अपने सभी पुत्र राजकुमारों को सुवासित किया था। वे सभी विलासिता भरे जीवन का पूर्णत्याग करके आत्मशोध हेतु वानप्रस्थी बन गए थे। मात्र एक ही राजकुमार को पति की आज्ञा से राजनीति की शिक्षा देकर उसे राजधर्म और सुयोग्य राजा के कर्त्तव्य सिखाए थे। मदालसा की यह लोरी प्रसिद्ध है–

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि

बचपन में ही बच्चों को उस जीवन की झाँकी देनी चाहिए, आगे जाकर जैसा जीवन उसे जीना है। माँ तो

सबसे पहली पाठशाला है। माँ की गोद में मात्र ममता और वात्सल्य का सोता ही नहीं बहता अपितु संस्कारों की खुश्बू भी वहीं से उठती है।

अपने पति के वचनों को सुनते ही रूपल तुरन्त पुत्र की शय्या के पास पहुँच गई। तीन वर्षीय पुत्र नेमी नींद की आगोश में सो रहा था। घुंघराली लटें बेतरबी से फैली हुई थीं। गौरवर्णीय चेहरा घुंघराले श्याम बालों के बीच चाँद की तरह चमक रहा था। स्वप्न की दुनिया में मस्ती से सोए पुत्र के मासूम चेहरे को देखते ही माँ रूपल ममता से भर गई। सोचा–प्रातःकालीन निद्रात्याग तो बड़ों को भी कठिन प्रतीत होता है तो इस मासूम को तो और भी अधिक पीड़ादायक लगेगा। पूजन बाद में नौकर के साथ जाकर कर लेगा। पर दूसरे ही क्षण विवेक ने करवट ली। नहीं! यह संभव नहीं! माँ की ममता अगर पुत्र का सही निर्देशन नहीं करें तो वह उसके विकास मार्ग की बेड़ी बन जाएगी।

उसने अत्यधिक वात्सल्य से भरे अपने हाथों से पुत्र के माथे को सहलाया और धीमे–धीमे उसे नींद से जगाने का प्रयत्न करने लगीं। नेमी पहले तो कसमसाया पर जब आँखें खुलीं और माँ को देखा तो उसने पूर्ण निश्चितता से अपना सिर माँ की गोद में टिकाकर पुनः आँखें बंद कर ली।

माँ रूपल ने बेटे के चेहरे पर एक चुम्बन अंकित किया फिर प्यार से कहा–"बेटा! उठो! पूजन का समय हो गया

है। पिताजी इंतजार कर रहे है।''

नेमी आँखें मलता हुआ तुरन्त उठ खड़ा हुआ। उसने मातृचरणों का स्पर्श किया और तुरन्त माँ के साथ ही तैयार होने के लिए शयनकक्ष से बाहर आ गया।

माँ–बेटे कुछ ही समय में तैयार होकर पूजन के सादे और स्वच्छ वस्त्र पहनकर दरवाजे के पास पहुँच गए। अमीचंद वहाँ पूजन के वस्त्रों में इंतजार कर ही रहे थे। नेमी ने तुरन्त पिता के चरण–स्पर्श किए। पिता अपने लाड़लें की इस क्रिया पर पुलकित हो गए। हृदय स्नेह से भर गया।

तीनों साथ ही पूजन के लिए रवाना होने लगे। अनुचर ने सुन्दर ताजे महके फूलों से भरी थाली सेठ को दी। अन्य सारी सामग्री सेठानी ने पूर्व में ही साथ ले ली थी। नंगे पाँव तीनों ही चलते–चलते मंदिर के द्वार पर पहुँचे। विधिपूर्वक 'निसीहि' के उच्चारण से उन्होंने मंदिर में प्रवेश किया। पत्नी और पुत्र ने सेठ का अनुसरण किया। इस 'निसीहि' के उच्चारण द्वारा उन्होंने समस्त सांसारिक आवश्यक क्रियाओं का निषेध कर दिया।

चारों ओर सूक्ष्मता से मंदिर का निरीक्षण करने के पश्चात् दूसरी 'निसीहि' द्वारा मंदिर संबंधी क्रिया का भी निषेध किया और उसके बाद प्रभु की अंगपूजा और अग्रपूजा करके तीसरी 'निसीहि' का उच्चारण करते हुए मात्र भावपूजन करने की ही छूट रखी।

भक्ति के स्वर होठों से उभरने लगे। मात्र जिह्वा ही

नहीं हृदय की तरंगें झंकृत हो रही थी। रोम–रोम विभोर हो रहा था। प्रभु के गुणों की स्तवना और उन्हीं गुणों की प्राप्ति हेतु स्वयं की आकांक्षा तीव्रता से उभरने लगी। कण–कण जैसे भक्ति से भर गया।

भक्ति का सागर बह रहा था। माहौल में करूणा व्याप्त थी। पूर्ण तन्मयता और एकाग्रता से प्रभु की स्तुति संपन्न करके "आवस्सहि" के उच्चारण से पुनः प्रभु चरणों में खोए हृदय से व्यवहार जगत में प्रवेश की अनुमति से बाहर निकले।

अमीचंद अपनी पत्नी रूपल व पुत्र नेमी के साथ घर लौट आए। वस्त्र परिवर्तन करके रूपल तो नाश्ते की व्यवस्था हेतु पाकशाला में चली गई और पिता–पुत्र नाश्ता करने आँगन में आ गए। पिता को खाली देखकर नेमी पिता की गोद में चढ़ गया और अपनी नन्हीं–नन्हीं हथेलियों से पिता के साथ बाल सुलभ चेष्टाएँ करने लगा। पुत्र के प्रति वैसे भी पिता का हृदय भावुक और कोमल था ही, फिर उसकी मोहक और मासूम क्रियाओं को देखकर तो पिता का हृदय बल्लियों उछलने लगा। हृदय का प्यार रोम–रोम से फूटने लगा। कभी अपनी भुजाओं में लेकर उछालते तो कभी उसे अपने चौड़े सीने से लगाकर असीम तृप्ति का अनुभव करते। आनन्द के इस झूले में झूलते कितना समय बीता, इसका किसी को भान नहीं रहा। इतने में रूपल दूध के पात्र लेकर पहुँच गई।

पिता–पुत्र की इस मस्ती में वह भी कुछ क्षण तो खो गई। उसे लगा कि वह कितनी भाग्यशाली है, जिसके आँगन में सारे जहाँ की खुशियाँ सिमट आई है। कितने रूप हैं उसके प्रियतम के? कभी गंभीर अध्यात्म से परिपूर्ण नजर आते हैं तो कभी मुझ पर सर्वस्व न्यौछावर करते हुए और कभी एकदम बच्चों जैसे मासूम! निश्चित ही मैंने पूर्वजन्म में

धर्म की विधिवत् आराधना की थी, जिसके पुण्य से आज मेरा आँगन खुशियों के दीयों से जगमगा रहा है। एक नारी के जो अरमान पूरे होने चाहिए, वे सारे तो मेरे पूरे हो चुके हैं। पूर्णता से चाहने वाला पति, अथाह संपत्ति और होनहार स्वरूपशाली बेटा....! इससे ज्यादा एक नारी की क्या चाहत हो सकती है?

उसने आँखें बंद करके श्रद्धा से भरकर वहीं से अपने देव–गुरु को नमन किया और धीरे से मुस्कराकर कहा– "देव! दूध एवं नाश्ता ठण्डा हो रहा है, जरा नेमी को अलग बिठाकर नाश्ते के साथ न्याय कीजिए।"

अमीचंद ने चुटकी लेते हुए कहा– "अगर तुम्हें और नेमी को अलग बैठा दिया तो नाश्ते के साथ तो न्याय हो जाएगा पर तुम्हारे साथ अन्याय हो जाएगा और तुम्हारे साथ किया गया अन्याय अंततोगत्वा मेरे साथ ही अन्याय होगा। अतः देवी! आप भी अपना आसन लेकर इधर ही पधार जाओ, आज सभी साथ ही बैठकर नाश्ता करेंगे।"

रूपल ने पति की आज्ञा का तुरन्त पालन किया। छोटा–सा पर यह सुखी परिवार एक साथ बैठकर नाश्ता करने लगा। रूपल ने स्वयं का भी नाश्ता संपन्न किया और थोड़ा–थोड़ा करके अपने प्रियतम और पुत्र को भी भरपूर नाश्ता करवा दिया।

संस्कारी और पतिव्रत धर्म से परिपूर्ण अपनी प्रियतम रूपल की इस सेवाभावना से अमीचंद की कार्यक्षमता–शतगुणी हो जाती थी। कहाँ तो मात्र अपनी आकांक्षाओं की सामान्य अवहेलना पर कोपभवन में शय्या पर जा लेटने वाली महत्वाकांक्षी नारियाँ, और कहाँ नस–नस में घर, परिवार के सुखों को ही अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य मानने वाली यह प्रियतमा, जिसने कभी अपने मुँह से किसी प्रकार की कोई फरमाइश आज तक नहीं की। जिस हाल में रखा, उसी हाल में सदा–सर्वदा पूर्णिमा के चाँद की तरह खिली–खिली रही !

मानव इस उधेड़बुन में उलझता रहता है कि स्वर्ग है या नहीं, नरक का अस्तित्व है या नहीं। पर स्वर्ग या नरक के अनुभव तो मृत्यु पश्चात् के अनुभव हैं। अगर कोई इसी जन्म में स्वर्ग–नरक का नजारा देखना चाहे तो निश्चित रूप से वह अपने स्वयं के आँगन में भी इसकी अनुभूति कर सकता है।

जिस घर के सदस्यों में एक–दूसरे के हित की कामना झलकती हो, आपस में बलिदान और कुर्बानी देने की तत्परता हो, हृदय आत्मीयता के शीतल–स्वच्छ झरने से आप्लावित हो, एक–दूसरे की प्रसन्नता महत्वपूर्ण हो, निश्चित ही उस आँगन में इन्द्रसभा की अनुपम छटा बिखरी

हुई प्रतीत होती है। इसके ठीक विपरीत व्यवहार जीवन में कटुता और पीड़ा भर देता है। रूपल ने कॉलेज की शिक्षा ग्रहण नहीं की थी, पर भारतीय नारी की गरिमा से उसका अंग–अंग चमकता था। भारतीय नारी के त्याग और कुर्बानी के भावों को उसने अपनी दादी माँ की लोरियों के साथ ही सुन रखा था।

ऑफिस जाते वक्त पुनः अमीचंद ने रूपल देवी को याद दिला दिया कि आज तुम टिफिन मत भेजना, मैं सूर्यास्त से घण्टे भर पूर्व ही घर लौट आऊँगा। तुम्हारी दूसरी खबर सुनने की मेरी बैचेनी बढ़ती जा रही है, पर चूँकि तुम इस समय सुनाने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं हो, अतः मैं बाद में ही सुनूँगा पर तुम शाम को बहाना मत बनाना।' कहते–कहते अमीचंद ने अपने ऑफिस के कागजात समेटे और बाहर आ गया।

रूपल के हृदय में एक अनोखी मादकता भरती जा रही थी। उसके रोम–रोम में स्वप्न दर्शन और एक अन्य अनुभूति की कल्पना का उन्माद चढ़ता जा रहा था। सौन्दर्य और सदाचार की साकार प्रतिमा रूपल ने दिन–भर अपनी अनोखी अनुभूति के जाल को समझने का प्रयास किया पर वह सफल नहीं हो सकी। उसका चेहरा इस असफलता के कारण अवसाद से घिर गया। पर तत्काल वह संभल गयी।

उसने सोचा, अगर यों ही मैं अपने कल्पनाजाल के ताने–बाने बुनती रही तो समाधान तो मिलना नहीं है, पर मेरी आवश्यक क्रियाएँ भी अनियमित हो जाएगी। जो भी होगा, सामने आ जाएगा। परमपिता परमात्मा का शासन अवश्य ही मेरे लिए कल्याणप्रद होगा।

संध्या को ठीक समय पर अमीचंद घर लौट आए। रूपल द्वार पर ही उनके इंतजार में खड़ी थी। उसने देखा–आज उसके स्वामी भी कुछ अधिक ही प्रसन्न और संतुष्ट नजर आ रहे हैं। अमीचंद ने प्रेममूर्ति रूपल के गालों को हल्के से थपथपाया और अन्दर आकर पलंग पर पसर गए। ग्रीष्म की अधिकता से उनके चेहरे पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आई थी। रूपल ने हौले–हौले पंखा झलना शुरू कर दिया। असीम शांति से सेठ ने कुछ देर के लिए आँखें बंद कर दी।

अमीचंद रूपल की बात सुनने को बेताब थे। वे उस अनोखी कल्पना को सुनने का विशेष रूप से इंतजार कर रहे थे। इंतजार की घड़ियाँ निश्चित ही लम्बी लगती हैं। यद्यपि घड़ी की सुइयाँ अपने ढंग से चलती है। अमीचंद ऑफिस जाने के बाद तो व्यापार की ओर केन्द्रित हो गया था। अतः कब और कैसे समय व्यतीत हुआ था, इसका हल्का–सा अहसास भी नहीं हुआ था, पर घर आने के बाद तो मात्र उस

घटना के इर्दगिर्द ही सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित हो जाने से समय बिताए नहीं बीत रहा था।

रूपल अपने पति की इस मनोदशा से अनभिज्ञ हो ऐसा नहीं था, पर उसे इंतजार कराने में आनन्द आ रहा था। स्वामी की तड़फ को देखते हुए भी अपने चेहरे पर सही भाव जाहिर नहीं होने दे रही थी। उधर अमीचंद की व्यग्रता बढ़ती जा रही थी, पर वह जानता था कि प्रतिक्रमण से पूर्व रूपल किसी हालत में हाथ नहीं आनी है। उसने अपनी नित्यक्रियाएँ भोजनादि को जल्दी से निपटाया ताकि रूपल शीघ्र ही भोजन, चौविहार करके प्रतिक्रमण कर ले।

रूपल ने अमीचंद की इस जल्दबाजी का कारण समझ लिया। मोहल्ले में हम उम्र बच्चों के साथ खेल रहे अपने पुत्र को बुलाकर माँ–बेटे ने भोजनादि क्रिया को निपटाया।

"प्रतिक्रमण" आत्मा पर लगे पापों के प्रक्षालन की एक विशुद्ध क्रिया है। इस क्रिया को हम झाडू की उपमा से उपमित कर सकते हैं। सुघड़ नारियाँ प्रातः होते ही झाडू लेकर घर में आए कूड़े–कचरे को निकालकर घर को चमका देती है। अगर घर की स्वच्छता की ओर नारी केन्द्रित न रहे तो उसे व्यवहारिक नहीं माना जाता है। एक दिन भी ऐसा नहीं बीतता कि जिस दिन घर में झाडू का उपयोग न हो।

एक समय तो क्या, घरों में तो प्रायः दिन में दो बार सफाई की जाती है।

प्रतिक्रमण आत्मघर की सफाई का एक सशक्त माध्यम हैं। हम दिन–रात में चाहे–अनचाहे कई क्रियाएँ करते है। कुछ क्रियाएँ आवश्यक और अनिवार्य होती है। व्रतधारी श्रावक जिन शासन को समर्पित होने पर भी गृहस्थ जीवन की मर्यादा की पूर्ति हेतु उसे व्यापारादि क्रियाओं में अथवा घर संबंधी कामकाज में प्रवृत्ति करनी पड़ती है। उन क्रियाओं से लगे कल्मष को धोने की क्रिया का नाम है प्रतिक्रमण!

जिस प्रकार मकान में रहते हुए जाली झरोखों को बंद नहीं किया जा सकता। उन्हें तो घर में ऊर्जादायक सूर्य किरणों के आगमन के लिए खोलना ही पड़ता है और जहाँ गवाक्ष/खिड़कियाँ खुलती है, वहाँ, सूर्य के प्रकाश के साथ अवांछित मिट्टी भी आती ही है, यही रूपक व्रतधारी श्रावक की आत्मा पर लागू होता है।

रूपल पितृगृह से धार्मिक संस्कार लेकर ही ससुराल की दहलीज पर चढ़ी थी। दृढ़ संकल्प के अभाव में संयम के प्रति आकर्षण होने पर भी उसे अमीचंद की जिन्दगी से अपनी भाग्य रेखा जोड़नी पड़ी थी। अमीचंद के सम्पर्क, सानिध्य और सहवास ने रूपल को कभी निराश नहीं किया

था। वह तो स्वयं भी उससे दो कदम आगे था और और यह विचारसाम्यता ही उनके जीवन में खुशियों का अमृत ले आई थी।

हृदय की पूर्ण तन्मयता के साथ उसने प्रतिक्रमण के द्वारा स्वयं की आत्मा पर लगे पापों को धोने का प्रयत्न किया। अपनी धार्मिक क्रिया को सम्पन्न करके वह शयनकक्ष में पहुँच गई।

अमीचंद इंतजार में बैठे–बैठे नवकार मंत्र की माला फेर रहे थे। रूपल उनके समीप बैठ गई। अमीचंद ने सबसे पहले अपना प्रश्न दोहराया–तुम कौनसी नई बात बताने का कह रही थी?अब तो बताओगी या अभी भी एकाध दिन की पेशी डालने का विचार है। मेरी तो शांति और चैन तुम्हारी उस बात से मिट गए हैं। जबसे तुमने मेरी जिज्ञासा को थपकियाँ दी, तभी से एक–एक पल बिताना कठिन हो गया है। वास्तव में नारी का जीवन रहस्यों से परिपूर्ण है। पता नहीं क्यों, नारी को अबला कहा है, जबकि कमजोर तो पुरुष है। नारी तो पुरुष के गले में समर्पण की नकेल डालकर जिधर चाहे मोड़ सकती है। संभवतः कोई भी नारी को परिपूर्णता से समझ नहीं पाया और सभी ने अपने एकाध आधे–अधूरे अनुभव को निष्कर्ष के रूप में अभिव्यक्त कर दिया।

नारी अगर अपने व्यक्तित्व को समग्रता से समझ ले तो न तो उसे सार्वजनिक रूप से अधिकारों की माँग करनी पड़े और न नारी स्वातंत्र्य के व्यर्थ के आंदोलन चलाकर अपनी क्षमता का दुरूपयोग करना पड़े। उसके अन्तर में प्रेम, क्षमा, सहिष्णुता और समर्पण का ऐसा अद्‌भुत और अकूत खजाना भरा पड़ा है कि वह स्वयं के जीवन को तो क्या, सम्पूर्ण वातावरण को भी आलोकित कर सकती है।

बीज धरती में अपने आपको समर्पित करता है, पर बदले में वह धान्य के ढेर के साथ बाहर आता है। समर्पण का गीत अनूठा है। जिसकी नसों में समर्पण का गीत गूँजता है, वहाँ किसी प्रकार की न्यूनता संभव ही नहीं है। क्षेत्र साधना का हो या संसार का, अपनी तमन्नाएँ, अपनी आरजुएँ तो प्रियतम के चरणों में सौंपनी ही पड़ती हैं, और फिर इसका जो परिणाम आता है, उसके समक्ष यह समर्पण तो फीका ही महसूस होता है। प्रसन्न जीवन का मूल आधार ही समर्पण है।

रूपल का सर्वस्व पतिचरणों में समर्पित था। उसकी माँग सिंदूर की लालिमा से चमकती थी, तो उसका हृदय समर्पण के तेज से दैदिप्यमान था।

इसी कारण वह मात्र व्यवहारिक रूप से अमीचंद की पत्नी नहीं थी, अपितु उनकी हृदय सम्राज्ञी थी। अमीचंद के

हृदय का कोना–कोना रूपल के प्रेम से छलकता था। रूपल की सामान्य आकांक्षा की पूर्ति में भी अमीचंद ने लापरवाही नहीं बरती थी। स्वयं एक प्रतिष्ठित जौहरी था। समय का अधिकांश भाग उसे व्यापारादि में लगाना पड़ता था, पर ऑफिस का कार्य होते ही उसके कदम सीधे अपने बंगले की ओर ही उठते थे। इधर–उधर व्यर्थ की गप्पे हाँककर समय को बर्बाद करने का उसे शौक नहीं था।

रूपल की रूपराशि भी अप्रतिम थी। उसके घने केशों में अमीचंद का मन उलझता गया था। दाम्पत्य जीवन जीते हुए उन्हें चार–पाँच वर्ष बीत जाने पर भी न तो उनके जीवन में रूखाप़न आया था और न उदासीनता। ऐसा लगता था जैसे कल की ही बात हो। एक–दूसरे के प्रति वही आकर्षण, वही उल्लास था। दोनों एक–दूसरे के पूरक थे। एक के अभाव में दूसरा अपने आपको रीता समझता था। दोनों ही परस्पर एक–दूसरे की भावनाओं का उचित सम्मान करते थे।

रूपल ने कुछ कहने के लिए अपने होठ खोले पर तुरन्त नारी सुलभ लज्जा का आवरण छा गया। उसकी कटोरे–सी आँखें स्वतः झुक गई। अमीचंद ने उसके चिबुक को धीरे से उठाया। उसकी विशाल केश राशि में अपनी अंगुलियाँ पिरोते हुए कहने लगा–"रूपल! तुम तो ऐसे

शरमा रही हो, जैसे आज ही हमारी सुहागरात है। आखिर मुझे नहीं बताओगी तो किसे कहोगी?मुझसे यह संकोच का पर्दा कैसा?बोलो न?तुम्हारी यह चुप्पी कितनी महँगी और भारी पड़ रही है मुझ पर।"

रूपल ने पलकें ऊपर की। पति के चेहरे को देखा और पुनः पलकें नीचे ढलकाकर बड़ी कठिनाई से कहा– *"आप पिता बनने वाले हैं" कहते–कहते उसने अपना चेहरा* अमीचंद के चौड़े सीने में छिपा लिया।

अमीचंद ने सुना तो खुशी के मारे कुछ क्षण तो अवाक् रह गया। उसे लगा उसके कानों में जैसे हजारों घण्टियों की सुमधुर झंकार बज उठी हो। प्रसन्नता का सोता फूट पड़ा। उसने बलिष्ठ भुजाओं में रूपल को समेटते हुए एक साथ चुम्बनों की बौछार कर दी। रूपल अमीचंद की बाहुओं में कसमसा उठी। रूपल अरे–अरे कहती ही रही, पर अमीचंद ने तभी छोड़ा जब उसका आवेश शांत हुआ।

उसका हृदय पिता बनने के संदेश से तो प्रफुल्लित था ही, पर उसका यह असाधारण व्यवहार रूपल की उस विचित्र अनुभूति से होने वाले पुत्र से जुड़कर हो रहा था। उसने खुशी से चहकते हुए कहा– "देवी! तुमने यह खुशखबरी सुनाकर मेरे हृदय को अपार प्रसन्नता से भरा है। तुम मुझे तो एक असाधारण पुत्र रत्न दोगी ही पर तुम्हारा यह उपहार सम्पूर्ण दुनिया के लिए अनोखा होगा। हमारा जीवन, यह छोटा–सा संसार उस गुलाब की खुश्बू से महकेगा ही पर उसकी महक हमारे भवन की परिधि को तोड़कर चारों ओर फैल उठेगी। हमारा यह दाम्पत्य जीवन भी उस दीपक को पाकर कृतार्थ हो उठेगा।"

तुम महान् भाग्यशालिनी पुण्यपूँजा हो, जिसकी कुक्षि में इस प्रकार का पुण्यशाली जीव आया है। तुम्हारी कुक्षि में ऐसा कोहिनूर पनप रहा है, जो भविष्य में अपने उच्च स्तर की गतिविधियों से संसार के शिलालेख पर अपना नाम चमकाएगा। उसके कार्य का आकलन सदियों तक होता रहेगा। देवी! आज मेरा मन करता है, खूब जी भरकर नाचूँ गाऊँ। रूपल! अपनी खुशी का इजहार करने के लिए शब्द नहीं मिल रहे हैं। उसके जीवन की आभा से धरती का कोना–कोना आलोकित हो उठेगा।

सरल हृदया रूपा तो जैसे इस स्थिति को देखकर

हत्प्रभ हो गई। वह तो भयभीत हिरणी की तरह टुकूर–टुकूर अमीचंद को देखने लगी। उसने कंधों से झकझोरते हुए अमीचंद से कहा– "स्वामी! आप क्या कह रहे हैं?आपकी तबितत तो ठीक है न?ऐसी स्वप्न–सी बातें क्यों कर रहे हैं?मेरी तो मारे भय के जीभ ही तालू से चिपक रही है।"

अमीचंद ने रूपल की स्थिति को भाँपा। अपने आपको संतुलित किया और कहा– "ओ...हो। तुम इतनी जल्दी डर क्यों जाती हो?चलो विस्तार से तुम्हें अब सारी बात समझाता हूँ। तुम प्रातः बता रही थी न कि तुम्हें सिद्धाचल का दो भागों में विभक्त पहाड़ स्वप्न में जुड़ा हुआ क्यों दिखाई देता है?"

रूपल ने जल्दी से सिर हिलाते हुए कहा– "हाँ, पर मेरे सपने को होने वाली संतान से जोड़ने का क्या तुक है?"

अमीचंद ने कहा–"देवी! यही तो मेरी असीम प्रसन्ता का राज है। तुम्हारी कुक्षि रत्नकुक्षि है। तुम ऐसे होनहार पुत्र को जन्म दोगी, जिसका इस पहाड़ पर कुछ न कुछ निर्माण संबंधी योगदान अवश्य रहेगा।"

"आप क्या कहते हैं नाथ?हमारा बच्चा कैसे पहाड़ के निर्माण में अपना योगदान देगा। यह तो फिर भी माना जा सकता है कि वह पालीताणा शहर में कहीं कुछ मंदिर या धर्मशाला का निर्माण कराने में सक्षम होगा। मैं तो रात में सपने देखती हूँ, पर आप तो दिन में सपने देखते हैं। आपने तो शेख चिल्ली को भी पीछे छोड़ दिया है। आप इतने

बड़े–बड़े सपने न देखकर यथार्थ की दुनिया में प्रवेश करें। कितना विराट् पालीताणा का पहाड़ और फिर उसके दोनों भागों को मिलाना।

आर्यनारी पति को परमेश्वर की गरिमा देती है और मुझे आपके प्रति उतनी ही अगाध श्रद्धा है, पर बेसिर पैर की इस घटना पर मैं कैसे विश्वास करूँ? नहीं मेरे सम्राट! आप ऐसी बेतुकी बातें करके मुझे संतुष्ट और प्रसन्न करने का असफल प्रयास न करें। पहाड़ पर निर्माण का कार्य साधारण क्रिया नहीं है। आर्थिक क्षमता के साथ–साथ इसमें प्रचण्ड मानसिक शक्ति चाहिए। इस पंचम काल में इस प्रकार की कल्पना भी संभव नहीं है।"

"नहीं, यह तुम्हारा भ्रम है। आत्मा की शक्ति अपरम्पार है। 'यह असंभव है,' ऐसा कथन कायर पुरुषों का है। आवश्यकता है रूचि और लक्ष्य निर्माण की। लक्ष्य का निर्माण हो जाए तो उसके बीच आने वाली बाधाएँ तो स्वतः ही समाप्त हो जाती है। साधारण कार्य तो सभी करते हैं पर असाधारण कार्यकर्त्ता ही तो विश्व में अपनी कीर्तिपताका हमेशा के लिए प्रसारित कर जाता है। अल्पावधि पश्चात् ही यह गृहांगण नए शिशु के आगमन से खिलखिला उठेगा।

तुम आत्मविश्वास रखो। यह गर्भस्थ शिशु असाधारण पुण्य का स्वामी है। कल्पसूत्र तुमने नहीं सुना क्या?गर्भकाल के माँ के प्रत्येक चिंतन से गर्भ का संबंध जुड़ा हुआ होता है।

माँ के समस्त मनोरथ, उसकी अनुभूतियाँ, उसके स्वप्न आदि सभी का कारण गर्भस्थ बालक होता है। गर्भवती माँ के तौर–तरीके बालक के भविष्य के संकेत होते हैं। तुम स्वयं बताओ। क्या इससे पूर्व तुम्हें कभी विभक्त पहाड़ के एकीकरण का सपना आया था?"

इस प्रश्न के साथ ही रूपल की विचारधारा कुछ आश्वस्त हुई। उसे भी लगा कि वास्तव में उसके पति का कथन सत्य है। निश्चित ही मेरे सपने का इस शिशु से अवश्य संबंध है। इतिहास और स्वप्न विज्ञान भी तो यही कहता है कि ब्रह्ममुहूर्त में अकल्पित सपना अवश्य ही फलदायक बनता है। उसके हृदय सागर में प्रसन्नता की उर्मियाँ उठने लगी। क्या मैं ऐसे महान् पुत्र को जन्म दूँगी, जिसका जीवन एक ऐतिहासिक घटना के रूप में इतिहास में अमर बन जाएगा ? क्या वह प्रभु ऋषभदेव की पदरज से अनेकों बार पावन बनी उस धरा पर ही नहीं, परन्तु पहाड़ पर अपने कार्य की डोर से स्वयं की आत्मा को जोड़ेगा, जहाँ कण–कण पर आत्माएँ शुद्ध और मुक्त बनी हैं। पापियों के पाप भी जिस धरती के श्रद्धासह स्पर्श से धुल जाते हैं। ओ.... हो ! मेरा यह मातृत्व धन्य हो उठेगा।

उसने अपने प्रियतम की आशा और विकास भरी भविष्यवाणी को श्रद्धासह स्वीकार किया। कृतज्ञता के अश्रुकणों से बधाया और कहा–देव गुरु और धर्म का कल्पवृक्ष हमारे घर आंगन में फलीभूत होने वाला है।

शासनदेव की कृपाभरी अमीनजर हमें आप्लावित करें। हाँ, एक बात मैं पूछना चाह रही थी कि आज जब ऑफिस से लौट रहे थे, उस समय आपके चेहरे की रौनक कुछ अधिक ही बढ़ी हुई थी, उसका कारण....।

प्रिये! महावीर का अनुयायी यद्यपि हानि–लाभ में सम रहता है, पर अभी मेरा पदार्थ राग पूरी तरह टूटा नहीं है। बहुत सोचता हूँ कि लाभ–अलाभ में मेरी मनोवृत्ति संतुलित रहे। इस हेतु अधिक से अधिक स्वाध्याय भी करता हूँ फिर भी अनादिकाल से, आत्मा से जुड़े भौतिक संस्कार टूटे नहीं है। आज जवाहरात के विक्रय में अचानक तेजी आने से बहुत अच्छा लाभ हुआ था और वही लाभ सिर पर सवार था। अब रात्रि अधिक बीत गई है। परमात्मा का स्मरण करके शयन का प्रयत्न करो।

रूपल ने कहा– "नहीं! पहले आपके पाँवों की मालिश करूँगी, फिर सोऊँगी।" अमीचंद प्रतिकार करता ही रहा पर रूपल नहीं मानी। अमीचंद सो गया और कुछ ही देर में सपनों में खो गया। अपने प्रियतम को निद्राधीन देखकर स्वयं रूपल भी कुछ देर बाद सो गई पर प्रसन्नता के मारे नींद उसकी आँखों से गायब हो गई थी।

अत्यधिक प्रसन्नता और अत्यधिक विषाद, ये दोनों ही स्थितियाँ मानस को व्यग्र बना देती है।

रह–रहकर उसकी कल्पना में अपना गर्भस्थ शिशु

तैरने लगा। क्या वास्तव में मेरी कौंख में पलने वाला शिखर पुरुष होगा?कौनसा पुण्य साक्षात् कल्पवृक्ष बनकर मेरी आकांक्षा और कामनाओं की पूर्ति हेतु फलीभूत हुआ है?

जब अभी से मेरी ममता का यह हाल है तो जब वह आँगन में घुटनों के बल रेंगता हुआ चलेगा तब मेरी प्रसन्नता और आनन्द किस सीमा तक पहुँचेगा? उसे देखने की उत्सुकता में यह समय कितना भारी लग रहा है। माँ के लिए वास्तव में धरती की उपमा सार्थक और सटीक प्रतीत होती है। बीज बोने के बाद वर्षा का इंतजार करना पडता है। समय की पूर्णता पर ही मधुर और स्वादिष्ट फलों का आनन्द प्राप्त होता है।

खैर! मैं अपने उस लाड़ले अंगजात को देख नहीं सकती पर उसके अस्तित्व की अनुभूति करके ही समय काट लूँगी। अब इसके पालन में मुझे और अधिक सावधान रहना है। इतिहास कहता है कि माँ की क्रियाओं का गर्भ पर गंभीर असर होता है। अपनी समस्त क्रियाओं पर मुझे सूक्ष्मता से अवलोकन करना चाहिए। उसके आत्मिक और शारीरिक विकास के अनुकूल ही मुझे अपने आपको ढालना चाहिए।

माँ रूपल सदाचार और आचारनिष्ठा की परम पक्षधर थी। माँ की ममता तो यों भी अमृतधारा होती है। उसके झरणे का कोई ओर–छोर नहीं होता। संतान का पालन–पोषण उसके मातृत्व का अभिन्न पहलू है। उसे अपनी औलाद से

कोई अपेक्षा भी नहीं होती। माँ की गोद शांति और सुख का अवर्णनीय धाम है। इतिहास के अनुसार पूत तो कपूत हो सकते है, पर (अपवादों को छोड़कर) माँ कभी कुमाता नहीं बनती। अगणित कष्ट और परीषह सहकर भी वह पुत्र पर किसी प्रकार की आँच नहीं आने देती।

रूपल की ममता का कहना ही क्या था?वह तो इस अनुभूति से ही गौरवान्वित थी कि उसकी कुक्षि में एक दैदिप्यमान जीता–जागता हीरा जगमगा रहा है। वह पूर्ण सतर्कता से अपना समय यापन करने लगी। सेठ व्यापारी थे। व्यापारिक अगणित समस्याओं के बावजूद वे अपनी प्राणप्रिया की समस्त क्रियाओं पर तीक्ष्ण दृष्टि रखते थे। प्रायः यही देखा जाता है कि दिन–भर व्यापारिक गुत्थियों को उलझाते–सुलझाते जब पुरुष घर लौटता है तो उसकी सारी आकांक्षाएँ व तमन्नाएँ दम तोड़ देती है। कोमल अनुभूतियों के स्थान पर मात्र क्षीण–सी दाम्पत्य संबंधों की डोर ही उन्हें बाँधें रखती है।

महानगरों की व्यस्तता तो और भी अधिक दयनीय है। उन्हें तो यह भी पता नहीं रहता कि उनके बच्चे कौनसी श्रेणी में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं?उनकी पत्नी गाड़ी, बंगला और आभूषणों के अतिरिक्त भी कुछ चाहती है। पति का सान्निध्य, उनकी समीपता, परस्पर विश्वास की दृढ़ता पत्नी का सर्वोत्तम आभूषण है और इसीकी उसे तमन्ना रहती है।

पति–पत्नी का नैसर्गिक और अकृत्रिम प्रेम एक शिखर है, जबकि शारीरिक मिलन तो उस शिखर की पहली सीढ़ी भी नहीं है।

आत्मा की गहराई से प्यार करने वाली रूपल ने एक बार अमीचंद से कहा– "स्वामी! कुछ दिनों से मेरे अन्तर्मन में एक अरमान मचल रहा है। अगर आप अधिक असुविधा महसूस न करें तो मैं आपके साथ शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा करना चाहती हूँ।"

अमीचंद रूपल की यह इच्छा जानकर कुछ चिंतित हो गया। कहाँ मुंबई, कहाँ पालीताणा?इतनी लम्बी दूरी और इस स्थिति में कैसे संभव है। इच्छापूर्ति भी आवश्यक है अगर कामना अधूरी रह गई तो रूपल का मन खिन्न हो जाएगा। इस समय इसकी मानसिक उदासीनता बच्चे के विकास को प्रभावित करेगी। उसने रूपल को आश्वस्त किया कि तुम्हारी इच्छा अवश्य परिपूर्ण होगी।

अमीचंद राह में आने वाली बाधाओं को जानता था पर वह साहसी युवक था। बाधाओं से घबराकर आकांक्षाओं को तोड़ना उसके स्वभाव के विपरीत था। उसमें क्षात्र तेज चमकता था। उसकी धमनियों में बहने वाला रक्त ओजपूर्ण था। जीवन में समागत समस्याओं को देखकर रूख बदलना उसे अपने पुरखों का अपमान लगता था। समस्याओं को चीरकर आगे बढ़ना, उसने अपनी वंश–परम्परा से ही सीखा था। रूपल अपने पति की नस–नस से वाकिफ थी। वह जानती थी कि उसके प्रियतम उसकी कामना पूरी करेंगे ही।

वह नहीं कहती तो करती भी क्या?कितने समय तक वह अपने गर्भ की इच्छा को टालती। वह तो पेट के अन्दर से ही पालीताणा की यात्रा के लिए हाथ–पाँव मार रहा था। कितने दिनों से वह अन्दर ही अन्दर मचल रहा था। आखिर

रूपल को अपने बच्चे की इस पुकार के समक्ष झुकना ही पड़ा। स्वयं की अपनी शारीरिक कठिनाइयाँ जानते हुए भी रूपल को अमीचंद से बात करनी पड़ी। और अमीचंद को भी अपने शिशु की इस माँग को मानना पड़ा।

उन्होंने अपनी कुलदेवी और सिद्धाचल के अधिष्ठायक देव यक्ष का भावपूर्वक स्मरण कर यात्रा की तैयारियाँ करके शुभमुहूर्त देखकर पालीताणा की ओर प्रयाण प्रारंभ कर दिया।

रूपल की प्रसन्नता का पार नहीं रहा। प्रसन्न वदन वह पति के साथ पालीताणा पहुँच गई। दोनों ने विधिपूर्वक दादा के दरबार में प्रवेश किया। प्रसन्नता का बाँध पूर तोड़कर बहने लगा। दादा दरबार का दृश्य....जीवन के परिवर्तन का वह क्षण.....रोयाँ–रोयाँ नृत्य कर उठा। भक्तिधारा का रस हृदय तोड़कर बह उठा। पति–पत्नी दोनों ही परमात्म प्रेम के दीवाने बनकर आनंदातिरेक से नाचने लगे। अंग–अंग खिल रहा था। रूपल की अनुभूति बड़ी विचित्र थी। उसे तो ऐसा लगा कि जन्म–जन्म से अतृप्त उसकी आँखें परमात्मा के दर्शन से परितृप्त हो गई हैं।

रूपल की यह अनोखी तृप्ति गर्भस्थ शिशु के कारण थी। होती भी क्यों नहीं?उसकी कुक्षि में पल रहा जीव भी तो असाधारण था। वह तो शंत्रुजय के पहाड़ पर अपने जीवन का साक्षी रूप शिलालेख अंकित करने वाला था न? उसने

भाव–विभोर होकर मंदोदरी के नृत्य की याद ताजा कर दी। दर्शकों के झुण्ड इकट्ठे हो गए। उन्होंने इस मुग्धा के नृत्य को देखकर दाँतों तले अँगुली दबा दी। परम्परा से मारवाड़ी पर वर्तमान में मुंबई प्रवासी प्रभु भक्ति में आत्मविस्मृत इस युवती की अनुपम नृत्य छटा को देखकर दर्शक वाह–वाह कर उठे।

जब प्रभु दर्शन से रूपल की आत्मा कुछ शीतल बनी तो दोनों ही पुनः मुंबई आ गए। समय पंख लगाकर उड़ने लगा। रूपल ने अमीचंद की सहमति से सम्पूर्ण वर्ष के लिए ब्रह्मचर्य का नियम ले लिया। वासना का कीचड़ रूपल और अमीचंद दोनों के हृदय में क्षीण था। दोनों को महावीर के शासन से गहरा अनुराग था। परमात्मा के प्रति वे निःसंशय थे। उनके प्रेम का आधार आत्मिक था न कि शारीरिक। उनके जीवन का प्रासाद समर्पण की नींव पर खड़ा था।

रूपल के सौन्दर्य में चन्द्रमा की चाँदनी थी तो उसके आचार में भारतीय नारी के त्याग का प्रतिनिधित्व था। इसी कारण एक–दूसरे का सहवास आग और घी के स्थान पर वीणा और उसकी झंकार था। उनका मिलन माधुर्य रस की अमीवृष्टि जैसा था।

दोनों प्रतिदिन महावीर के जीवन के भिन्न–भिन्न प्रसंगों पर अथवा उनके प्रमुख और व्रतधारी श्रावकों पर चर्चा करते। बहस कभी–कभी गर्म भी हो जाती थी, पर अन्त

उसका सुखद रहता, क्योंकि किसी का कोई पूर्वाग्रह न था। चर्चा का आधार जिज्ञासा की पृष्ठभूमि से आरंभ होता था और अंत जिज्ञासा के विवेक सम्मत उपशमन पर। एक बार की चर्चा ने अमीचंद को इस निर्णय के लिए मजबूर कर दिया कि व्यक्तित्व किसी बाह्य कलेवर की बैसाखी नहीं है।

बात नारी शक्ति से प्रारंभ हुई थी। आम सोच है कि नारी मात्र पुरुष की छाया ही है। अगर पुरुष का सहारा न हो तो नारी का अस्तित्व खण्ड–खण्ड होकर बिखर जाता है। बिन्दु सिंधु में रहे तो उसके अस्तित्व की सुरक्षा निश्चित् है पर बिन्दु उस दायरे को तोड़कर विलग हो जाए तो सिंधु तो ज्यों का त्यों रहता है, पर बिन्दु कब, कहाँ धरती माँ की गोद में विलीन हो जाए, कुछ ज्ञात नहीं हो पाता।

तुरन्त रूपल ने प्रतिवाद करते हुए कहा– "क्षमा करें! मैं आपके इस थोथे तर्क से सहमत नहीं हूँ। इस तर्क पर मैं अपना तर्क सहमत कर सकती हूँ कि समुद्र अथाह जलराशि का स्वामी है पर सम्पूर्ण जलराशि किसी देवी प्रकोप अथवा चमत्कार से सूख जाए अथवा भाप बनकर उड़ जाए तो समुद्र के पास क्या अवशिष्ट रहेगा?"

अमीचंद ने तर्क की गंभीरता को बिना समझे सरलता से कहा– "अगर सम्पूर्ण जलराशि समुद्र से नाराज हो जाए तो उसके अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लग जायेगा?बचेगा ही क्या जिस पर वह इतरा सके।"

तो स्वामी! आप नारी की तुलना बिन्दु से नहीं सम्पूर्ण

जलराशि से करें। जलराशि और समुद्र एक–दूसरे के पर्याय है। नारी और पुरुष दोनों एक रथ के दो पहिये हैं। दोनों का गौरव अपनी–अपनी सीमाओं में अक्षुण्ण है। नारी की अपनी मर्यादा है और पुरुष की अपनी। अपनी मर्यादा की रेखा को लाँघकर कोई भी दीर्घजीवी नहीं होता।

न पुरुष का दायरा नारी के दायरे से कमजोर है और न नारी का दायरा पुरुष से न्यून है। संसाधनों को पाकर चाहे नारी हो या पुरुष, किसी भी क्षेत्र में विकास कर सकते हैं। वर्तमान में भी ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं, जिन्हें देखकर यह सोचा भी नहीं जा सकता कि नारी अबला हो सकती है। अतीत के पन्ने भी नारी के त्याग, बलिदान, शौर्य और विद्वत्ता के प्रकाश से चमक रहे हैं।

आप अपने आराध्य परमात्मा महावीर के जीवन प्रसंग को ही लीजिए। जब अंबड़ ने निवेदन किया कि "मैं राजगृही जा रहा हूँ, कोई कार्य सेवा हो तो फरमाकर सेवक को अनुग्रहित करें।" तब परमात्मा महावीर के कथन पर जरा गौर करें। राजगृही समृद्धि में झूलती अलकापुरी थी। उसमें वैभव के अम्बार पर आलोटते अनेक श्रीमंत महावीर के अनुयायी रहते थे। स्वयं राजगृही का भाग्यविधाता सम्राट् श्रेणिक महावीर का परमभक्त था।

करूणा के अक्षय स्त्रोत महावीर ने न सम्राट श्रेणिक को याद किया और न बुद्धि के बृहस्पति अभयकुमार या

धन्ना का स्मरण किया। नारी जाति के परम हितैषी महावीर ने तुरन्त श्राविका सुलसा का स्मरण किया और कहा कि सुलसा को "आत्मस्मरण में सतत् प्रवृत्ति करने का संदेश देना।"

स्वामी! इस घटना के प्रकाश में महावीर प्रभु की करूणा तो प्रतिबिंबित हो ही रही है, पर साथ ही नारी शक्ति का नाद भी झंकृत हो रहा है। कुछ तो ऐसी अनूठी और *विलक्षण प्रतिभा होगी कि जिससे प्रभु महावीर स्वयं आकृष्ट* थे।

सुलसा शत–प्रतिशत सोना थी। अम्बड़ के आश्चर्य का पार नहीं रहा। सुलसा की ऐसी कौनसी विलक्षणता है, जिस पर परमात्मा विश्ववंद्य महावीर को भी नाज है। मुझे सुलसा में उस छिपे स्वर्ण को कसौटी पर कसकर देखना चाहिए।

अम्बड़ ने अपनी देवी शक्तियों का उपयोग करके भरसक प्रयत्न किए कि कैसे भी करके सुलसा को अपनी आराधना से च्युत किया जाए पर सुलसा अम्बड़ की शक्तियों के समक्ष फौलाद बनी रही। वह जरा भी विचलित नहीं हुई। उसकी चट्टान जैसी दृढ़ता के समक्ष अंत में अम्बड़ को अपने समस्त इन्द्रजाल को समेटकर नतमस्तक होना पड़ा। अम्बड़ को इस पराजय में भी प्रसन्नता की अनुभूति हुई थी।

स्वामिन्! शक्ति या प्रभुता किसी की बपौती नहीं है।

यह तो मुगल शासन की महिमा है, जिसने नारी की समस्त स्वतन्त्रता को घूँघट में कैद कर दिया है। आप तो यों समझिए कि पुरुष को विकास के जितने साधन उपलब्ध हैं, उसका आंशिक वातावरण भी नारी को मिले तो उसकी क्षमताओं की अपूर्व जागृति हो सकती है।

अमीचंद भी इस यथार्थ से इन्कार न कर सका। वह जानता था कि रूपल ने जो कुछ कहा है, वह मात्र वाक्पटुता अथवा शब्दों का मायाजाल ही नहीं है, अपितु एक ठोस सच्चाई है। वह स्वयं भी तो कदम–कदम पर रूपल के व्यक्तित्व की अनुभूति करता था। उसका और रूपल का संयुक्त जीवन अनेकों उतार–चढ़ावों से भरपूर रहा है। जब–जब भी वह मानसिक रूप से किसी परिस्थिति वश संतप्त या यंत्रणा अनुभव करता था तो रूपल की सलाह सूचना एक शीतल और मंद–मंद बहते पवन का कार्य करती थी। रूपल का प्यार से छलकता सामीप्य उसकी सारी मानसिक और शारीरिक अशांति को क्षणमात्र में काफूर कर देता था।

प्रातःकालीन मंद–मंद बहता समीर संगीत की प्रतीति करा रहा था। उस सुरीली तान में एक मादकता का पुट था। पक्षियों का कलरव प्रारंभ हो चुका था। रात्रि में अपने प्रियतम की जुदाई में मुर्झायी कमल की पंखुड़ियाँ प्रियतम के आगमन की उत्सुकता से इन्तजार कर रही थी। अंधकार. को चीरकर सूर्य गगन मण्डल में छाने का संघर्ष कर रहा था। प्राची दिशा ने अपने प्रियतम के आगमन में स्वागत हेतु पलक–पाँवड़े बिछा दिए थे। लज्जा के भार से बोझिल उसका सर्वांग सिंदूर की लालिमा से दपदपा रहा था।

सेठ अमीचंद की आँखें कभी की खुल चुकी थी। दूसरे पलंग पर सो रही उनकी प्रियतमा रूपल की कराह सुनकर उनकी रही सही नींद भी भाग गई थी। यद्यपि रूपल की सहिष्णुता अपार थी, फिर भी धरती पर एक नए प्राणी का आगमन....उसका सर्जन सामान्य क्रिया तो नहीं थी। उसकी छटपटाहट देखकर अमीचंद समझ गए कि नौ माह का इन्तजार समाप्त होने ही वाला है। वे उठकर बाहर आ गए और यथोचित समस्त आवश्यकताए रूपल के समीप जुटा दीं। रूपल का हाल अजीब था। दर्द और प्रसन्नता का मिश्रण था। इस अनुभव से वह पूर्व में एक बार गुजर चुकी थी। नारीत्व की सार्थकता मातृत्व में सन्निहित होती है। "माँ" इस सम्बोधन को सुनने के लिए उसके हृदय की

उत्सुकता असीम होती है। इस अनुभूति में दर्द के स्थान पर सर्जन के गौरव का अपूर्व उल्लास छिपा हुआ होता है।

अमीचंद ड्राइंग रूम में अपने अंश के प्रथम रूदन को सुनने के लिए बेताब हो रहे थे। समय मानो काटे नहीं कट रहा था। उसके कान रूपल के कक्ष की ओर ही लगे हुए थे। शरीर का रोयां–रोयां उस समय तो कान बना हुआ था। इतने में इंतजार की घड़ियाँ समाप्त हुई। खिलखिलाती दाई अमीचंद के कक्ष में प्रविष्ट हुई। अमीचंद तुरंत पलंग से उठ खड़ा हुआ। उसने बेसब्री से पूछा– "क्या हुआ?"

दाई अमीचंद की उत्सुकता को पलभर निहारती रही और दूसरे ही क्षण कहा–"बधाई हो सेठ! आप पुत्र के पिता बने हैं।" सेठ ने तुरंत कींमती मोतियों की माला गले से उतार कर दाई को भेंट की। सेठ के हृदय की प्रसन्नता सीमा तोड़कर फूटती सी प्रतीत हुई। उनका सीना धौंकनी की तरह प्रसन्नता के आवेश में बज रहा था। आज उनके हृदय की कल्पनाएँ आंगन में कोंपल के रूप में फूट आई थी। प्रसन्नता की अभिव्यक्ति का विस्तार करने हेतु उनके भवन की छत पर जोर–जोर से थाली की झंकार झंकृत होने लगी।

अड़ोस–पड़ोस में शीघ्र ही यह बात वायुवेग की तरह फैल गई कि अमीचंद के घर पर पुत्र रत्न का जन्म हुआ है। सेठ को चारों ओर से बधाइयाँ मिलने लगी।

कुल परम्परा की विधि का पालन करते हुए सेठ ने अपने सभी परिचित स्वजन वर्ग के मध्य पुत्र को 'मोती' के नाम से अभिहित करने का संकेत किया।

परम्परानुसार वे रूपल के कक्ष में जाने से कुल वृद्धाओं द्वारा प्रतिबंधित थे। यद्यपि उनके अंतर में पुत्र दर्शन की भावनाएँ तूफान की तरह मचल रही थी, उत्सुकता चरम सीमा पर थी पर बेबस थे। पर कटे पंछी की तरह छटापटा कर रह जाते थे। चोरी छुपे मात्र एकबार देखने के लिए उन्होंने अथाह प्रयास किए और कुछ पलों के लिए उन्हें एकांत मिल ही गया।

छुप–छुपकर मिलने का अंदाज कुछ अनोखा ही था। अमीचंद ने कभी इस स्थिति का सामना नहीं किया था। लोकलाज के भय से उसके हाथ–पाँव फूल रहे थे, पर अपने पुत्र को एक नजर देखने का मोह संवरण नहीं कर पाये। उसने धड़कते दिल से चारों ओर चोर नजरों से देखते हुए रूपल के शयन कक्ष में प्रवेश किया। भय और उत्सुकता से उसकी धड़कनें असामान्य हो रही थी।

रूपल की पलकें बंद थी। उसका एक हाथ पुत्र के सर्वांग को संरक्षण देता मोती के नाजुक शरीर को स्पर्श न करता हुआ भी लिपटा हुआ था। मोती को तो जैसे अपनी माँ के अतिरिक्त अन्य किसी के अस्तित्व की कोई परवाह ही नहीं थी। वह तो माँ के सीने से लगा संसार की धूप–छाँव से बेफिक्र आराम से सोया हुआ था।

अपने हृदय का टुकड़ा.....आँखों का तारा.....खुशियों का खजाना.....मोती सामने ही लेटा था और उसके शरीर से उठती भीगी–भीगी खुश्बू अमीचंद को सीने से लगाने को आमंत्रित–सी कर रही थी, भुजाएँ मचल रही थी। अपने अस्तित्व की प्रतिकृति को उठाने के लिए, पर उसने भावनाओं को नियन्त्रित किया और धीरे से पुकारा–रूपल!

भयंकर शोरगुल में भी पहचानी जाने वाली उस कर्णप्रिय आवाज को सुनते ही रूपल की बंद आँखें तुरंत ही खुल गई। उन खुली आँखों में असाधारण पुत्र की माँ का गौरव छलछला रहा था। कई दिनों से आज उसने अपने प्रियतम को देखा था। विरह की व्यथा तो उसके अंतर को नहीं मथ रही थी पर एक पत्नी की आँखें तो पति दर्शन को व्याकुल थी ही। उसने धीमे से कहा– "देव! लगता है अपने पुत्र दर्शन की उत्सुकता ने आपके कदमों को इधर बढ़ा ही दिया है।"

"नहीं रूपल! मैं तुम दोनों को देखने के लिए बेताब हो रहा था पर मर्यादा की बेड़ियाँ मेरे पाँवों में मजबूती से पड़ी हुई थी। तुम्हें तो फिर भी दूर से देख सकता था पर इस मोती का शरीर तो इतना छोटा–सा है कि मैं आँखें भी फाड़ता था पर फिर भी देख नहीं पा रहा था। और इंतजार मैं कर नहीं पाया। तुम बताओ कि तुम्हारी तबियत कैसी है?" रूपल के चेहरे पर एक मुस्कान तैर गई। उसने ममताभरी

नजरों से अपने लाड़ले को देखते हुए कहा– "आपका यह बेटा इतना प्यारा है कि इसे देखते–देखते मैं अपना सारा दर्द भूल गयी हूँ। आप देखो तो सही, इसका चेहरा कितना मासूम और कितना पवित्र है।"

अमीचंद की नजरें अपने पुत्र के शरीर को ही टटोल रही थी। उसने कहा– बस! अब दो चार दिन की ही बात हैं फिर तो मैं अपने मोती को अपने वात्सल्य की फुहारों से भीगोकर रख दूंगा। हाँ! इन दिनों तो तुम्हें मेरी जरा भी याद नहीं आई होगी?शरारत से मुस्कुराते हुए अमीचंद ने पूछा।

रूपल ने भी शरारत से कहा– "बिलकुल नहीं! यह छोटा अमीचंद मेरी बगल में ही होता है। सारा दिन इसका चेहरा देखती रहती हूँ।"

अमीचंद का प्रफुल्ल चेहरा थोड़ा उदास हो गया। रूपल ने दो क्षण रूककर कहा– "आप कैसी बातें करते हैं?क्या आपने मुझे अभी तक नहीं पहचाना है। ऐसा हो सकता हैं क्या कि मैं आपको याद न करूं?आपके ख्वाब और आपका प्यार ही तो मेरी जिन्दगी का प्रकाश है। माँ की भूमिका में भी उसे प्रतिपल अपने प्रियतम के ही दीदार होते हैं क्योंकि बेटा भी तो उन्हीं का अंश है।"

अमीचंद को अचानक किसी की निकट आती पदचाप सुनाई दी। उसने तुरंत खड़े होने का उपक्रम किया। रूपल धीमे से मुस्कायी और न चाहते हुए भी संकेत से विदा की अनुमति दे दी। पर अमीचंद की चोरी पकड़ी जानी थी।

अमीचंद बाहर निकले उससे पूर्व ही उसकी बहिन ने कक्ष में प्रवेश किया। बहिन पहले तो सकपकायी पर फिर तुरंत ही शरारत के अंदाज में कहा– "क्यों भैया! भाभी के बिना एक माह का समय भी नहीं निकाल सके?"

प्रेम दीवाना अमीचंद–उसकी तो हालत ही बहिन के इस कथन पर पतली हो गई। संकोच से उसके होंठ सिल गए। मर्यादा का ताला उसके होठों पर लग गया। भाई के संकोच को दूर करने के अंदाज में बहिन ने कहा– "इंतजार की घड़ियाँ लम्बी लगती हैं पर इस इंतजार के ताप से हृदय झुलसता नहीं, गुदगुदाता है। है न भैया! अगर रिश्वत दो तो तुम्हारी यह मुलाकात थोड़ी और लम्बी कर सकती हूँ," तुरंत बाहर निकलने को व्याकुल अमीचंद के मुँह से सहसा ना निकला। ननद–भाभी दोनों अमीचंद की इस व्याकुलता पर खिलखिला कर हंस पड़ी।

मोती चन्द्रमा की कला की तरह दिनोंदिन बड़ा होने लगा। पिता का अनुशासित संरक्षण और माँ की ममताभरी गोद उसके संतुलित विकास में अत्यधिक उपयोगी बनी। प्रिय बंधु नेमी उसकी छाया बनकर रक्षा करता था। नेमी का मोती के प्रति अथाह स्नेह का भाव था। दोनों बंधु जब अंगुली थामकर साथ चलते तो राम–लक्ष्मण की सहसा स्मृति हो आती थी। ईर्ष्या या प्रतिद्वन्द्विता के स्थान पर उनमें आत्मीयता की गहराई पनपी थी।

जब भी दोनों साथ होते, शरारतें जी–भरकर करते पर उनकी शरारतों में उद्दंडता नहीं होती थी। उनकी मासूम और पवित्र शरारतों को देखकर माँ रूपल और पिता अमीचंद की आँखों की चमक बढ़ जाती थी। मोती की महानता की पदचाप बचपन में ही सुनायी दे रही थी। आवारागर्दी से कोसों दूर दोनों बंधु माता–पिता के जीवन की ज्योति थे।

माँ की ममता और पिता का वात्सल्य रोम–रोम से बहकर दोनों पुत्रों के जीवन मार्ग को प्रशस्त कर रहा था, परंतु उस ममता और वात्सल्य की यह विशिष्टता थी कि वह पुत्रों के जीवन विकास की बेडी न बनकर प्रेरणा की मधुर कविता बनकर नेमी और मोती के जीवन को माधुर्य रस से सराबोर कर रही थी।

समय पंख लगाकर उड़ने लगा। सुखी संपन्न मानव

को तो समय और भी जल्दी ही बहता प्रतीत होता है। यद्यपि प्रकृति अपने समय में ही सारा कार्य करती है। नेमी सात एवं मोती चार बसंत पार कर चुके थे।

एक दिन संध्या समय ऑफिस से आते वक्त अमीचंद ने देखा–उनके दोनों लाडले आपस में उलझे हुए हैं। अमीचंद को इसमें कुछ नवीनता की अनुभूति हुई कि यह आज लड़ना कहाँ से सीखा है।

अमीचंद को देखते ही दोनों बच्चे तुरंत अलग हो गए और फिर पिता से चिपक गए। मोती तो छोटा ही था। तुरंत पिता ने मोती को तो गोद में उठा लिया और नेमी को अंगुली थामकर बैठक में पहुँच गए। प्यार भरा पिता का सान्निध्य..... उनका अनुशासन....उनके सीने में उठ रही धड़कनों को सुनना, निश्चित ही वह पल और वह क्षण जीवन का अमृत था और दोनों बेटे उस अमृत का पान करने में जरा भी नहीं चूकते थे।

अमीचंद ने मोती और नेमी दोनों को आमने–सामने अपनी गोद में बिठाया और अत्यंत संयत आवाज में पूंछा–"बेटा! आज तुम आपस में किस कारण उलझ रहे थे?" अमीचंद ने विधिवत् यद्यपि बाल मनोविज्ञान नहीं पढ़ा था फिर भी उसका अनुभव कहता था कि बच्चों में पनपती किसी भी भावना को अनदेखा करने का परिणाम भविष्य में अत्यंत खतरनाक होता है। उनकी छोटी बातों में ही उनके

भविष्य का दर्शन होता है।

मोती के बोलने से पूर्व ही नेमी बोल उठा, "पिताजी! आज शाम को आपके आने से कुछ देर पहले माँ ने आपके पाँवों की मालिश के लिए चंदन के तेल की शीशी बाजार से मंगवायी थी। मैंने माँ से कहा–पिताजी के पाँवों की मालिश मैं करूँगा तब यह मोती बीच में ही बोल पड़ा कि मालिश मैं करूँगा। अब आप ही बताइए, क्या इसे मालिश करनी आती है?मैंने इसे मना कर दिया कि तुम छोटे हो, अभी नहीं कर सकते! बस इसी बात पर इसने जिद पकड़ ली और उलझ गया।"

इतने में तो मोती ने जल्दी से कहा–"पिताजी! आप बताओ क्या मैं मालिश नहीं कर सकता?अब भी मैं छोटा हूँ क्या?मैं भी रोटी इसके बराबर खाता हूँ फिर छोटा कैसे? अगर छोटा होता तो रोटी नहीं खाता, दूध पीता।"

अमीचंद के हृदय में अपने लाडलों की यह बात सुनते ही वात्सल्य का सागर छलक आया। उन्होंने आवेश से दोनों ही बेटों को अपने कलेजे से चिपका लिया। उस समय उसे यह दुनिया स्वर्ग जैसी नजर आ रही थी। बच्चों के मासूम और छोटे से दिल में भी कितना लगाव.....कितनी उष्मा.....। उसने सोचा.....काश! यह समय यहीं थम जाए। मेरी दुनिया बस ऐसी ही स्थिर हो जाए।

उसने खुशी से कहा–"तुम दोनों ही मालिश कर सकते हो। इसीलिए तो देखो, कुदरत ने दो पाँव दिए हैं पर

अभी नहीं। थोड़े और बड़े हो जाओ, उसके बाद ही करना। अभी तो तुम्हारी माँ या नौकर कोई भी कर लेगा।"

दोनों के चेहरे उतर गए। नेमी ने आदर से प्रतिवाद करते हुए कहा–"पिताजी! आपके पाँव दो हैं, माँ तो एक है, माँ के हाथ थक नहीं जाएंगे।"

"अच्छा! तुम्हें माँ की चिंता है। चलो माँ से नहीं करवाएंगे, नौकर से करवा लूंगा। अब तो खुश..... ।"

नहीं पिताजी! हमारे स्कूल के अध्यापक कहते हैं कि अपनों का कोई भी काम नौकर से नहीं करवाना चाहिए। माता–पिता का काम तो कतई नहीं। उनका काम तो स्वयं अत्यंत भावभक्ति से करना चाहिए। माता–पिता का संतान पर अत्यंत उपकार है। उन उपकारों का ऋण तो उतारा ही नहीं जाता पर उनकी सेवा–भक्ति करके उनकी आत्मा को तृप्त अवश्य करना चाहिए, जिससे उनकी अन्तरात्मा का आशीर्वाद मिल सके। आशीर्वाद की नींव पर ही तो संतान के भविष्य का महल टिकता है।

अपनों से की जाने वाली सेवा अगर वेतनभोगी द्वारा होती है तो उसमें आत्मीयता के सुगंधित परमाणु नहीं होते। इस आत्मीयता के परमाणुओं के अभाव में यह सेवा आत्मा–रहित शरीर जैसी है। जिस प्रकार आत्मा के अभाव में शरीर चिता पर सजा दिया जाता है, वह मात्र मिट्टी में मिलने योग्य ही रह जाता है, यही स्थिति वैतनिक सेवा की है।

नहीं पिताजी! मालिश तो हम ही करेंगे। हम दोनों मिलकर करेंगे। मोती को सीखाना मुझे मंजूर है पर आपकी मालिश अनुचर करे, यह मंजूर नहीं। आप वादा करो कि हमसे ही मालिश कराएंगे।

अमीचंद को गहरी प्रसन्नता हुई। उन्होंने शयन से पूर्व मालिश करवाने का वायदा किया। रूपल अन्दर खाना बना रही थी। उसने अमीचंद के आगमन को जान लिया था। जब देखा कि उन्हें आए लम्बा समय हो गया पर अभी तक अंदर खाना खाने नहीं आए?तो कुछ चिन्तित होते हुए वह उठी और बैठक में आ गई।

बाप–बेटों को तृप्ति से खेलते हुए देखा तो उसने संतोष की सांस ली और नाराजगी दिखाते हुए कहा–"याद है न?आपने एक बार मुझसे शिकायत की थी कि तुम्हें अब मेरी याद तो नहीं आती होगी क्योंकि बेटे का सलोना चेहरा जो सामने है।

आज यही शिकायत मैं आपसे करती हूँ। कितना समय हो गया आपको आए, पर क्या मेरी सुध ली?"

अमीचंद पत्नी की बात सुनकर थोड़ा खिसिया गया। वास्तव में इन क्षणों में अपनी पत्नी के अस्तित्व को भूल ही गया था। अपने पुत्रों की मासूमियत पर ही उसकी सारी अवचेतना केन्द्रित हो गई थी।

अमीचंद ने खुशामदी के अंदाज में कहा–"तुम गलत समझ रही हो। वास्तव में तो तुम्हें धन्यवाद देना चाहिए कि

आते ही मैंने उलझे बेटों की समस्या सुलझाकर तुम्हारा बोझ हल्का किया अन्यथा तुम्हें परेशान करके और ज्यादा काम बढ़ाते। मैं तुम्हें भूल सकता हूँ?तुम्हारे इस सलोने चाँद से मुखड़े को देखने के लिए ही तो समय से पूर्व घर पर आ जाता हूँ।"

"रहने दो ये चिकनी चुपड़ी बातें! अब मैं तुम्हारे इस अंदाज को खूब समझती हूँ। खैर, अब जल्दी हाथ मुँह धोकर आओ ताकि समय पर भोजनादि क्रिया संपन्न हो सके," कहकर रूपल तो अंदर चली गई। अमीचंद ने अपने बेटों की अंगुली पकड़कर कहा–"चलो बेटे! अब अगर जरा भी देर हो गई तो माँ नाराज हो जाएगी और फिर समझते हो न, माँ नाराज हो गयी तो क्या होगा?"

मोती ने बड़ी मासूमियत से जल्दी–जल्दी कहा–"हाँ पिताजी! माँ नाराज हो गई तो मुझे भगवान की कहानी नहीं सुनाएगी और जब तक भगवान की कहानी नही सुनूंगा, मुझे नींद नहीं आएगी। पिताजी! माँ बहुत अच्छी–अच्छी बातें बताती है। आज कुछ देर पहले माँ ने भगवान ऋषभदेव की कहानी सुनायी थी। मुझे बहुत अच्छी लगी। पिताजी, आप मुझे भगवान दिखाओ न?माँ कहती है कि भगवान सिद्धाचल में रहते हैं। आप ले जाओगे न हमें भी?"

अमीचंद की चंचलता काफूर हो गई। उसने ध्यान से मोती की आँखों में झाँका। उन आँखों में एक विचित्र उत्साह और जिज्ञासा झलक रही थी। पालीताणा (सिद्धाचल) का

नाम लेते–लेते उसकी आवाज में कंपन आ गया था। अमीचंद ने बेटे के सीने में उफनते जज्बातों को समझा और कहा–"जरूर बेटा! तुम्हारी इस इच्छा को अतिशीघ्र पूरा करेंगे। वैसे भी लंबा समय हो गया है। प्रभु आदिनाथ के चरणों में जा नहीं पाए हैं। उनका विरह सालता तो है पर आलस्य को व्यस्तता का बाना पहनाकर संतुष्ट हो जाता हूँ। अब जल्दी ही चलेंगे। उस पालीताणा के सुरम्य और नयनरम्य वातावरण की हल्की–सी झांकी कहानी के रूप में रात्रि को दिखाऊंगा।

रूपल ने बड़े ही प्यार से तीनों को भोजन करवाया। अमीचंद ने पहले दोनों पुत्रों को एक–एक कौर अपने हाथ से खिलाया और फिर तीनों ने मौनपूर्वक अपना–अपना भोजन निपटाया और शयन कक्ष में आ गया।

नेमी और मोती अपनी छोटी–छोटी नाजुक हथेलियों से पिता के पाँवों की मालिश करने लगे। तीनों ही संतुष्ट और परम प्रसन्न नजर आ रहे थे। मासूम दिल अपने जज्बातों को पूरा होते देखकर खुशी की अधिकता से अनियंत्रित होकर मीठा संगीत गा रहे थे। मालिश तो वे क्या करते पर उनकी सेवा की इस ललक ने अमीचंद के हृदय को गुदगुदा दिया था। उसका दिल किया कि वह इन बच्चों को अपने सीने में इस तरह छुपा ले ताकि संसार की कोई भी पीडा उनके दामन को न छू सके। वात्सल्य की शीतल छाँव में सूर्य की एक भी किरण इनके शरीर को न झुलसा सके।

अपने बेटों की मासूम अदा में खोया अमीचंद मोती के प्रश्न पर यथार्थ के धरातल पर उतर आया। मोती ने पूछा–आप बता रहे थे न कि शंत्रुंजय का कण–कण अद्भुत और पवित्र है, वह पहाड़ कैसा हैं?

अमीचंद ने कहा– "बेटा! वह बहुत ऊँचा पहाड़ है। वहाँ रहने वाले भगवान तो क्या वहाँ का तो कण–कण त्याग की प्रेरणा देता है। उस पहाड़ पर अनेकों मंदिर बने हुए है। उन मंदिरों में भगवान की मूर्तियाँ हैं। वह पहाड़ सदा सर्वदा विद्यमान रहेगा। भाग्यशाली व्यक्ति ही उस पहाड़ की श्रद्धासहित यात्रा करता है। उस तीर्थ की भक्ति सहित यात्रा करने से भयंकर से भयंकर पापी भी कर्ममुक्त बन जाते हैं। संसार में जितने भी तीर्थ हैं, उन सभी में वह तीर्थ मुख्य हैं, अतः उसे तीर्थाधिराज कहते हैं। बहुत शीघ्र सारी व्यवस्था करके हम पालीताणा चलेंगे। अब जल्दी से सो जाओ ताकि प्रातः समय पर उठ सको। हाँ! सोते वक्त नवकार मंत्र का जाप करना मत भूलना।"

बेटों ने पिता की आज्ञा पाली। धीरे से उठे। पितृ चरणों में माथा टिकाया और सोने चल दिए।

रूपल अपना प्रतिक्रमण आदि करके शयनकक्ष में आ गई। इस समय उसकी झील–सी बड़ी–बड़ी आँखों में प्रेम

की पवित्रता ठाठें मार रही थी। अमीचंद ने रूपल का हाथ अपने हाथ में ले लिया और कहा– "तुम प्रत्येक दृष्टि से मेरे लिए जीवन का संगीत बनकर ही उतरी हो। तुम्हारे प्रेम की पवित्रता ने मेरे जीवन को महाकाया है तो तुम्हारे द्वारा प्रदत्त ये अनमोल दीप मेरे आंगन को जगमगा रहे हैं।

पुराने ठीक ही कहते हैं कि सुघड़ पत्नी प्रकृति या भाग्य का अपूर्व उपहार है। पत्नी मात्र वासनापूर्ति का माध्यम ही नहीं पर पति की समस्त क्रियाओं की पूरक है। उसके दामन में वह शक्ति है कि अपने पति की समस्त चिन्ता और उदासी दूर कर दे।"

रूपल अपने पति के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनकर संकुचित हो उठी पर हृदय का हर कोना प्रसन्नता से जगमगा उठा। उसकी पूजा.....उसका प्यार.....उसकी सेवा सब कुछ तो सार्थक थी क्योंकि उस पूजा और समर्पण को उसके प्रियतम ने स्वीकार किया था। कर्तव्य और प्रेम की पथिका रूपल की आँखों में प्रसन्नता के अश्रुकण छलछला आए। उसने विषय बदलने की गरज से कहा– "क्या बात है स्वामी! आज कुछ ज्यादा ही मक्खन लगा रहे हो?"

अमीचंद ने हँसते हुए कहा–"नहीं रूपल! यह तुम्हारी चापलूसी नहीं, यह वास्तविकता है। तुम जैसी चतुर, दक्ष, समर्पित और प्रेम से लबालब पत्नी को पाकर मेरा जीवन सार्थक बन गया है। मैं संपूर्ण रूप से निश्चिंत हूँ। आज मोती के आग्रह से पालीताणा जाने का निर्णय किया है। यह मोती

अवश्य ही नामांकित और ख्याति प्राप्त विशिष्ट नररत्न तो होगा ही, साथ ही पालीताणा एवं प्रभु ऋषभदेव के प्रति उसका लगाव देखकर लगता है, अवश्य ही तुम्हारी अनुभूति–तुम्हारा सपना साकार होगा।"

"समझी नहीं स्वामी, कैसे?" अमीचंद ने कहा–"आज जब मैं उससे बातचीत कर रहा था तब पालीताणा और प्रभु ऋषभदेव की स्मृति मात्र से ही उसकी आँखें सोचने के अंदाज में सिकुड़ गयी थी। जरूर उसका पालीताणा से विशिष्ट संबंध स्थापित होगा।"

नेमी, मोती और तृतीय पुत्र देवीचंद क्रमशः युवावस्था की दहलीज पर खड़े हो गए। मोतीशा का व्यक्तित्व आकर्षक था। उसका कसा हुआ बदन एक विचित्र–सा जादू छोड़ता था।

एक दिन रूपल ने शिकायती अंदाज में अमीचंद से कहा– "लगता है, आप मात्र सफल व्यापारी ही रहना चाहते हैं। घर में किस ने दबे पाँव प्रवेश किया है, आपका इस ओर जरा भी ध्यान नहीं।"

घबराते हुए अमीचंद ने कहा–"क्या कह रही हो तुम?कब मैंने अपने घर की चिंताओं से मुँह मोड़ा है?तुमने किस बात को इंगित किया और मैंने उसे लापरवाही से टाला?पहेलियाँ न बुझाकर स्पष्ट कहो कि आखिर घर में क्या कमी हैं?"

अमीचंद की व्यग्रता देखकर रूपल खिलखिला कर हँस पड़ी। उसके दूधिया दाँत चमक उठे। अमीचंद खीज उठा। रूपल ने दो पल रूककर कहा–"देव! देख रहो हो न अपने बेटों को? क्या आपको नहीं लगता कि वे उम्र की जिस सीढ़ी पर खड़े है, उस उम्र तक आते–आते आप एक बेटे के बाप बन चुके थे। पर आपको अपने व्यापार से समय मिले तो न?आपको तो हाथ बँटाने वाले चाहिए थे सो मिल गए, बस अब बाप बेटे मिलकर खूब लक्ष्मी बटोरो।"

"यह क्यों नहीं कहा कि तुम्हारी इन शराबी आँखों का नशा उतरे तब न?तुम्हारी जुल्फों की कैद से मुक्ति मिले तभी तो बेटों का उत्तरदायित्व याद आ सकता है न?" अमीचंद ने मजाकिया अंदाज में सारा दोष पत्नी पर ही डाल दिया।

"नहीं, अब आप मजाक छोड़कर मेरी बात को जरा गंभीरता से सुनो। क्या आपको नहीं लगता कि अब घर में बहू आनी चाहिए। मैं कब तक घर में अकेलेपन की उदासी महसूस करती रहूँगी?आपका काम तो हल्का हो गया, क्या मेरा काम हल्का नहीं होना चाहिए?"

"अच्छी याद दिलायी तुमने! आज ही अपने मुनीमजी इन दोनों के विवाह की चर्चा कर रहे थे। उनके किसी परिचित ने मुनीमजी के द्वारा हल्की–सी चर्चा मेरे कानों तक पहुँचायी है। तुम मुझे दो चार दिन की मोहलत दो अतिशीघ्र तुम्हारा आंगन बहुओं के पायल की झंकार से

झंकृत हो उठेगा। रूपल की प्रसन्नता का पार न रहा। उसका दिल बहुओं के आगमन की कल्पना से पुलकित हो गया।''

सेठ अमीचंद ने लड़कियाँ देखकर विवाह तक का सारा उत्तरदायित्व मुनीमजी के सशक्त कंधों पर डाल दिया। मुनीमजी ने भी दक्षता और अनुभव का उपयोग करते हुए सुन्दर और शालीन कन्याओं के साथ उनका संबंध कर दिया।

रूपल तो पुत्रवधुओं को देखने के लिए बेताब हुई जा रही थी। ज्योतिषाचार्य द्वारा विवाह का मुहूर्त निकलवाया गया। शुभ मुहूर्त में नेमी और मोती को विवाहबंधन में बाँध दिया।

रूप और यौवन की मस्ती से भरपूर मोतीशा को पति के रूप में पाकर षोडशी दीपा का रोम–रोम खुशी से खिला जा रहा था। आज उसका नए जीवन में पदार्पण हुआ था। उसने सखी सहेलियों द्वारा मोतीशा के विनम्र, दक्ष, शोख व्यक्तित्व के बारे में सुन रखा था। वह अपने सौभाग्य पर ईर्ष्या कर रही थी। सजे–सजाए कक्ष में इस समय वह अपने प्रियतम का इंतजार कर रही थी। उसका दिल खुशी, भय, संकोच से धक्–धक् कर रहा था। दीपा को यह इंतजार मीठा भी लग रहा था और लम्बा भी। ताजे और खुशबूदार फूलों से पूरा कमरा महक रहा था। वह खुशबू से मदहोश हुई जा रही थी।

अचानक धीमे से दरवाजा खुला और उमंगों ने एक अंगड़ाई ली। मोतीशा धीमे–धीमे कदमों से चलते–चलते शय्या के निकट पहुँचे और धीमे से अपनी नई–नवेली दुल्हन के घूंघट को उठाते हुए पुकारा–दीपा!

कर्णप्रिय रसभरी उस आवाज को सुनने के लिए तो कब से इंतजार कर रही थी दीपा। मन गुदगुदा उठा पर संकोच का ताला उसके मुँह पर जकड़ गया। उसका घूंघट में छिपा चेहरा और अधिक झुक गया। मोती ने अपने हाथों से उसके गुलाबी चेहरे को उठाया और कहा, दीपा! जरा अपनी आँखों को उठाकर मेरी आँखों में झाँकों। देखों, इसमें

तुम्हारा ही अक्स नजर आएगा।

दीपा कैसे उठाती अपनी पलकें। उसे तो होश ही कहाँ था?उसका तो रोयां–रोयां नशे में झूम रहा था। वह तो चाहती थी कि बस उसका प्रियतम यों ही उसके समीप बैठा रहे, बतियाता रहे और वह चुपचाप उसकी बातों से अपनी आत्मा को तृप्त करती रहे।

मोती के बार–बार आग्रह से उसने अपनी बोझिल पलकों को उपर उठाया पर शीघ्र ही वे लज्जा के भार से झुक गई। सहसा उसे कुछ याद आया, वह उठ खड़ी हुई और पति चरणों में माथा टेक दिया। मोतीशा ने अपनी बलिष्ठ भुजाओं में समेटते हुए कहा–तुम्हारा स्थान मेरे हृदय में हैं। आज से तुम मेरे जीवन की पूरक हों! हम समस्त सांसारिक और धार्मिक क्रियाओं को कंधे से कंधा मिलाकर पूरा करेंगे। तुम मेरी पत्नी, मेरी मित्र सब कुछ हो। अगर स्वीकृति दो तो मैं एक प्रतिज्ञा करना चाहता हूँ।' ऐसा कहते–कहते मोती ने अपनी उत्सुक और आशा भरी नजरें दीपा के सलोने चेहरे पर टिका दी।

दीपा को ताला खोलना पड़ा। संकोच का पर्दा दूर करते हुए उसने जिज्ञासु नजरों से पति को देखा और महीन आवाज में पूछा–स्वामी! आपका आदेश ही मेरे जीवन की आकांक्षा है।

नहीं दीपा! तुम गलत समझ रही हो। मैं आदेश देकर

तुम्हारे अरमानों को कुचलना नहीं चाहता। पति पत्नी का जीवन एक सिक्के के दो पहलू है। दिन के अभाव में रात का और रात के अभाव में दिन का अस्तित्व नहीं होता। मेरी सोच में नारी शक्ति और समर्पण का प्रतीक है, उसे अबला समझकर उसकी उपेक्षा करना स्वयं को धोखा देना है। उसका हृदय और विश्वास जीतकर अप्राप्य आनंद को पाया जा सकता है और उपेक्षित करके जिन्दगी में दर्द की दीमक़ लगाकर स्वयं को खोखला भी किया जा सकता है।

दीपा अपने पति की यथार्थ को छूती बातें सुनकर झूम उठी। उसे लगा कि वास्तव में उसने तो अपने स्वामी के बारे में जो सुना था, वह कम ही था। ये तो उसकी कल्पना से भी अधिक ऊँचे है। उसने धीमे से पूछा—कहिए स्वामी! आप मेरे से क्या अपेक्षाएं रखते हैं?

मोती ने गंभीरता से कहा—नारी जब ससुराल की दहलीज पर चढ़ती है तो सीने में मचलते अनेक अरमानों के साथ एक गंभीर उत्तरदायित्व का बोझ भी उसके साथ होता है। बचपन की चंचलता और अल्हड़ता के स्थान पर कर्तव्य और समर्पण के भाव उभर आते हैं। संबंधों की परिभाषाएं बदल जाती है। जो नितांत और अपरिचित माहौल था, वही उसके जीवन की वास्तविकता बन जाता है। पर ससुराल के सारे कर्तव्यों की अदायगी वह तभी कर पाती हैं, जब उसमें उसे मजबूरी के स्थान पर आत्मीयता और अपनत्व की गहन अनुभूति होती है।

आवश्यकता है, चिंतन की, दिशा को बदलने की। किसी कार्य को अपनत्व के भावों से संपन्न किया जाय तो वह बोझ या भाररूप नहीं लगता। यद्यपि वचनबद्ध तो हम एक दूसरे से हुए हैं पर शादी का यह पवित्र बंधन मात्र तुम्हारा और मेरा ही नहीं है। मेरे साथ–साथ तुम मेरे संपूर्ण परिवार की अपेक्षाओं का भी केन्द्र हो। बस तुम ऐसा कोई भी कार्य न करना, जिससे एक पति के रूप में मुझे कहीं सिर नीचे करना पड़े।

तुम्हारी प्रत्येक आकांक्षा की पूर्ति मेरा नैतिक कर्तव्य है पर उस अपेक्षा को हवा देने से पूर्व मेरी सीमा का अवश्य विचार करना है। मैं एक पति के साथ पुत्र भी हूँ, भाई भी हूँ और देवर भी। और उनके प्रति भी मेरे कर्तव्य है। तुम इस परिवार की धुरी बनकर मेरे और अपने जीवन को खुशहाल बनाने का प्रयत्न करना।

तुम्हारे सहयोग से ही मुझे जीवन की दिशा के निर्धारण और उस पर अपने कदम बढ़ाने की शक्ति प्राप्त होगी। मैं जानता हूँ–आज हमारी सुहागरात है और सुहागरात की कल्पनाएं नारी और पुरुष दोनों की होश संभालने से लेकर ही आरंभ हो जाती है। तुम्हारी आँखों में भी सपनों ने जन्म लिया होगा पर अगर तुम चाहो तो....., मोती ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

दीपा का दिल किसी अनजानी आशंका से धड़क

उठा। वह सिहर उठी। उसने जल्दी से कहा–पर ये 'तो' से आपका क्या तात्पर्य है? मैं समझी नहीं।

मोती ने कहा–मेरी भावना है, हम कोई तीर्थ यात्रा करके ही सुहागरात मनाए।

प्रसन्नता की किरणें दीपा के रोम–रोम में जगमगा उठी। उसे तो बचपन में ही साध्वीजी का निकट सान्निध्य प्राप्त था। श्रावक जीवन को वह संयमी जीवन जीने की पूर्वभूमिका स्वरूप समझती थी। वह गृहस्थ जीवन को वासना या मात्र आकांक्षापूर्ति का माध्यम नहीं मानती थी। विजय और विजया की आदर्श कहानी ने उसके बालमन को बहुत अधिक प्रभावित किया था। वह विजया का प्रतिनिधित्व करने का संकल्प तो नहीं कर पायी पर उसे आदर्श बनाकर उसकी पगडंडी पर आंशिक रूप से अवश्य चलना चाहती थी।

उसने तुरंत पुलकित मन से सहमति देते हुए कहा–अवश्य स्वामी! आपने तो वास्तव में मेरे ही दिल की बात कही है। सच ही तो कहा है कि भावनाओं में सूक्ष्मता होने पर भी वातावरण को प्रभावित करने की अमोघ सामर्थ्य होती है। हम अवश्य ही तीर्थयात्रा करके गृहस्थ जीवन में कदम बढ़ाएंगे तब तक पति–पत्नी होते हुए भी अलग–अलग शय्या पर ही शयन करेंगे ताकि इच्छाओं की आग भड़के नहीं। यौवन का नशा धमनियों में बहते रक्त को तीव्रता प्रदान कर सकता है। यद्यपि हमारा स्वेच्छा से किया

गया संकल्प दृढ़ता से ओतप्रोत हैं पर फिर भी क्या पता, कब भावनाएं बहक जाए और हम संकल्प से पीछे हट जाए।

दीपा ने सहमति दे दी। दोनों परस्पर मिल गए। यद्यपि शारीरिक दृष्टि से उनका मिलन अधूरा था पर एक दूसरे की आत्मा में गहराईयों से वे प्रविष्ट हो चुके थे और उनके अनुसार यही सच्चा मिलन था।

दोपहर लगभग बारह बजे का वक्त था। चारों ओर बह रही गर्म हवा तन मन को झुलसा रही थी। लू के थपेड़े मानो सहनशीलता की परीक्षा पर उतर आए थे। सड़कें विधवा की माँग की तरह सूनसान थी। हर प्राणी गर्म हवा से व्याकुल होकर किसी निरापद स्थान की टोह में था ताकि कुछ समय शांति से सो सके।

सेठ अमीचंद के महल में भी सन्नाटा व्याप्त था। दोनों बहुएं अपने–अपने कक्ष में सामायिक लेकर कुछ स्वाध्याय करने का उपक्रम कर रही थी। सेठानी रुपादेवी अलसायी मुद्रा में शयन करने का प्रयास कर रही थी। नित्य नियमानुसार तो इस समय सेठ अमीचंद को अपनी पेढ़ी पर ही होना था, परन्तु घटनाक्रम में कुछ परिवर्तन नजर आ रहा था। क्योकि अचानक इस समय सेठ अमीचंद की बग्घी हवेली के मुख्यद्वार पर आकर रुकी थी। नौकर अचानक असमय में अपने मालिक के आगमन से घबरा गया। सौम्य, शांत मुखमुद्रा आज उद्विग्न और बैचेन थी। आँखें सोचने के अंदाज में बार–बार सिकुड़ रही थी। पेशानी में भी बल पड़े हुए थे। उन्होंने धीमी आवाज में कहा–जाओ कुन्दन! अपनी मालकिन को मेरे आगमन की सूचना दो! कुन्दन मालकिन को सूचना देने अंदर गया और अमीचंद बैठक में आकर अपने को संयत करने का प्रयास करने लगे। कुन्दन सोचने

लगा, "फूल सा हँसता चेहरा इतना मलीन क्यों?आत्मीय सदाबहार उस आवाज में इतनी व्याकुलता क्यों?इतना मुरझाया बदन तो कभी नहीं देखा। बरसों से मालिक की सेवा में रह रहा हूँ पर ऐसी बैचेनी कभी महसूस नहीं की।"

कुंदन कहने को नौकर था पर वह इस भवन का ही एक अस्तित्व था।

अपने मालिक की पीड़ा से वह भी पीड़ित हो गया। वह हड़बड़ाता हुआ अंदर भागा। मालकिन को सूचना दी। रूपादेवी भी घबरा गयी। अभी–अभी तो उसने दो घंटे पूर्व स्वस्थ और प्रसन्न अमीचंद को विदा किया था। इस वक्त लौटने का क्या कारण हो सकता है? उसने परिधान व्यवस्थित किए और बैठक में पहुँच गयी। सेठ अमीचंद का चेहरा बासी फूल की तरह मुरझा चुका था। चिन्ता के सागर में डूबे सेठ को कुछ समय तो सेठानी की उपस्थिति का भान ही नहीं रहा। पता चलते ही तुरन्त उन्होंने धीमे से कहा–देवी! मुझे आभूषणों की पेटी चाहिए।

सेठानी बात की तह तक तो नहीं पहुँच पायी पर कुछ–कुछ अनुमान उसने कल्पित कर ही लिए। सेठ के चेहरे का दर्द, उनके आवाज की पीड़ा, असमय उनका आगमन निःसंदेह स्वाभाविक नहीं था। कुछ अनहोनी घटना घटी है, जिसके संकेत सेठजी के चेहरे पर परिलक्षित हो रहे हैं।

रूपा देवी नारी थी। नारी की आभूषण–प्रियता लोक–प्रसिद्ध है। उसे अलंकार अपने प्राणों से भी प्रिय होते हैं। आभूषणों के आकर्षण ने नारी को गुलामी की जंजीरें पहनायी है। यद्यपि नारी की शक्ति को चुनौती देने में स्वयं सर्वशक्तिमान् विधाता भी हिचक महसूस करता है, परन्तु नारी ने अपनी असीम और अदम्य आकांक्षाओं के कारण अपने गौरव को अपने ही हाथों खण्डित करने का दुःसाहस किया है।

परन्तु रूपादेवी इसका अपवाद थी। वह नारी थी पर इसके साथ ही वह महान् इतिहास–निर्माता की जन्मदात्री भी थी। उसकी कोंख ऐसी उर्वरा धरती थी, जहाँ से धन धान्य की फसल नहीं, एक अमृत कुण्ड फूटा था। एक ऐसा कोहिनूर वहाँ नौ माह रहा था, जिसकी चमक वर्तमान को ही नहीं, भविष्य को भी उज्ज्वल करने वाली थी। वह अमीचंद के और अधिक निकट आ गयी। उनकी अनियंत्रित धड़कनों की आवाज कह रही थी–कुछ असाधारण घटा है। वह कुछ बोले, उससे पूर्व ही खिन्नता से अमीचंद ने कहा–रूपा! मझाक नहीं! मैं पेटी माँग रहा हूँ। रूपा ने प्यार से कहा–प्रियतम! मझाक मैं नहीं, आप कर रहे है। मेरे सर्वोत्तम गहने तो आप हो! आपको पेटी में डालकर मैं कैसे दे सकती हूँ?

अमीचंद के चेहरे पर हँसी आते–आते दम तोड़ गई। अगर कोई और समय होता तो उसकी हँसी से कक्ष भर

जाता पर आज तो वह चिन्ता के घेरे में था। उसने कहा–रूपा! मझाक छोड़ो। मैं गंभीर हूँ। तुम वक्त की नजाकत समझने के बजाए बात टाल रही हो।

रूपा ने अमीचंद की मनोदशा को स्वस्थ करने के लिए ठण्डा पानी पिलाया। पलंग पर समीप बैठते हुए उसने आत्मीय और प्रेममयी भाषा में कहा–देव! आपके साथ वर्षों से छाया बनकर रही हूँ। क्या मैं चेहरा देख कर ही मनोभावों को नहीं ताड़ सकती? मैं तो एक झलक देखते ही समझ गयी थी कि किसी घटना ने आपके शांत मानस को उद्वेलित किया है। मैं जानती हूँ, इस समय आप उलझन के शिकार है पर क्या इस प्रकार चिन्तित होने से समाधान हो जाएगा?मैं आपकी पत्नी ही नहीं, मित्र भी हूँ। मझाक इसलिए कर रही थी कि आपका मानस स्वस्थ हो सके। अब आप व्यवस्थित घटनाक्रम बताकर बेलगाम भागते मेरे विचारों के घोड़ों पर अंकुश लगाइए। अमीचंद को मानना पड़ा। उसने चाहा था–रूपा को अंधेरे में ही रखा जाए। नाहक उसकी मानसिकता को क्यों छेड़ा जाए?पर रूपा को यह कहाँ स्वीकार था?अमीचंद के सारे प्रयास व्यर्थ हुए। उसे बताना पड़ा।

'कभी–कभी सोच–समझकर किए गए निर्णय भी कितने विपरीत हो जाते हैं? मानव तो पुरुषार्थ करने के लिए ही स्वतंत्र है पर परिणाम तो भाग्याधीन होते हैं। लगता है, अशुभ कर्मोदय हो गया है। मेरे पापोदय के कारण जिस

सौदे से मैंने लाखों की आशा बांधी थी, वह सौदा इतना प्रतिकूल हो गया कि घर से लाखों देने पड़ेंगे। उसे घाटे की पूर्ति तत्काल करनी होगी। अपनी प्रतिष्ठा, मान–मर्यादा के संरक्षण हेतु अलंकारों को बेचना उचित समझ रहा हूँ। अगर तुम्हें एतराज न हो तो मुझे.....!' अमीचंद ने अपनी कही बात की प्रतिक्रिया जानने के लिए जान–बूझकर वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

रूपा ने अपनी शांति और स्वस्थता जरा भी नहीं खोयी। यद्यपि उसे आभूषण प्रिय थे पर पति की मान–मर्यादा उससे भी अधिक प्रिय थी। वह अपना सब कुछ देकर भी अपने प्रियतम की प्रसन्नता में प्रसन्न रह सकती थी। उसने अमीचंद के दर्द को हल्का करने की गरज से कहा–स्वामिन्! बस इतनी छोटी–सी बात! आपने तो उस उक्ति की ओर ध्यान केन्द्रित कर दिया कि "खोदा पहाड़ निकली चुहिया।"

आपके मुँह से शताधिक बार सुन रखा है कि पैसा हाथ का मैल है। उसकी न प्राप्ति आश्चर्यजनक है, न अप्राप्ति! एक सौदे में घाटा लग गया तो क्या हुआ, दुबारा लाभ भी होगा। कर्मशील मानव ही तो सफल और असफल होता है। आवश्यक नहीं कि प्रत्येक बार सफलता और विजयपताका प्राप्त करने में भाग्य सहयोग करे! व्यापार को भी समर ही मानना चाहिए। आप परेशान होने की अपेक्षा स्वस्थ बनिए।

अमीचंद फिर भी स्वस्थ न हो सका। वह जानता था—कहना जितना सरल है, आचरण उतना ही दुष्कर! रूपा ने अपना जीवन कल्पनाओं में जीया है, उसे क्या पता है—सत्य कल्याणकारी मंगलमय होते हुए भी कितना कठोर होता है? समस्याओं का सामना करना और सामना करने का उपदेश देना, नितांत भिन्न है।

रूपा ने आगे कहा—प्रियतम! आप अपने जीवन द्वार पर दस्तक दे रही निराशा को दूर कीजिए। उतार—चढ़ाव तो आते रहते हैं। एक भी स्थायी भाव नहीं है। आप तो परमात्मा के उपासक है। परमात्मा की वाणी का अमृत पीया है। क्या अमृत से नहाया व्यक्ति मूर्च्छित हो सकता है? इन सामान्य सी घटनाओं से विचलित होने की अपेक्षा सामना करने का हौसला बनावें। उदय में आए कर्मों का प्रसन्नता से भरकर स्वागत करें। अमीचंद प्रभुभक्त श्रावक था। उसका रोम—रोम परमात्मा के प्रेम में अनुरक्त था। कर्म सिद्धांत पर उसकी अटल आस्था थी। शान—शौकत और ऐश्वर्य भरी जिन्दगी जीते हुए भी वह उसका गुलाम तो कतई नहीं था। सम्पूर्ण संपत्ति उससे रुठकर चली जाए, इसका उसे कोई मलाल नहीं, परन्तु किसी का कर्जदार होकर जीना पड़े, इसमें उसे गहरी चुभन थी और व्यावहारिक दृष्टि से यह उचित भी था।

रूपा से उसने यही कहा—रूपा! मैं लक्ष्मी की विदायी

से व्यथित नहीं हूँ! परन्तु जिन हाथों ने "देकर" सन्तुष्टि और तृप्ति का अहसास किया है, क्या वे अब किसी के आगे फैलने को मजबूर होंगे? बस यही चिन्ता मेरे दिल में डंक की तरह चुभ रही है। रूपा निरुत्तर हो गयी। क्या कहती?अपने प्राणप्रिय के गरिमा मंडित हृदय की भावनाओं से वह अनजान नहीं थी। वह जानती थी कि उसके स्वामी में स्वाभिमान की भावना कूट–कूट कर भरी हुई है। रूपा चुपचाप संयत कदमों से अपने कक्ष में गयी। तिजोरी का ताला खोला, जगमगाती आँखों को चुंधियाने वाली अनमोल ज्वेलरी से भरी पेटी निकाली और स्वस्थता पूर्वक अमीचंद के हाथों में दी। अमीचंद लेते वक्त काँप गया। आँखें भर आई। परम्परा से प्राप्त जो गहने रूपा की देहयष्टि को सुशोभित करते थे, अब वे किसी ओर की शोभा बनेंगे। अमीचंद आँखें नहीं उठा पा रहा था। एक ओर उसका ईमान था तो दूसरी ओर पारिवारिक धरोहर! गहने अपने आप में मूक इतिहास था। कितने अरमानों से माँ ने ये गहने अपनी पुत्रवधु को सौंपे थे?वह नवलखा हार सुहागरात हेतु खरीदने के लिए उसको अनेक पापड़ बेलने पड़े थे। कितनी मजाक हुई थी, जब उसकी चोरी प्रकट हुई थी, कितना हँसे थे उसपर। आज वही नवलखा हार ....उसकी प्रेम स्मृति..... सोचते–सोचते उसका माथा फटने लगा था।

यद्यपि रूपा का सौंदर्य अप्रितम था। उसका पातिव्रत्य धर्म से छलकता तेजस्वी, निर्मल और पवित्र सौन्दर्य किसी

आभूषण का मोहताज नहीं था। फिर भी इन अलंकारों को धारण कर जब रूपा उसके सामने आती थी तो उसकी आँखें किस हद तक चुंधिया जाती थी। असली हीरे पन्नों से जड़े गहनों में.... जगमग करता उसका रूप अमीचंद देखता तो अपलक देखता ही रह जाता था। आज वे ही गहने उसे अपने ही हाथों बेचने पड़ेंगे। रूपा अमीचंद की मानसिकता से बेखबर नहीं थी। उसने हृदय की गहराई से समझाया–इतनी उद्विग्नता क्यों?चक्रवर्ती की राज्य संपदा भी अशाश्वत है, तो आप इस संपदा में क्यों उलझ रहे है?फिर नारी का सच्चा आभूषण तो शील और सदाचार है। ये ही उसके सौंदर्य को रजनीगंधा की तरह महका सकते हैं। मुझे जरूरत भी कहाँ है इनकी?आप अच्छी तरह जानते हैं–मैं आभूषण प्रिय कभी नहीं रही। आपके बार–बार आग्रह से ही मैं कभी–कभार इन्हें धारण करती थी। अच्छा हुआ, अब इनको संभालने का झंझट नहीं रहेगा। अमीचंद ने खोजी निगाहों से रूपा को देखा। उसे भ्रम था कि रूपा गहने देते इन्कार भले न करें, परन्तु खिन्नता अवश्य महसूस करेगी, परन्तु रूपा के चेहरे पर किसी प्रकार की कोई प्रतिक्रिया नहीं आयी।

निःसंदेह यह घड़ी रूपा के अस्तित्व की अग्नि परीक्षा की घड़ी थी। वैभव, सत्ता अथवा सुविधा का खून जब एकबार मुँह लग जाता है तो उसको छोड़ना बड़ा कठिन

लगता है। रूपा ने तो जब इस दुनिया में पहला कदम रखा था, तभी उसके मुँह में सोने का चम्मच था। आज तक नहीं जान पायी थी कि अभाव किस चिड़िया का नाम है। नारी की पूर्णता उसके अंग–अंग को निखार रही थी। असीम प्यार उँडेलने वाला गुणशाली प्रियतम! आज्ञाकारी पुत्र! सेवापरायण बहुएँ, अथाह संपत्ति का झूला! यह सब कुछ तो प्राप्त था रूपा को।

इतना सब कुछ पाकर भी वह पदार्थ स्वभाव से परिचित थी। पदार्थ मात्र परिवर्तनशील है, इस ठोस सच्चाई से रूपा अवगत थी। जब पदार्थ मात्र जल में बुलबुले की तरह ही अस्थिर है तो उनसे प्राप्त सुख कैसे स्थायी बन सकता है?इसी पदार्थ स्वभाव ने रूपा को इस घाटे की स्थिति में भी स्थितप्रज्ञ रखा। अपने स्वामित्व की लाखों करोड़ों की अनमोल ज्वेलरी भी उसके धर्म परायण हृदय को मूर्च्छित नहीं कर सकी। शादी के समय एवं शादी के बाद जो भी उसने पाया था, सहज भाव से सहेज लिया था। परन्तु जब आवश्यकता हुई, तुरन्त ही बिना ललाट में शिकन डाले प्रदान कर दिया।

समर्पण भरे गरिमामय उसके इस विराट् एवं निर्विकारी व्यक्तित्व को देखकर अमीचंद अचंभित रह गया। उसके हताश और टूटे हृदय पर रूपा के इस समर्पण ने मल्हम का काम किया। गौरव से भर गया उसका सीना। वेदनापूर्ण इन क्षणों में भी उसका हृदय अपनी पत्नी के इस

कोमल और प्रेमपूर्ण व्यवहार से खिल गया। उसने रूपा के प्रति आँखों ही आँखों से कृतज्ञता व्यक्त की और 'भाग्य ने साथ दिया तो अतिशीघ्र इससे भी अधिक गहने बनाऊँगा' का आश्वासन देकर कक्ष से बाहर निकल आया।

समय पंख लगाकर उड़ता रहा। सुई का कांटा निरन्तर घूमता रहा, परन्तु अमीचंद समय के साथ चल नहीं पाया। उसके एकबार थके पाँव पुनः चाहते हुए भी प्रयत्न और पुरुषार्थ के बावजूद गतिशील नहीं बन पाए। एक बार पिछड़ा तो समय ने उसे ऐसा पछाड़ा कि वह पुनः खड़ा ही नहीं हो सका। अमीचंद ने सोचा था कि रूपा की ज्वेलरी देकर मुक्त हो जाऊँगा पर उसका सपना मात्र सपना ही बनकर रह गया। दुबारा गहना बनाने की कल्पना मात्र उसके हृदय सागर में तरंगित होकर रह गयी। यद्यपि रूपा के स्वामित्व की ज्वेलरी अन्य हाथों में सौंपते हुए उसको कड़वा घूँट पीना पड़ा था, पर इस चिंतन से हृदय को आश्वस्त किया था कि संपदा दुबारा पायी जा सकती है पर खोयी हुई प्रतिष्ठा पाना असंभव है। प्रकृति और दुर्भाग्य ने अमीचंद को छल लिया था। उसकी भावुक कल्पना पर भाग्य की क्रूरता ने यह कहकर मखौल उड़ायी थी कि कठिनाई से मेरे फंदे में फँसा है। हाथ आए मौके को आसानी से नहीं छोड़ूँगा। अमीचंद का अनुमान था कि स्थिति पर शीघ्र ही नियंत्रण पा लूँगा, परन्तु मानव सपने संजोने का ही कार्य कर सकता है, उनकी संपूर्ति तो भाग्याधीन है।

अत्याधिक तनाव से अमीचंद उम्र से पूर्व ही शारीरिक दृष्टि से जर्जर होता गया। देखते–देखते उसने कभी न

छोड़ने के लिए शय्या पकड़ ली। प्रतिपल चहकने वाली रूपा ने जब अपने प्रियतम की इस स्थिति को देखा तो सिर पीट लिया। हृष्ट–पुष्ट स्वस्थ तरुणाई को भी लज्जित करने वाले लगभग पचास वर्षीय अमीचंद को कुछ दिन पूर्व कोई देखता तो ठगा रह जाता था। उसके चेहरे की लालिमा–उसकी तरुणाई की प्रतीक थी, तो उसकी चमकती धारदार आँखें, उन्नत ललाट, चौड़ी छाती, घुँघराले केश, लम्बी कदकाठी, आकर्षक आकृति, गोरा बदन....पूर्व पुण्य को इंगित करता था। आज वही अमीचंद तन और मन से टूटा चिन्ताओं के बोझ से इस कदर बोझिल हो चुका था कि सारा सौंदर्य दिवस के चांद की तरह निस्तेज पड़ चुका था। जिस अमीचंद की रूपराशि को देखकर सखी सहेलियों ने एक लम्बी आह भरी थी, आज वही अमीचंद व्यावहारिक जीवन की मूलभूत आवश्यकता 'संपदा' खोने के सदमे से व्यथित होकर सम्पूर्ण रूप से श्री हीन हो चुका था। पुत्रत्रय ने भरसक प्रयास किए कि पिताश्री की रूठी खुशियों को मना सके। उन्होंने भरपूर पुरुषार्थ किया कि व्यापार की टूटी डोर को पुनः हाथ में थाम सके पर हाय–रे भाग्य! वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सके। एक बार टूटी डोर पुनः हजार प्रयत्नों से भी नहीं जुड़ पायी। सारा परिवार अमीचंद की शारीरिक स्थिति से घबरा उठा। अमीचंद ने स्थितियों के सामने सरलता से हथियार नहीं डाल दिए थे। निरंतर संघर्ष

किया था। मन भले ही टूटता रहा पर होठों से हास्य निरंतर फूटता रहा, पर आखिर तन–मन की यह आँख–मिचौली कब तक चलती? जूझते–जूझते थक गया अमीचंद और आखिर उसने कर्मराजा के सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। अमीचंद की स्थिति प्रतिदिन नाजुक होती चली गयी। छाया की तरह प्रत्येक स्थिति में साथ रहने वाली रूपा पूर्ण एकाग्रता और तन्मयता के साथ अपने प्रभु तुल्य पतिदेव की सेवा में लगी रहती। प्रत्येक प्रकार का उपचार चल रहा था। डॉक्टर, वैद्य, मनौती सारे उपाय आजमाए गए। इष्टदेव के समक्ष रूपा ने मनौतियाँ मानते हुए अपने सुहाग की दीर्घायु माँगी पर सारे उपाय व्यर्थ सिद्ध हुए, क्योंकि क्रूर यमराज ने दृढ़ संकल्प कर लिया था कि उसके भाल की चमकती बिंदिया को मिटाकर रहेगा। प्रकृति रूपा की सौतन बन चुकी थी। वह रूपा के सुखी संसार को भूखी और ललचायी नजरों से घात लगाकर देख रही थी।

एक दिन रूपा अमीचंद के पायताने बैठकर होले–होले अंदाज में उनके पाँव दबा रही थी और अमीचंद ने आँख खोली। उन्होंने इंगित से रूपा को अपने निकट बुलाया और कहा–तुम सही अर्थों में मेरी जीवनसंगिनी रही हो। जीवन का प्रत्येक पल तुमने मेरे साथ समग्रता से जीया है। मेरी स्मृति में एक भी ऐसी घटना नहीं है, जब तुम मेरे विचारों से असहमत हुई हो। निःसंदेह तुमने अपने प्रेम और समर्पण के फूलों से मेरी जीवन बगिया को महका दिया है।

अपने जीवन में झांकता हूँ तो लगता है, मैंने तुम्हें कुछ भी नहीं दिया। देना खूब चाहा था पर भाग्य को मंजूर नहीं हुआ। यहाँ तक कि तुम्हारे सारे आभूषण भी बिक गए। उन्हें दुबारा बनाने की साध मन में ही रह गयी और लगता है यह साध अब अधूरी.....वाक्य अमीचंद पूरा नहीं कर पाया, क्योंकि रूपा ने अपनी हथेली से अमीचंद का मुँह बंद कर दिया था।

लरजते स्वरों में रूपा ने कहा—स्वामी! आप आज परायों जैसी बातें क्यों कर रहे हो?आप यह क्यों समझते हैं कि मैंने आपके लिए कुछ किया है, जबकि वास्तविकता यह है कि यह सब कुछ मैंने अपने सुख से प्रेरित होकर ही किया है। आपकी सेवा करने में ही मुझे अपना स्वर्ग मिलता है। आपकी मुस्कान और खुशी में ही मुझे अपना स्वर्ग नजर आता है। मैंने आपको अपने जीवन का एक हिस्सा महसूस किया है। अपने ही शरीर के भाग को सुख पहुँचा कर कोई एहसान तो नहीं किया है मैंने। क्या मेरे से कोई भूल हो गयी है, जो आप इस प्रकार की डरावनी बातें कर रहे हैं। जहाँ आप, वहाँ मेरा स्वर्ग! मुझे भूल से भी उन गहनों की स्मृति नहीं होती। पता नहीं, आपके दिमाग में क्यों गहने घुसे हुए हैं?

अमीचंद—जानता हूँ रूपा! तुम्हें शिकायत नहीं हो सकती। तुमने आदर्शों की व्याख्या ही नहीं की, आदर्शों को जीवन में, जीवन की क्रियाओं में उतारा भी है। तुम्हें पाकर

मेरा जीवन सार्थक बन गया है। मेरे जीवन में कोमलता और धार्मिकता तुम्हारे सामीप्य के कारण ही आई है, परन्तु हमारे सुखी संसार पर दुर्देव की काली छाया पड़ चुकी है। हमारे इस आशियाने पर दुर्भाग्य की राक्षसी निगाहें पड़ गई हैं। मेरा स्वास्थ्य अब गिरता जा रहा है। तुम्हें आज मैं कुछ कहकर अपना हृदय हल्का करना चाहता हूँ। आज तक तुमने अपना समर्पण और नारीसुलभ कोमलता का परिचय दिया है। अब तुम्हें इस परिवार रूपी बाग का माली बनकर उचित अनुपात में सिंचन देना है।

चीख ही पड़ी रूपा तो! 'नहीं स्वामी, ऐसा वज्रपात मुझ पर न करें। आपका आलंबन पाकर हंसते–हंसते सारी धूप–छाँव सहन कर सकती हूं, पर आपके बिना तो एक पल की भी कल्पना नहीं हो सकती। आप तो मेरे प्राण हैं, क्या प्राणों के अभाव में शरीर का कोई मूल्य होता है? आपको देखते ही, आपके सामीप्य की कल्पना मात्र से ही मेरा हृदय, मेरा मन वासन्ती बयार सा खिल उठता है। क्या मेरी सेवा में आपको कोई न्यूनता नजर आ रही है! मैं आपको कुछ भी नहीं होने दूँगी।' कहते–कहते रूपा की रूलाई फूट पड़ी।

अमीचंद मनोविज्ञान जानता था। उसने जी भरकर रूपा को रोने दिया। अमीचंद भी रूपा के रूदन से व्यथित हो रहा था। पर अपनी मौत की परछाई को उसने अपने शरीर के आईने में स्पष्ट रूप से देख लिया था। वह अपनी उपस्थिति में ही सारी सूचनाएँ रूपा को देकर सन्तुष्ट हो

जाना चाहता था। जिस आशियाने का कड़े परिश्रम के बाद बड़े अरमानों से निर्माण किया था, उसके प्रति पूर्णतया अनासक्त नहीं था। पर इतना कायर भी नहीं था कि सही स्थिति को समझने पर भी उससे अनजान बन जाए। परिवार की उसे अधिक चिन्ता नहीं थी, क्योंकि रूपा की व्यावहारिक दक्षता का वह कायल था। सारा परिवार रूपा से सन्तुष्ट था, परन्तु उसे रूपा की आसक्ति पर, अपने प्रति मोह पर वह चिन्तित अवश्य था। वह जानता था कि रूपा के समक्ष यकायक मेरी मृत्यु हुई तो वह उस आघात का सामना नहीं कर पायेगी, इस चिंतन से प्रेरित होकर रूपा को वह भविष्य में होने वाली घटना से आगाह कराना चाहता था।

जब रूपा की सिसकियाँ कुछ थमी तो उसने पुनः वार्ता का सूत्र पकड़ा। 'रूपा! वक्त की नब्ज को पहचानो। भावुक कल्पना में तैरने की अपेक्षा यथार्थ की ठोस चट्टान पर कदम रखो। मौत शाश्वत और अटल सत्य है। इस शाश्वत और अटल सच्चाई से स्वयं सर्व शक्तिमान परमात्मा भी मुँह नहीं मोड़ पाए। हमें अपनी अनमोल ऊर्जा खर्च करने की कल्पना वहाँ करनी चाहिए, जहाँ हमारे हस्तक्षेप से कुछ परिवर्तन संभव होता हो। तुम धैर्य से मेरी बात सुनो अन्यथा मेरे सीने पर एक बहुत बड़ा बोझ रह जाएगा। मेरे कहने से मौत आनी नहीं है और मेरे न कहने से आती हुई मौत अगर रूक सकती हो तो मैं चुप रह सकता हूँ।

रूपा इस नंगी सच्चाई पर कैसे पर्दा डालती! अगर मौत पर उसका नियंत्रण होता तो वह अपनी जान देकर भी अमीचंद के प्राणों की रक्षा करने को तत्पर थी पर मौत प्रकृति का ऐसा अमोघ और सफलतम हथियार है, जिसकी काट करने वाला शस्त्र आज तक दूसरा संसार में उत्पन्न नहीं हुआ है। अनुभवों का पिटारा भी उसके पास था। मोह था, पर साथ ही अनुभवी आँखों की ज्योति भी तो थी। हालात उसके सामने ही थे। मोह उसे था अमीचंद से। मौत को न अमीचंद से कोई मतलब था और न रूपा की खुशियों से। अमीचंद उसके लिए मात्र भोजन था और वह भोजन की सामग्री समझकर ही झपटना चाहती थी। रूपा के लिए अथवा उसके आँसुओं की लड़ियों से पिघलकर वह अपना निर्णय नहीं बदलने वाली थी। रूपा को ही मृत्यु के आदेश के समक्ष सिर झुकाना था। उसने अमीचंद की बात सुनने के लिए कठिनाई से स्वयं को तैयार किया।

अमीचंद ने कहा–"रूपा! संसार में जितने भी पदार्थ है, सारे प्रतिपल परिवर्तन की ओर अग्रसर होते हैं। यह दीगर है कि वह परिवर्तन इतना सूक्ष्म होता है कि लम्बे समय बाद ही उसका परिवर्तन हमारी स्थूल दृष्टि से परिलक्षित होता है। ऋषि–मुनियों ने संसार और संसार से जुड़े पदार्थों की चंचलता का जो विवेचन किया है, वह पूर्ण सत्य है। तुम स्वयं अपनी इन आँखों से वैभव की चंचलता की साक्षी हो। परमात्मा की वाणी पूर्ण सत्य और संदेहातीत

है। तुम मेरे शरीर से जुड़ी तुम्हारे मन की आसक्ति को तोड़कर अपने कर्त्तव्य का परिचय दो। आज तक तुमने प्रेमपूरित भूमिका का सफलता से निर्वाह किया है। अब तुम मेरे साथ लेने को कुछ पाथेय तैयार करो,जिससे मेरा अगला जीवन संवारा जा सके।

तुमने मदन रेखा का इतिहास पढ़ा है। कितना चुनौती भरा संकटकाल था उसके सामने?उर्वशी को मात करने वाला उसका सौंदर्य और उसी सौंदर्य पर उसके अपने पितातुल्य जेठ की गिद्ध दृष्टि! अपनी अनुज पत्नी को अंकशायिनी बनाने के लिए जेठ द्वारा अपने ही भाई का विश्वासघात! कोई सामान्य नारी होती तो या तो आत्महत्या करती या समय से समझौता। पर वह मदनरेखा अगर चाहती तो आत्महत्या भी नहीं कर सकती थी, क्योंकि उसकी कोख में एक जीव के पंख फड़फड़ा रहे थे। मदनरेखा ने मरणासन्न अपने प्रियतम को देखकर भी धैर्य नहीं खोया। उसने सारी चिंताएँ और मोह को छोड़कर अपने प्रियतम को आराधना करवायी, जिसके प्रभाव से वह देव बना। तुम अपनी भावनाओं को नियंत्रित करके मुझे पाथेय दो। अपने आपको धीरज देने के लिए मदनरेखा के जीवन की घटनाओं को सामने रखो। तुम पर सारा उत्तरदायित्व आने वाला है। घर की व्यवस्था वर्षों से तुमने ही की है। मैंने आज तक तुम्हारी ओर से किसी प्रकार की कोई न्यूनता नहीं

पायी। इस बात का विशेष ध्यान रखा कि परिवार रूपी पेड़ की कोई भी डाली पेड़ से अलग नहीं हो। छायादार शाखा–प्रशाखा से जुड़ा पेड़ ही क्लांत पथिकों का विश्रांति स्थल बनता है, वहीं दीघायु भी होता है। तुम अपनी आत्मीयता और वात्सल्य की डोर से सम्पूर्ण परिवार को बाँधे रखना। सभी में परस्पर सहयोग की भावना का विकास करना। पुत्रों के पुण्योदय से जैसे ही व्यापारिक सफलता प्राप्त हो, जो भी अवशिष्ट कर्ज है, वह अवश्य चूकतां कराना। यद्यपि वर्तमान की व्यवस्था को आधार बनाना है। अंतिम और मुख्य बात यह है कि जिस समय मोती ने तुम्हारी कोख में पाँव पसारे थे, तुम्हें शंत्रुजय की दो विभक्त पहाड़ियों के एकीकरण का सपना आया था। उस सपने की चर्चा मोती से अवसर देखकर अवश्य करना। उसे प्रेरित भी करना। तुम्हारा सपना अवश्य ही पूर्ण होगा। काश! मैं भी उस सपने को वास्तविक आँखों से देख पाता....' इतना कहते–कहते अमीचंद कमजोरी के कारण हाँफने लगा। रूपा की बड़ी–बड़ी आँखों से आँसू बहते रहे और अमीचंद का सीना भीगता रहा। रूपा ने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। अपनी चेतना पर छाये अज्ञान और मोह के घने आवरण को परमात्म वाणी द्वारा नियंत्रित करके अमीचंद के आत्म कल्याण के प्रयास प्रारंभ कर दिए। वह समझ गयी थी कि स्वामी अब कुछ समय के ही मेहमान है। विदायी तो लेंगे ही, इनकी स्थिति तो कर्माधीन हैं अतः रूकना चाहे तो भी कर्मों

की डोर से बंधे ये पराधीन रूक नहीं सकते, पर मेरा विवेक तो मेरे नियंत्रण में है। क्यों न मैं अपने स्वामी के हित में अपने स्वार्थ का और मोह का परित्याग कर इन्हें पाथेय दूँ।

निःसंदेह रूपा जैसी नारी जीवन में समस्त परिपार्श्व को अपने आभामंडल से आलोकित कर सकती है। परन्तु इतना अनुपम त्याग कोई सामान्य घटना नहीं है। मानव रोता है तो अपनी प्रतिकूलता पर , हँसता है तो अपनी अनुकूलता पर; परन्तु अनुकूलता और प्रतिकूलता में सहज धैर्य धारण कर अन्य के सुख–दुःख में भागीदारी विरले ही निभाते हैं।

रूपा जैसे अमीचंद के साथ पूर्णरूपेण तादात्म्य स्थापित कर चुकी थी। अमीचंद के इंगित पर उसने आजीवन अपनी राह बनायी थी और अंतिम समय में भी उसने अपने प्रेम का सार्थक परिचय दिया था। उसने अपने पुत्र त्रिपुटी को एकांत में बुलाकर अमीचंद पर फड़फड़ाते मौत के पंखों से अवगत करा दिया। पुत्र भावविह्वल होकर छटपटा उठे। तीनों पुत्रों का अमीचंद के प्रति अद्भुत समर्पण था। पिता भी सुयोग्य थे, जिन्होंने अपने पुत्रों को अनुशासन भी दिया था, साथ ही उचित अनुपात में वात्सल्य का अमृत भी बाँटा था। बेटे अयोग्य नहीं थे कि अपने पिता द्वारा सम्पन्न कर्त्तव्यों का मूल्यांकन नहीं करते। सन्तुलित जीवन विकास में माँ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है तो पिता का योगदान भी

कम नहीं होता। माँ जहाँ ममता और स्नेह की उद्‌गम है, वहीं पिता अनुशासन और संरक्षण का महान दायित्व सम्पन्न करते हैं। एक का भी अभाव शिशु के मानसिक विकास में अधूरापन अंकित कर देता है। पिता अंतर से शिशु के प्रति प्रेमपूर्ण होने पर भी कुम्हार की तरह बाहर से कठोर रहकर उसके व्यक्तित्व की विशिष्ट संरचना करते हैं। निश्चित ही पिता के सामीप्य की कल्पना मात्र ही बच्चे के कोमल मानस को सुरक्षा प्रदान करती है।

अमीचंद में दायित्व बोध की गहरी भावना थी। उसने अपना ध्यान मात्र अर्थोपार्जन की ओर ही केन्द्रित नहीं किया था, अपितु बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा दी थी कि विनय, विवेक, अनुशासन, राष्ट्रीयता और संस्कृति प्रेम स्वतः ही उनकी रग–रग में समा गया था। वे जानते थे कि सुयोग्य बच्चे ही उनका और उनके देश का भविष्य है। अगर बच्चे योग्य है तो वैभव तो कभी भी प्राप्त कर लेंगे पर संस्कारों के अभाव में उनका जीवन खुश्बू रहित फूल जैसा होगा।

आज अपने जीवनदाता/संस्कारदाता पिता की अंतहीन अस्वस्थता ने तीनों बेटों के मानस को झकझोर दिया। वे समझ नहीं पाए कि ऐसे नाजुक अवसर पर वे क्या करें?माँ रूपा ने ही धीरज रखते हुए अपने बेटों के आँसू पौंछे और कहा–बेटा! प्रकृति के शाश्वत नियमों में परिवर्तन संभव नहीं है। सत्य का सामना फौलाद बनकर करना ही होगा। यद्यपि हम वीतराग नहीं हैं पर वीतराग के पुजारी अवश्य है।

मोह पर हमारी विजय स्थापित नही हुई है पर स्थान और समय का विवेक जरूर जागृत करना है। अपने पिताश्री की आत्मा संसार से हटकर परमात्म चरणों में तादात्म्य स्थापित करे, यही इस समय तुम्हारा कर्त्तव्य है और यही तुम्हारे पिताश्री का पाथेय बनेगा। जी भरकर रोये बेटे! आँखें लाल भभुका हो गयी पर दैवाधीन सभी निरूपाय थे। रूपा भारी मन लिए वहाँ से उठकर अमीचंद के पलंग के समीप आ गयी। पुत्र भावनाओं के भंवरजाल में भ्रमण करते रहे। उनकी आँखों से आँसू बरसते रहे। अतीत के झरोखे से वे अपने पिता के साथ बीती घटनाओं को निहारते रहे। उनके पिता लाड़–दुलार और अनुशासन के माध्यम से उन्हें किस प्रकार शिक्षाएँ देते थे, तीनों बंधुओं के बीच आज जो प्रेम है, उसका सारा श्रेय उनके पिता को ही था। बात–बात में वे इतनी महत्वपूर्ण शिक्षा देते थे कि उसके प्रकाश में उनका जीवन भटकने से बच गया। सामान्य तकरार को भी वे पसंद नहीं करते थे। उनका यह अमर वाक्य था कि जहर की तो एक ही बूंद पर्याप्त है। आज बंधु त्रिपुटी का समन्वय के लिए आदर्श स्वरूप था और उसका श्रेय एक मात्र माता–पिता के निर्मल और संस्कार युक्त वातावरण को ही था।

सुख–दुःख दोनों स्थितियों में वे सभी एक–दूसरे की छाया बनकर रहे थे। संकटकाल में भी अमीचंद को इस बात से संतुष्टि थी कि पुत्रों का आपसी स्नेह बंधन गहरा है। इस

कारण उन्हें यह भी विश्वास था कि संकट जैसे आया है, वैसे ही आपसी संप के कारण समाप्त भी हो जाएगा, क्योंकि लक्ष्मी भी उसी को अपना स्वामी बनाती है, जो प्रेममय होता हैं।

रूपा की सूचना ने आदेश का कार्य किया। घर का सारा नक्शा बदल गया। सारे सांसारिक व्यावहारिक कामकाज हो रहे थे पर यंत्रवत्। न होठों पर मुस्कान थी, न हृदय में उत्साह! सभी को जैसे साँप सूंघ गया था। उल्लास और ठहाके तो जैसे अतीतकाल की घटना थी। चारों ओर मात्र उदासी और सन्नाटे की छाया बन गयी थी। अमीचंद का चेहरा वह घंटों तक ताकती रहती। क्या यही वह चेहरा है जिसे देखकर एक देवकुमार की कल्पना करती थी?

वह उस पल की यादों में डूब गयी जिस दिन उसका नये जीवन में पदार्पण हो रहा था। जब उसने बचपन को लाँघकर यौवन की दहलीज पर कदम रखा तो आँखों में एक सपन उतर आया था।

अपनी कामनाएँ अंगड़ाईयाँ लेने लगी थी। बचपन की चंचलता पर यौवन का संकोच गहराने लगा था और तब माँ के आग्रह पर सुयोग्य और सभी प्रकार से अनुकूल अमीचंद के साथ उसका वाग्दान पिता ने सम्पन्न कर दिया था। कितनी प्रसन्न और सन्तुष्ट हुई थी, जब उसने अपने होने वाले प्रियतम की प्रशंसा अपने पिता द्वारा चुपके–चुपके सुनी थी। नानाविध कल्पना की तूलिका द्वारा वह अमीचंद की

छवि बनाती रहती थी।

अंत में वह दिन भी आ गया था, जब वह मायके के सारे संबंधों को पीछे छोड़कर अनेकों मादक सपनों को अपनी पलकों में छुपाकर ससुराल की दहलीज पर चढ़ी थी। सास ने गहरे प्यार से सलोनी बहु के चेहरे को अपनी हथेलियों में लेकर कहा था–बहु! आज से तुम सिर्फ मेरी बेटी हो। अब इस घर की सारी मान–मर्यादा तुम्हारे आँचल में डालती हूँ। इस घर की सीमाओं में ही सुख शांति प्राप्त करना। मुझे सास कम और माँ अधिक समझना। कितनी खुश हुई थी अपनी ममतामयी सास की इस वात्सल्य भीगी शिक्षा से वह! बचपन से सास की जो खलनायिका की छवि उसके कोमल मानस पटल पर अंकित थी, वह पलक झपकने मात्र में तिरोहित हो गयी थी।

अब आयी पियु मिलन की घड़ी! उसके नये जीवन की मुख्यधारा में असली प्रवेश की घड़ी थी। अप्रतिम उसका सौंदर्य आभूषणों से जगमगा उठा था। कितना सजाया था उसे और कितना छेड़ा था उसकी समवयस्क सखियों ने। सखियों की प्रत्येक मजाक पर नहले पर दहला जड़ने वाली मैं उस दिन जैसे मूक बन गयी थी। मेरा अपना मन भी कहाँ मेरे नियंत्रण में था, वह भी तो उड़ रहा था। मेरे हृदय में एक साथ कितनी भावनाएँ उमड़ रही थी। संकोच, लाज, भय, उत्सुकता का मिश्रण मुझे अपनी गिरफ्त में ले चुका था।

जो सपना बड़े मनोयोग से संजोया था, आज वह पूरा हो रहा था। सुन्दर, शिक्षित, संस्कारी और समृद्ध स्वामी पाकर जैसे मैं निहाल हो उठी थी। सोना ने तो कहा भी था–भाग्यशाली हो रूपा जो इतने संस्कारी पुरुष की जीवनसंगिनी बनी हो। मनोयोगपूर्वक इनकी सेवा करना। तुम यह मत समझना कि मात्र तुम्हारा कर्त्तव्य जीजाजी के प्रति ही हो। जीजाजी की डोर के साथ ही अनेकों जिन्दगियाँ तुमसे जुड़ रही है। ससुराल स्वर्ग भी तभी बनेगा, जब ससुराल के सभी सदस्यों को तुम अपने समर्पण और सेवा के द्वारा वश में कर लोगी। अपने हृदय को विशाल और गहरा बनाना! सभी को अपने प्रेमपूर्ण आत्मीय व्यवहार से अपने में समेट लेना, बस ससुराल को अपना बनाने का यही गूढ़ मंत्र है। रूपा ने इस मंत्र को अपनी गाँठ में बाँधा ही नहीं अपितु आचरण भी वैसा ही किया था।

रूपल ने सदैव अपने ससुराल में सेवा, स्नेह और प्यार का अमृत बांटा था। पूरा परिवार उससे संतुष्ट था। सास–ससुर तो उस पर जान छिड़कते थे। सभी की आँखों की कीकी बन गयी थी वह! उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा और व्यावहारिक दक्षता के कारण अमीचंद को कभी भी पारिवारिक तनावों का सामना नहीं करना पड़ा था। रूपा ने अमीचंद की प्रसन्नता के लिए न दिन देखा, न रात पर फिर भी वह अपराजित नहीं हो सकी थी। अपना सर्वस्व समर्पित करके भी वह अमीचंद को बांध नहीं पायी। जिसे देखकर

सखियों की आँखों में ईर्ष्या की चिंगारी भड़की थी, आज वही सौंदर्य जैसे सम्पूर्णतया श्री हीन हो चुका है। सोचते–सोचते रूपा की आँखें बरस पड़ी। पुनः संसार की नश्वरता का चिंतन किया। अपने दर्द को अंतर में ही समेटकर अमीचंद के आत्मकल्याण की भावना से उन्हें सुन्दर–सुन्दर भजन सुनाने लगी। रूपा का कंठ और भी मधुर था। उसकी आवाज में जादू था। वह अपनी स्वाभाविक आवाज में कोई काम करते हुए जब भी कुछ गुनगुनाती तो सुनने वाला उसके स्वर में डूब जाता था।

रूपा का अब यही काम था। वह कोकिल कंठ से भावों में डूबकर पूर्ण तन्मयता के साथ आराधना करवाती थी। समयानुसार अन्य लोग भी वहाँ बैठते और रूपा के स्वर में स्वर मिलाते थे। समस्त भवन आराधनामय बन चुका था। अमीचंद भी इस प्रक्रिया से पूर्ण मानसिक शांति की ओर अग्रसर हो रहा था। उसका तन मन परमात्मा के शासन से संलग्न हो चुका था। समस्त पारिवारिक चिंताओं से मुक्त होकर वह मात्र अपनी आराधना में पूर्ण तन्मय बन गया था।

आज रूपा अमीचंद को श्रीमद् देवचंद्र रचित ऋषभदेव स्वामी का स्तवन सुना रही थी। गले का माधुर्य और भावों में डूबकर गाने की उसकी भावभंगिमा में अमीचंद डूबता चला गया। स्तवन की उस कड़ी ने अमीचंद को झकझोर दिया। वह बार–बार इसी पद को सुन रहा था। शब्द थे–

'प्रीति अनंती पर थकी, जे तोड़े हो ते जोड़े एह'

अमीचंद चिंतन करने लगा–काश! मैं भी पर पदार्थों से, संसार की भोगपरक सामग्री के स्नेहपाश को तोड़कर परमात्मा से प्रेम जोड़ता। अनमोल मानव जीवन पाकर भी साधना की सुगंध से अपने जीवनबाग को नहीं महका सका। सारा जीवन बाहर की अंधी दौड़ में दौड़ते हुए गंवा दिया। जीवन का सार संयम है। संयमी बने बिना मुक्ति संभव नहीं है। इस वाक्य को समझते हुए भी संसार के रंग राग में डूबकर नासमझी का ढोंग करता रहा। काश! मैं भी धन्ना और शालिभद्र का अनुसरण करता। कितने भाग्यशाली थे शालिभद्र! जो माँ के मात्र एक शब्द से प्रतिबुद्ध हो गए। कितने सरलमना थे धन्ना, जो सुभद्रा के एक ही व्यंग्य से स्नान करते हुए उठकर संसार को छोड़ चले। परमात्मा से जुड़ने का मात्र शाब्दिक आह्वान करके ही मैं सन्तुष्ट हो गया पर मात्र शाब्दिक आह्वान से ही क्या प्रभु से प्रीति

जुड़ती है? परमात्मा से प्रीति जोड़ने की तो स्पष्ट शर्त है। प्रथम संसार से, पदार्थों से राग तोड़ो फिर प्रभु से जुड़ो। षड्द्रव्य में माने गए है–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशस्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल! जब तक जीव पुद्गल मात्र से मोह नहीं छोड़ता, तब तक वह प्रभु से प्रेम कर नहीं सकता। दृश्यमान जितने भी पदार्थ है, वे सारे पर पदार्थ है। स्वयं का शरीर भी पर है क्योंकि उसका भी मृत्यु के समय जीव से वियोग होता है। चेतना का अपना कोश तो मात्र उसके अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य ही है। इनका कभी वियोग नहीं होता। न्यूनाधिक रूप से आत्मगत रहेंगे ही।

आज रूपा उन्हें संयम से संबंधित भजन सुना रही थी। शब्द थे–

अपूर्व अवसर एहवो क्यारे आवशे,
क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो।
सर्व संबंध नो बंधन तीक्ष्ण छेदी ने
विचरशुं क्व महत्पुरुष ने पंथ जो।।

अमीचंद भजन की इस धारा में डूबकियाँ लगाने लगा। गाने की लयबद्धता ने उसके हृदय की तंत्रियों को झिंझोड़ दिया। शब्दों की रचना भी अद्भुत थी। काश! मैं परमात्मा के पथ का पथिक बनकर सम्पूर्ण संसार से आत्मीय भावों का विस्तार करता। संयम का अर्थ है–संसार के प्राणी मात्र से तादात्म्य स्थापित करना। कषाय मत करो,

यह निषेधात्मक वाक्य है। इसका सकारात्मक वाक्य है–'आत्मवत् सर्वभूतेषु' सभी जीवों को स्वयं की आत्मा ही समझो। जो मानव सभी को अपना समझ लेता है, वह कभी कषाय नहीं करता। क्योंकि कषायों का मुख्य कारण है–अपनी स्वार्थ वृत्ति के पोषण में किसी बाधक तत्व की उपस्थिति!'

मानव को जब यह अहसास होता है कि मेरी आकांक्षा की पूर्ति में यह तत्व बाधक बना है, तब वह कषायों की आग में जल उठता है। जब उसके प्रेम का विस्तार होता है तो कोई भी स्थिति चाहे अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल, उसके हृदय को स्पंदित नहीं करती।

काश! मेरे जीवन में ऐसा अनुपम अवसर आता कि अंदर और बाहर दोनों की अपेक्षा से मैं ग्रंथी रहित जीवन को स्वीकार करता। सांसारिक परिवेश को त्याग करके आत्म परिवेश में विचरण करने का पुरुषार्थ करता। उन्हें याद आया कि तीन वर्ष पूर्व एक अवसर पर उनके मानस में ऐसे भाव तरंगित भी हुए थे कि वे संयमी बने। घटना इस प्रकार घटी थी–

अमीचंद को प्रारंभ से ही दीपावली पर्व से विशेष लगाव था। दीपावली पर्व मिश्रित पर्व है। आध्यात्मिक पर्व होते हुए भी लौकिकता का पुट भी इसमें रहता है। दीपावली की तैयारियाँ महिनों पूर्व ही प्रारंभ हो जाती है। व्यापारी वर्ग हो या घरेलू महिलाएं, बच्चे हो या वृद्ध, योगी हो या भोगी

दीपावली के आगमन का उल्लास चारों ओर फूट पडता है।

अमीचंद के सख्त निर्देश थे कि दीपावली के आगमन पर व्यवस्थित तैयारी होनी ही चाहिए। प्रत्येक वर्ष दीपावली की सजावट और उसकी तैयारी में किसी प्रकार की कमी नहीं होती थी। वे जानते थे कि सामान्य–सी चूक भी सौम्य, शांत और भावुक अमीचंद की मानसिक स्थिति को उद्विग्न कर देगी। परिवार के सदस्यों द्वारा दीपावली के उपलक्ष्य में की जाने वाली तैयारियों को आज अंतिम रूप दिया जा रहा था, क्योंकि आज रात्रि को दीपावली की रोशनी जगमगाने वाली थी।

रूपा आज प्रातः से ही तैयारी में जुटी हुई थी। घर की सजावट का कार्य तो लगभग पूर्ण हो चुका था। अब तो मात्र भोजन की तैयारी ही अवशिष्ट थी। संध्या होते–होते तो उसने भोजन सामग्री भी तैयार कर ली। रसोई से उठती मधुर खुश्बू घर के सदस्यों को जल्दी से जल्दी थाली पर बैठने का निमंत्रण दे रही थी। छत की मुंडेर पर सैकड़ों दीये सजा दिए थे। मात्र उन्हें प्रज्ज्वलित करना था। ठीक समय पर पुत्रों के साथ सेठ अमीचंद की बग्घी हवेली के समक्ष आकर रुक गयी। चमचमाती हवेली की भव्य सजावट से अमीचंद मुग्ध हो उठा। प्रत्येक दीपावली को खाने आदि से निवृत्त होकर अमीचंद अपनी पत्नी रूपा के साथ मंदिर दर्शन एवं दीपावली की सजावट को देखने पैदल ही जाता

था। उसी क्रम में आज भी वह रूपा को लेकर उल्लास, उत्साह और उमंग से घर से रवाना हो गया। राह चलते हुए उसने पत्नी को संबोधित करते हुए कहा–रूपा! दीप प्रकाश के प्रतीक है पर क्या प्रकाश मात्र दीपावली के दिन ही आता है?रूपा ने सहजता से कहा–नहीं स्वामी! प्रकाश के अभाव में तो मानव एक पल भी नहीं रह सकता। तो फिर स्थायी प्रकाश को पाने के लिए हम पुरुषार्थ क्यों नहीं करते?अमीचंद ने रूपा की तरफ प्रश्न उछाला।

यह आप कैसी बातें कर रहे हैं। स्याह अंधेरा धरती पर अपना साम्राज्य फैलावें, इससे पूर्व ही मैं नियमित दीपक जला देती हूँ। कभी यह क्रम अस्त–व्यस्त नहीं हुआ। आशंकित होकर रूपा ने उत्तर दिया।

नहीं रूपा! मेरा आशय तुम समझी नहीं। तुम तो दिया जलाती हो, वह द्रव्य प्रकाश है, ब्राह्य प्रकाश है! मैं आत्म–प्रकाश की बात कर रहा हूँ। क्या तुम जानती हो कि दीपावली पर्व की स्थापना की क्या भूमिका है?जैन दर्शन के अनुसार दीपावली का क्या महत्व है?

रूपा–संक्षेप में एकबार आपने जरूर चर्चा की थी कि इस दिन परमात्मा महावीर का निर्वाण हुआ था। तब वहाँ ज्ञान प्रकाश के अस्त हो जाने के कारण प्रतीक रूप में उपस्थित लोगों ने द्रव्य प्रकाश के रूप में दीपक जलाकर प्रकाश किया। दीपों की पंक्तियाँ सजायी इसलिए इसका नाम ही दीपावली हो गया। मेरे हृदय में इस बात को जानने

की बड़ी जिज्ञासा है कि परमात्मा के निर्वाण दिवस पर खुशियाँ क्यों मनाई जाती है?

अमीचंद–तुमने कितना आवश्यक प्रश्न किया है। यों तो मृत्यु एक अवसाद का पर्याय है। परन्तु जिनका जीवन जागृति में बीतता है, जो आत्म कल्याण के लक्ष्य को उपलब्ध हो जाते है, जिनकी आत्मा शुद्ध, बुद्ध और पवित्र हो जाती है, उनकी मृत्यु भी कल्याणक के रूप में मनायी जाती है। तुम जानती हो– मृत्यु के बाद जीवन और जीवन के बाद मृत्यु यह अंतहीन श्रृंखला है। इस अंतहीन श्रृंखला को हम जीवन की सबसे कष्टदायक समस्या भी कह सकते हैं। अगर कोई विकट समस्या का समाधान खोजता है, तो वह दुःखी होगा या सुखी।

रूपा–समाधान चाहे छोटी समस्या का भी क्यों न प्राप्त करे, प्रसन्नता ही होगी।

अमीचंद–तो फिर आत्मा की सबसे बड़ी समस्या जन्म–दुःख मरण–दुःख और इनसे संबंधित अगणित समस्याओं को जो समाहित करता है, वह दुःख क्यों मनायेगा? परमात्मा की मृत्यु ऐसी घटना है, जो अंतिम है। उसके बाद न जन्म है न मृत्यु, न बुढ़ापा है न पराधीनता!

सम्पूर्णतः स्वाधीन आत्मा स्वयं भी प्रसन्नता मनाती है और उसे जानने वाले भी उसके इस विजय पर खुशियाँ मनाते है।

ये दीपावली के दीये बहुत गहरा प्रतिबोध देते हैं। ये अंधकार पर प्रकाश की विजय के प्रतीक है। ये दीप आज परमात्मा महावीर के अलौकिक जीवन की स्मृति तो कराते ही हैं, साथ ही हमारे अपने अंतर में इस प्रकार की ज्योति जाज्वल्यमान बने, जिससे हमारा अज्ञान रूप अंधेरा दूर भाग सके, ऐसी प्रेरणा भी देते हैं। हम अपने आशियाने को कितना सजाते हैं?जरा भी गंदगी नहीं रहने देते पर क्या अंतर में झाँकने का उपक्रम करते है कि हमारा मानस कषायों के कारण कितना सड़ांध मार रहा है?हमारे अंतर में महावीर की करुणा और शुद्धात्म का दीप जलता है तो ये प्रतीक सार्थक बनते हैं, अन्यथा इनको जलाना व्यर्थ है। हमारी मूलभूत समस्या है–हम प्रतीक को ही मूल उद्देश्य समझकर सन्तुष्ट हो जाते हैं।

रूपा भी गंभीर हो गयी थी। उसका मानस भी संत स्वभावी अमीचंद के उपदेशात्मक संवाद से तरंगित हो गया था। उसने कहा–आप ठीक कह रहे हैं स्वामी! सब कुछ बदलता है पर मानव के भाव, उसकी आसक्ति और उसके कषाय ही नहीं बदलते। आकृति के साथ अगर प्रकृति बदले तो अवश्य मानव जीवन सार्थक बन जाए। संसार का परिभ्रमण करते हमें अनादिकाल बीत गया पर कभी हम अपने आपसे यह प्रश्न नहीं करते कि क्या मात्र मूर्खों की तरह लक्ष्यहीन हमारी यात्रा नहीं चल रही है? इस लक्ष्यहीन यात्रा की मंजिल का भी हमें आभास नहीं है! व्यावहारिक

दक्षता हमारे रोम–रोम में भरी हुई है, परन्तु आध्यात्मिक चतुराई की हम कभी आवश्यकता भी महसूस नहीं करते। महावीर नहीं बन सके तो भी उनके ज्ञान और उनकी करुणा का आंशिक प्रकाश तो हमें प्राप्त करना ही चाहिए।

अमीचंद–तुम ठीक कहती हो रूपा! हम दूसरों की क्या बात करें, हमें स्वयं को तो अवश्य बदलना चाहिए। अब तो मुझे बदलने हेतु प्रकृति भी उपदेश दे रही है। देखो! मेरे मस्तिष्क पर आए सफेद केश भी मुझे मेरे हृदय का कालापन मिटाने को इंगित कर रहे है। कल ही शीशे में मैंने केश विन्यास के समय सफेद बाल देखा था और तभी से मानस चिंतन के सागर में डूबा हुआ है।

मैं अभी तक सांसारिक रंगराग में डूबा रहा। जिस अनमोल मानव जीवन को आत्म कल्याण में लगाना चाहिए, उसी को संसार के विस्तार में लगाया। आनंदघनजी ने कितना सुंदर भाव व्यक्त किया है–

जिय जाने मोरी सफल घरी रे।
सुत वनिता धन यौवन मातो,
गर्भ तणी वेदन विसरी रे।

हमने माँ की कोख में होने वाली वेदना से घबराकर संकल्प किया था कि बाहर निकलकर अब तो ऐसी क्रियाएँ करूँगा, इतनी उत्कृष्ट कोटि की आराधना करूँगा कि पुनः कभी माँ के गर्भ में आना ही न पड़े। ज्योंहि बाहर आए, प्रथम

बालरुदन के साथ ही उस पीड़ा और प्रतिज्ञा दोनों को विस्मृत करते गए।

लाड़ी–वाड़ी और गाड़ी इन तीनों के व्यापक साम्राज्य में हम स्वयं को भूलते चले गए। सत्ता, संपत्ति और संतति को अपने स्वामित्व में देखकर सन्तुष्ट होते गए। तृप्ति का आनन्द चेहरे पर निखरता गया। परमात्मा से अपने को दूर करते चले गए। संसार और संसार के पदार्थों का विस्तृत रूप देखकर हमने अपने जीवन को धन्य समझ लिया। काश! संसार और सांसारिक राग दशा में डूबने की बजाय आराधना में तन्मय बनता। जिस मानव जीवन की उत्कृष्टता देवों ने भी स्वीकार की है, उसे मात्र भोगपूर्ति में खर्च न करके आत्मसंपदा को उपलब्ध करने में खर्च करता। मैंने अभी तक तो इस जीवन का सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन ही नहीं किया है।

रूपा को लगा यद्यपि संवाद में विषयांतर हो गया है फिर भी रुचिप्रद है क्योंकि ऐसी जागरूकता और यह यथार्थ बोध ही मानव के विकास का संकेत है। उसने कहा–स्वामी! आप यह एकांगी चिंतन क्यों कर रहे हैं कि आपने कुछ नहीं किया। यथासंभव हमने परमात्मा के शासन की शीतलता का अमृत पीया ही है।

अमीचंद–यही तो अंतर है कि हम कुछ तर्क देकर अपने आपको सन्तुष्ट कर लेते हैं। क्या ऐसी सन्तुष्टि संसार की क्रियाओं में महसूस करते हैं?एक दुकान की चार दुकाने

करने की ताक में रहते हैं पर धर्म साधना में इन विचारों से स्वयं को राहत दे देते हैं कि हम कुछ कर रहे हैं। यह राहत नहीं है बल्कि भ्रमपूर्ण चिंतन है। जितना समय हम पदार्थों को देते हैं, शरीर को देते हैं; भौतिक सुविधाओं को अर्जित करने में लगाते हैं, उसका पासंग समय भी तो आत्म चिंतन और आत्महित में नहीं लगाते! अभी तक हमें शरीर और उससे संबंधित विषयों का चिंतन ही अच्छा लगा है पर 'बीति ताहि विसार दे आगे की सुध लेह' जो बीत गया, वह तो पुनः लौट नहीं सकता पर जो अवशिष्ट समय है, उसका अवश्य सदुपयोग करूँगा ताकि जीवन सार्थक और सफल हो सके।

अब मैं अपना पूर्ण सामर्थ्य और शक्ति लगाकर समग्रता से संसार से निवृत्त होकर प्रभु महावीर के पथ पर चलने का प्रयत्न करूँगा। मैंने अब गृहस्थ जीवन से संबंधित सामान्य दायित्वों को पूरा कर लिया है। अब अवशिष्ट ऊर्जा आत्महित में खर्च करूँगा। आनंदघन योगीराज के शब्दों में–

क्या सोवे उठ जाग बावरे।
अंजलि जल ज्यों आयु घटत है,
देत पहोरिया घरिय घाव रे।

'अरे चेतन! अब तो जाग! हस्तसंपुट में रहे हुए पानी की बूँद की तरह आयुष्य पल–पल कम होता जा रहा है।

यह टकोर करती घडी भी तुझे शिक्षा देती है कि पल–पल तेरे जीवन रूपी कोश से आयु रूपी मोती घटते चले जा रहे हैं। जिस शरीर को सुख देने के लिए आत्मा को विस्मृत किया, क्या वह शरीर अगली यात्रा के समय साथ चलेगा? आनंदघनजी इन्हीं भावों को एक पद्य में कितनी सहजता से बांधते हैं–

अरी काया अब चल संग हमारे।
तोय कारण मैं जीव संहारे, बोले झूठ अपारे।
चोरी करी परनारी सेवी, झूठ परिग्रह धारे।

आनंदघन योगी उस शरीर को संबोधित कर रहे हैं, तुझे तृप्त करने के लिए अगणित पाप किए। अनेकों जीवों की विराधना की। असत्य भाषण भी किए। इंद्रियों के आकर्षण में आसक्त होकर वासनापूर्ति हेतु परनारी का सेवन भी किया। परिग्रह किया। इतने सारे पाप करने पर भी क्या तूं मेरा साथ दे सकता है?

शरीर पुनः आत्मा को प्रत्युत्तर में कहता है कि–

जीव सुणो या रीत अनादि, कहा कहत वारंवारे।
मैं न चलुंगी तोये संग चेतन, पाप पुण्य दो लारे।

अरे चेतन! अनादिकाल से आत्मा शरीर के लिए अशुभ क्रियाएँ करती है। जैसा शरीर अथवा इंद्रियाँ निर्देश देती है, उसी अनुसार आत्मा क्रियाएँ करती है, परन्तु आज तक मैंने किसी आत्मा की वफादारी नहीं दिखाई है। मैं तो चीख–चीख कर कहता हूँ कि मै किसी को सहयोग नहीं

दूँगा। अगर कोई देना चाहे तो मुझे सहयोग दे, फिर मेरी इच्छापूर्ति आत्मा अथवा चेतन क्यों करती है?आत्मा के साथ मात्र शरीर के सहयोग से उपार्जित उसके अपने पुण्य और पाप ही जाते हैं। रूपा अमीचंद के इतने गहरे दार्शनिक चिंतन पर चकित रह गयी। फिर अपनी आदत के अनुसार उसने तुरंत अमीचंद की भावना से अपनी भावना जोड़ते हुए कहा–आपका यह चिंतन समयोचित है। अब हम दोनों ही गृहस्थ जीवन में व्यावहारिक अपेक्षा से निवृत्त हो चुके है। आपका फैला हुआ व्यापार पुत्रों ने एवं घर की व्यवस्था बहुओं ने बड़ी कुशलता के साथ संभाल ली है। हम दोनों पूर्ण मानसिक एकाग्रता से अपना समय आराधना में लगा सकते हैं। अमीचंद ने हँसते हुए कहा–तुमने मेरे कथन की गंभीरता नही समझी! मैं संसार से सम्पूर्ण निवृत्त होकर मुनि बनकर आसक्ति और कषाय की गांठों को खोलना चाहता हूँ।

रूपा इस प्रस्ताव से हड़बड़ा उठी। मन कुछ पलों के लिए अमीचंद के संयम की कल्पना में खो गया। कुछ पलों बाद स्वस्थ होकर उसने कहा–मैंने परमात्मा महावीर के शासन में आँखे खोली है। संयम ही जीवन और मृत्यु के शिकंजे को तोड़ने वाला हथियार है। आप संसार और परिवार की दीवारें तोड़कर प्राणी–मात्र के आत्मीय बनें, उनके साथ अपनी आत्मीयता स्थापित करे, निःसंदेह यह महान् पुण्य का प्रतीक है। मैं आपको तो संयम की राह पर

आगे बढ़ने की अनुमति दूँगी ही, परन्तु मैं स्वयं चंदनबाला और मृगावती को आदर्श बनाकर साध्वी बनूँगी। गृहस्थ जीवन की समस्त क्रियाएँ कदम से कदम मिलाकर की है तो क्या आत्म कल्याण के वक्त कदम पीछे कर लूँगी ? परन्तु सलाह अवश्य दूँगी कि संयम स्वीकार करने से पूर्व आप अपनी शारीरिक स्थिति पर अवश्य दृष्टिपात करें। कहीं ऐसा न हो कि आपकी शारीरिक परेशानी से आपके मुनि भगवंतों को कष्ट उठाना पड़े।

रूपा के यथार्थ निवेदन पर अमीचंद का चेहरा मायूस हो गया। जोश ही जोश में वह यह विस्मृत ही कर गया था कि कुछ समय से वह चलने में परेशानी का अनुभव कर रहा है। विहार साधु जीवन की अनिवार्य और मुख्य प्रक्रिया है। उसने कुछ सोचने के बाद कहा—रूपा! तुमने कटु पर यथार्थ सत्य कहा है। निःसंदेह उम्र से मेरा शरीर प्रभावित होता जा रहा है। खैर! सम्पूर्ण संयम स्वीकार नहीं कर सकते, परन्तु आंशिक संयममय जीवन तो बीता ही सकते हैं। मैं महावीर निर्वाण दिवस की मंगल बेला में आज से ही आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा करना चाहता हूँ। समर्पित सन्नारी और त्याग की मूर्ति रूपा को कोई एतराज नहीं था। उन्होंने आत्म साक्षी से आजीवन के लिए सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर लिया। अमीचंद रूपल की इस सहज स्वीकृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। अद्भुत समर्पण! इतने महान् व्रत के लिए भी तुरन्त स्वीकृति! समर्पित पत्नी जहाँ जीवन की

मधुर कविता है, वहीं आत्मा विकास की महान सहयोगिनी भी! ऐसी पत्नियाँ इस जन्म को ही नहीं, जन्मांतर को संवारने में भी मुख्य भूमिका तय करती है। रूपा के गीत ने अमीचंद के सुषुप्त सपने को पुनः हवा दे दी। वह मद्धिम आवाज में गुनगुना उठी –

अपूर्व अवसर एहवो क्यारे आवशे,
क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो।
सर्व संबंध नूं बंधन तीक्ष्ण छेदी ने,
विचरशुं क्व महत्पुरुष ने पंथ जो।

आज अमीचंद कुछ अधिक ही अस्वस्थ थे। आँखें निस्तेज पड़ चुकी थी। सीना धौंकनी की तरह बज रहा था। जुबान अटकने लगी थी। हाथ पाँव स्वतः हिलने में असमर्थ थे। पूरा परिवार अमीचंद के आसपास खड़ा सूनी–सूनी निगाहों से उन्हें अपलक देख रहा था। सभी की आँखें डबडबा रही थी। रूपा की अनुभवी आँखों ने ताड़ लिया था कि पंछी पिंजरा छोड़ने की तैयारी कर रहा है। रूपा के हृदय की वेदना शब्दातीत थी। अनेकों अतीत की घटनाएँ उसके हृदय को मथ रही थी।

मानव इस मौके पर कितना असहाय होता है। कहने को हमें कोई गुलाम कह दें तो तिलमिला उठते हैं। पर हकीकत में हम गुलाम ही तो हैं। कर्मराजा के हाथों में ही तो हमारे जीवन की डोर है। वह जब चाहे पलभर में डोर काट सकता है। कर्मसत्ता को वही चुनौती दे सकता है, जो उसे पराजित कर शुद्ध बन जाता है। रूपा पराजित मुद्रा में उस प्रियतम को देख रही थी, जिसकी वर्षों से सेवा की थी। हृदय की समग्रता से चाहा था और आज वही सारे संबंधों से मुक्त बनकर अनंत की उड़ान पर प्रस्थित हो रहा था। रूपा का हृदय जार–जार रो रहा था। बिन पानी मछली की तरह वह तड़फने लगी। नवकार महामंत्र की धुन जारी थी। अमीचंद की बुझती लौ एकबार पूर्णशक्ति से भभक उठी।

उसने आँखें खोली। पलंक के आसपास खड़े सभी पर एक फिसलती हुई दृष्टि डाली, कुछ पल रूपा के चेहरे पर स्थिर रही और अंत में सन्मुख दीवार पर दर्शनार्थ रखी हुई प्रभु महावीर की तस्वीर पर स्थिर हो गयी। एक हिचकी आई, क्षमापना के संकेत में हाथ जोड़े और आत्मा शरीर रूप कैद से मुक्त होकर अनंत की ओर प्रस्थित हो गयी।

लम्बे समय से धैर्यमूर्ति बनी रूपा ने ज्योंहि अपने प्रियतम के निर्जीव शरीर को देखा–अपने प्रियतम की इस अवस्था को देख नहीं सकी। मूर्छित होकर गिर गई। उसकी माँग का सिन्दूर रक्त मिश्रित होकर और गाढ़ा बन गया। साथ जीने और मरने की कल्पना मात्र व्यवहारिक और औपचारिकता तक ही सीमित रही। रूपा की दुनिया उजड़ गयी। भाल का सिन्दूर प्रकृति द्वारा पौंछ दिया गया। उमंगों का संसार खण्ड–खण्ड हो गया। खुशियाँ वैरन बन गयी। जिसकी छाया बनकर आश्रय लिया था, वह पेड़ ही जड़ से उखड़ गया। कहते हैं वक्त सर्वोत्तम औषधि है। प्रत्येक घटना वक्त के गर्द में धीरे–धीरे समाती चली जाती है। इंन्सान का गहरे से गहरा जख्म भी समय का मल्हम पाकर भर जाता है। रूपा के प्राणप्रिय यद्यपि काल के ग्रास बन चुके थे, पर उन्होंने अंतिम समय में जाते–जाते रूपा को कुछ उत्तरदायित्वों से बांध दिया था और अब वे बंधन ही रूपा की मंजिल थे।

हृदय के अवसाद को अपने अंतर में समेटकर उसने अपनी स्थिति पर नियंत्रण किया। पुत्रत्रय को आश्वस्त करके व्यापार की रुकी गाड़ी को गतिमान करने की प्रेरणा दी। हृदय से आशीर्वाद दिया। माँ के आदेश पर उन्होने व्यापार को नये सिरे से प्रारंभ करने का प्रयत्न किया, परन्तु पूँजी के अभाव में कैसे करें?इस समस्या पर अटक गए। एक बार नेमीचंद अपने निकट स्वजन के वहाँ भोजन हेतु आमंत्रित थे। भोजन समारोह में पारसी सेठ सर जमशेदजी होमजी भी आए हुए थे। उन्होंने नेमीचंद की चिंतनशील मुद्रा देखकर सहज भाव से परिचय लिया और परिचय के दौरान ही उन्हें जब यह पता चला कि यह परिवार इन दिनों कठिन दौर से गुजर रहा है, तो उन्होंने मानवीय संवेदना से कहा–तुम मेरे व्यापार की दलाली का कार्य संभाल लो। मैं तुम्हें अपना पूरा–पूरा सहयोग दूँगा।

नेमीचंद के सपनों को जैसे हवा मिल गयी। अत्यंत प्रसन्नता और माँ के आशीर्वाद से उन्होंने सर की दलाली का कार्य संभाल लिया। नेमीचंद के पुरुषार्थ से, परिवार के अशुभ कर्म के क्षय होने से एवं सर के सहयोग से दलाली का कार्य धीरे–धीरे पनपता गया। निःसंदेह इस परिवार के आर्थिक उत्थान में सर का महत्वपूर्ण और मुख्य योगदान रहा।

रूपा का अपना मन भी शांत होता जा रहा था।

नैतिकता, ईमानदारी, परिश्रम और विनम्रता से नेमीचंद की बंधु त्रिपुटी प्रगति की सीढियां निरंतर चढती रही। आर्थिक रूप से सक्षम होते ही सर्वप्रथम बंधुओं ने अपने पिता के अवशिष्ट कर्ज को समाप्त किया। सभी ने मुक्तकंठ से नेमीचंद के इस कदम की सराहना की।

जब पुत्रों ने चरण स्पर्श कर माँ रूपा को यह खुशखबरी सुनाई तो उसने प्रसन्नता से गद्‌गद् होकर पुत्रों को सीने से चिपका लिया। आज वह चिन्तामुक्त बनी थी। उसके प्रियतम के एक आदेश की अनुपालना हो चुकी थी।

वंशगौरव कुलदीपक नेमीचंद शाह ने कुछ ही अंतराल में अपनी व्यापारिक सूझबूझ और दक्षता से खोई साख को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली। वे बोम्बे के अच्छे नामांकित श्रेष्ठी बन गए थे।

यद्यपि नेमीचंद शाह अभी युवावस्था में ही थे पर चिंतन और क्रिया व्यवहार से वे प्रौढ़ पुरुष को भी मात देते थे। परमात्म श्रद्धा उन्हें पैतृक संस्कारों से प्राप्त हुई थी। धर्म उनकी रग–रग में था और यही कारण था कि ज्योंहि उन्हें आर्थिक दृढ़ता प्राप्त हुई, त्योंहि उन्होंने अपना ध्यान धार्मिक कार्यक्रमों की ओर केंद्रित कर दिया। उनका ध्यान जिनेश्वर परमात्मा के मंदिर निर्माण की ओर गया क्योंकि उस समय तक जैन परिवारों की मुंबई में अच्छी संख्या हो गई थी पर मंदिरों की न्यूनता थी और मंदिरों के अभाव में दर्शनार्थी

व्याकुलता की अनुभूति कर रहे थे। नेमीचंद शाह ने बंबई कोट में श्री शांतिनाथ मंदिर के निर्माण तथा उसकी प्रतिष्ठा में प्रेमचन्द रंगजी को अच्छा योगदान दिया था। इस मंदिर का प्रतिष्ठा समारोह संवत् 1865 में संपन्न हुआ था।

संवत् 1868 में द्वितीय वैशाख शुक्ल अष्टमी शुक्रवार को भूलेश्वर और कुंभार टुकड़ा के बीच चिंतामणि पार्श्वनाथ मंदिर की स्थापना सेठ नेमीचंद अमीचंद ने की। इन दो मंदिरों के अतिरिक्त भी अन्य कई मंदिरों के निर्माण में सेठ नेमीचंद एवं बाद में मोतीशा का योगदान रहा।

नेमीचंद आज समृद्धिवान् था। उसके पास वैभव की अथाह संपदा यद्यपि नहीं थी परन्तु अच्छी स्थिति में था। परिवार में मान–सम्मान था, सब कुछ था उसके पास, पर सांसों का अभाव था। जीवन तो था पर उसमें तेल अल्प ही अवशिष्ट था। सफलता के शिखर पर आरुढ़ होने से पूर्व ही नेमीचंद पर दुर्भाग्य की गाज गिरने की तैयारी हो गई थी। अमावस्या का अंधेरा पूर्णिमा के प्रकाश को निगलने के लिए मुँह फाड़कर खड़ा था। रूपा के भाल पर लगे सौभाग्यतिलक को तो क्रूर काल ने नोंच ही लिया था, पर अभी तक मौत की काली छाया उस परिवार पर मंडरा रही थी। मौत की क्रूर निगाहों ने नेमीचंद के स्वस्थ सुडौल शरीर को नापा और उसकी गर्दन के इर्दगिर्द अपने पंजे कस दिये।

एक दिन स्वस्थ नेमीचंद सो रहा था और अचानक पेट में भयंकर दर्द उठा और वही दर्द उसका जानलेवा बन गया।

नाजों से पाला, अरमानों से सींचा, अगणित आशाओं का केन्द्र और परिवार के रथ का कुशल सारथी नेमीचंद अपने उत्तरदायित्वों का कुशलता–पूर्वक/प्रेमपूर्वक वहन कर रहा था। घर की बहारें लौट आई थी। अमीचंद का बाग हरा भरा होकर अपनी महक से सभी का आकर्षण बिन्दु बना हुआ था। परन्तु किस दिशा और बहाने से बसंत पतझड़ बन जाए, कौन कह सकता है?अशुभ कर्म का बंधन तो मानव वीरता पूर्वक कर डालता है परंतु उदयवेला में वे कर्म रूदन को मजबूर कर देते हैं।

रूपा जीवन के संध्याकाल में खड़ी थी। पतिवियोग की ज्वाला को धर्माराधना के अमृत से शांत करने का प्रयत्न कर रही थी। संसार के आकर्षण से विरक्त थी। पुत्रों की खुशी के लिए आवश्यकतानुसार परिवार की खुशियों में भाग लेती थी। अपने पुत्रों के हरे भरे संसार को देखकर उसने चैन की सांस ली थी। अब अधिकांश समय उसका आत्मचिंतन में ही गुजरता था। यदि उससे मार्गदर्शन की कोई तमन्ना करता तो वह अवश्य ही उचित पथ–प्रदर्शन करती, अन्यथा मूक और तटस्थ रहकर अधिक से अधिक ज्ञाता–द्रष्टा भाव विकसित करने का प्रयत्न करती।

रूपा को नेमीचंद के पारिवारिक व्यवहार ने गहरी संतुष्टि दी थी। संपूर्ण परिवार का उत्तरदायित्व नेमीचंद ने अपने सशक्त, युवा और दृढ़ कंधों पर उठा लिया था। अपने दोनों अनुजों को एक पल के लिए भी यह अहसास नहीं करवाया था कि वे पितृच्छाया से वंचित हो गए हैं। यहाँ तक कि जब अपनी पिता की लाश से लिपटकर दोनों भाई बुरी तरह रो रहे थे, तब नेमीचंद ने अत्यंत धैर्य के साथ दोनों को लाश से अलग किया और अपने अंक में समेट कर कहा–तुम क्यों रोते हो पगले?अनाथ तो मैं हुआ हूँ। तुम दोनों को क्या मुझ पर भरोसा नहीं है? तुम दोनों पर तो मेरा साया मौजूद है। साया तो मेरा हटा है। जब तक मैं जीवित हूँ, वक्त के सारे सर्द–गर्म थपेड़े मैं अपने आंचल में समेट लूँगा। परंतु तुम पर किसी प्रकार की आंच नहीं आने दूंगा। नेमीचंद ने मात्र मौखिक आश्वासन ही नहीं दिया अपितु यही कर दिखाया था।

संयुक्त परिवार उस युग की विशिष्ट परंपरा थी। इस परंपरा के कारण एक का दर्द दूसरे का दर्द था। ईर्ष्या, द्वेष, कलह और अलगाव का जहर उस परिवार से कोसों दूर था। एक ही आंगन में रहने के कारण आत्मीयता का भाव भी गहरा था। न तेरापन, न मेरापन। जो भी था, वह मात्र हमारापन था।

परंतु दुर्भाग्य इस परिवार की खुशियां स्वीकार नहीं

कर सका। मौत ने खुलकर पंख फड़फड़ाये और उसी रात्रि में पेट दर्द के बहाने ने नेमीचंद को रूपा की गोद से छीन लिया।

रूपा ने प्रियतम की जुदाई को कठिनाई से सहनीय बनाया था। निरंतर वह अंदर ही अंदर वैसे भी टूटती जा रही थी। सारे अरमान उसने अमीचंद की चिता के उपर ही चढ़ा दिये थे। उसे देखकर तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि यह वही रूपा है, जो अमीचंद की उपस्थिति में प्रतिपल चहकती रहती थी।

पति की जुदाई भी उसके लिये असहनीय थी पर अब तो दुर्भाग्य ने उसकी कोंख पर भी ठोकर मार दी थी, जिसे सहना कठिन था।

रूपा ने ज्योंहि नेमीचंद की लाश को देखा, वह उससे लिपटकर रो पड़ी। उसके घाव पुनः उघड़ गये। जवान बेटे की लाश देखकर उसका कलेजा मुंह को आने लगा। एक चिता की राख तो ठंडी पड़ी ही नहीं थी कि दूसरी चिता तैयार हो गई। इस असह्य घटना ने परिवार की जड़ें हिला दी। पितृ हृदय बड़े भाई की मौत ने मोतीशा को संज्ञाशून्य कर दिया। जिस भाई ने पिता का कर्त्तव्य निभाया, वात्सल्य और प्यार से उसकी झोली को तरबतर कर दिया, वही नेमीचंद बिना कुछ कहे अनजान राहों का राही बन गया था।

नेमीचंद तो दिवगंत हुआ ही था, साथ ही रूपा की

अवशिष्ट खुशियां भी जैसे विदा हो गई थी। मोतीशा ने शून्य में टकटकी लगाकर मां को बैठे देखा तो घबरा गये। अपने दर्द और पीड़ा को पीकर भी मोतीशा ने पूर्ण प्रयास किये कि मां का गम कुछ हल्का करें परंतु जब भी वे इस इरादे से मां के सामने जाते, उनका साहस टूट जाता। वे मां को तो क्या शांत करते परंतु स्वयं भी माँ की गोद में मुंह छिपाकर सिसक पड़ते। कौन आश्वस्त करता?दोनों के दर्द का दरिया अथाह था।

रूपा ने एक ही जीवन में कितना परिवर्तन देखा था। फूलों की नरम पगडंडियों से भी गुजरी थी, तो कांटों की सेज के नुकीले डंकों ने उसे खून से तरबतर भी किया था। फूलों और शूलों, दोनों ही स्थितियों को उसने अत्यंत समभाव से सहा था क्योंकि उस समय उसका धैर्य–जीवनसाथी उसके साथ था। अमीचंद की मृत्यु उसके हौंसले तोड़ सकती थी। परंतु अमीचंद ने जाते–जाते उसे कुछ वचनों से बांध लिया था, जिनकी पूर्णता के लिए उसे जीवित रहना ही था। पर बेटे की मौत उस पर गाज बनकर गिरी। जिस राह पर जाते तो सभी हैं, पुनः लौटकर कोई नहीं आता, उसी राह पर रूपा की आत्मा भी एक दिन चल पड़ी परंतु सभी ने देखा था कि मृत्यु के समय रूपा की आँखों में सूनेपन के भाव तैर रहे थे। उनकी आँखों में एक अतृप्त कामना लरज रही थी। यद्यपि अब यह परिवार सक्षम हो

गया था पर इतना नहीं जितनी जरूरत थी। दीपा के अत्यंत आग्रह पर रूपा ने अपनी तमन्ना स्पष्ट कर भी दी थी।

रूपा ने दीपा को अपनी अनुभूति से अवगत कराया था और वक्त पर मोती को उसकी पूर्ति हेतु प्रेरित करने का वचन भी ले लिया था। दीपा ने भी पूरी दृढ़ता से सास को वचन दिया था। दीपा की वचनबद्धता ने रूपा की आँखों में चमक उभारी थी।

मौत जैसे उस परिवार पर कुंडली मारकर बैठ गई। परिवार के सदस्य एक–एक कर मौत की गोद में समाते चले गए। पिता अमीचंद के बाद अग्रज नेमीचंद माँ रूपादेवी, भाभी, अनुज देवीचंद एवं दोनों ही अग्रजपुत्र कुल सात प्राणी कुछ ही अंतराल में काल के ग्रास बन गए थे। मोतीशा अपनी पत्नी सहित असहाय बनकर मात्र टापते रह गए।

बहादुर रणबांकुरे जो युद्ध मैदान में गाजर–मूली की तरह मनुष्यों के मस्तकों को धड़ों से अलग कर देते हैं, वे भी एक साथ पारिवारिक इतनी मौतों को झेलने में असमर्थ हो जाते हैं तो कोमल, भावुक मोतीशा कैसे यह दर्दनाक नजारा सहजता से देख सकते थे। परिवार प्रिय मोतीशा भग्नहृदय हो गए। वे तो जीवितमूर्ति बनकर रह गए।

हंसते महकते चहकते बाग के सूनेपन की स्याह रेखाएँ मोतीशा के हृदय से टकराती और वे लहुलुहान होकर

रह जाते। उनकी आँखों में दर्द का दरिया ठाठें मारता था। समय–समय पर हृदय की पीड़ा आँखों के द्वारा बहती रहती थी। भाषा जैसे समाप्त हो गई थी। एक ही छत के नीचे रहने पर भी मोतीशा दीपा से भी उदासीन हो गए थे। वही भव्य हवेली, जिसमें हर पल धमा–चौकड़ी मची रहती थी, निपट सूनी–सूनी हो गयी।

हवेली जड़ थी फिर भी उसका कोना–कोना मोतीशा की पीड़ा को समझकर जैसे मौन रूदन करता प्रतीत हो रहा था। मोतीशा जिस कक्ष में जाते, वही कक्ष उन्हें अतीत के संस्मरण सुनाता। मोतीशा आंतरिक दृष्टि से इतने टूट गये कि वे कक्ष की दीवारों तक से भी भय खाने लग गए थे। एक दिन तो दर्द से फटते हृदय से उन्होंने दीपा को कह भी दिया–कक्ष सारे बंद करवा दो ताकि वे मुझे अतीत की स्मृति नहीं करा सके।

समय धीमी गति से खिसक रहा था। चुलबुली दीपा भी जैसे अपना बचपना भूल गई थी। तीस साल की अल्हड़ और चंचल दीपा अचानक ही जैसे प्रौढ़ बन गई थी। वह स्वयं भी तो दर्द के दरिये में आकंठ नहाई हुई थी। सास–ससुर, जेठ–जेठानी, देवर आदि से उसने कितना प्रेम पाया था। वीतराग भी नहीं थी और अलगाव का वातावरण भी नहीं था। अतः इन स्थितियों से संवेदनशील उसका मानस प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। अब उसकी सारी उमंगें

तिरोहित हो चुकी थी। परिवार रूपी बगीचे के पौधे मुरझा चुके थे और मात्र एक ही पौधा बचा था और वह भी कुम्हलाता जा रहा था।

गुमसुम दीपा घुटती रहती। होठों पर हास्य तो मानो अतीत की स्मृति भर था। मौत के झोंके ने उमंगों से भरी दीपा की जीवन बदली को बरसने से पूर्व की तहस–नहस कर डाला था। सूनी आँखों से चुपचाप दैनिक कामकाज कर देती थी। उसे अपने आपको संभालना भी कठिन हो रहा था तो मोतीशा को कैसे संभालती?यद्यपि वह मोतीशा की भावहीन आँखें देखकर भयभीत हो जाती थी कि कहीं इनका दिमागी सन्तुलन अस्तव्यस्त न हो जाए। ग़म में अगर यों ही घुलते रहे तो अवश्य ही दिमागी सन्तुलन गड़बड़ा सकता है। आखिर एक दिन उससे रहा नहीं गया। उसने कहा–मैं जानती हूँ घर का कोना–कोना आपको काट रहा है, परन्तु आपका वह रूप इस मासूम बच्चे के भविष्य के साथ कहीं खिलवाड़ न कर लें। कह तो दिया दीपा ने पर आशंका भी थी कि कहीं मोतीशा की पीड़ा और अधिक उबल न पड़े। पर उसे संतोष हुआ जब मोतीशा ने पूर्ण स्वस्थता के साथ दीपा को उत्तर दिया–क्या करूँ दीपा! कुछ करने का मानस ही नहीं बनता! कितना आनंद का स्त्रोत बहता था इसी आंगन में और आज.... । दीपा! ऐसा लगता है–मेरी नसें फट रही है! समझ में नहीं आ रहा है, मैं क्यों शेष रह गया हूँ। क्या

यमराज का कोटा पूरा भर गया है?

दीपा–कितनी शीघ्रता से संस्कारों पर पर्दा डाला है। एक ओर मांजी ने आँखें मूंदी और दूसरी तरफ आपने माँ के सारे संस्कारों की होली जला डाली।

यह सुनते ही मोतीशा उत्तेजित हो उठे। क्या कह रही हो?क्या मैं अपने माँ के संस्कारों की होली जला सकता हूँ?

मृदु मुस्कान से दीपा ने कहा–और नहीं तो क्या?क्या मांजी ने हमें यही सिखाया था कि आपत्ति काल में हम मौत की कामना करें। महावीर के अनुयायी वीर होते है। घटनाओं का सामना बहादुरी से हँसते–हँसते करना चाहिए। महावीर को याद करो! कितने उपसर्ग उनके समक्ष आए पर सभी को मेहमान के रूप में आदर दिया। माँ ने हमेशा सिखाया था कि शुभ–अशुभ कर्मोदय में समता के सिद्धांत को कभी मत भूलना। माँ की मौत होते ही उनके संस्कारों को भी आपने भूला दिया। आपको धैर्य के साथ स्थिति का सामना करना चाहिए।

मोतीशा की आँखें निरंतर बरसती जा रही थी। दीपा की आँखों से भी आँसुओं की लड़ियां बह रही थी। कोने में दुबका मोतीशा का इकलौता चिराग खेमचंद इस स्थिति को समझने का प्रयत्न कर रहा था।

दीपा ने आगे कहा–आपको जीना है पूर्ण उल्लास के साथ क्योंकि आपके आगमन की घटना तो इतिहास में

रेखांकित होनी है। आपको अपनी माँ का सपना पूरा करना है। आराधना द्वारा मानवीय जीवन की प्राप्त शक्तियों को सार्थक करना है। कुल और वंश का नाम रोशन करना है। इस प्रकार की आपकी हताशा से स्वर्ग में रहते परिजनों को कितनी मानसिक पीड़ा होगी?आप उनके चरणों में आँसुओं की श्रद्धांजलि नहीं, सत्कार्यों का अर्घ्य चढ़ावें।

अमीचंद–दीपा! आत्मा की शाश्वत सत्ता में मेरा भी विश्वास है। मैं जानता हूँ कि आत्मा अजन्मा, शाश्वत, अजर और अमर हैं। अपने आपको समझाने का भरसक प्रयत्न भी करता हूँ कि वे स्थूल देह से हमारे बीच नहीं है तो क्या हुआ, संस्कारों से वे मेरे रोम–रोम में समाये हुए हैं, पर उनका वात्सल्य से छलकता व्यवहार मेरे रोम–रोम को तड़पा जाता है। मैं उस वात्सल्य का सिंचन पाने को बेकाबू हो जाता हूँ। उनकी ममतामयी गोद, अंतर से उछलता आशीर्वाद का अमृत....अब कहाँ से प्राप्त करें?

कितना अथाह स्नेह का समंदर मैंने पाया था?कितना तहे दिल से चाहा था सभी ने मुझे?मुझे याद नहीं है कि मेरी सामान्य–सी उदासी को भी उन्होंने टाला हो। बचपन से आज तक मैंने उनसे पाया ही पाया था, मैं उनकी सेवा करके धन्य नहीं बन सका। कैसे जीवन की गाड़ी को संतुलित करूँ स्नेहिल और आत्मीय परिजनों की अनुपस्थिति में?

दीपा–बस करो स्वामी! जितना सोचोगे उतना ही

उलझोगे। आप अब उन्हें स्थूल जगत में खोजने और पाने की अपेक्षा सूक्ष्म भावनात्मक स्तर पर ढूँढिए, इसी में आपकी तप्त आत्मा को संतुष्टि प्राप्त होगी। आप अपने लिए, अपनी भौतिक आकांक्षा की तृप्ति के लिए जीवित न रहें परंतु आप मात्र मांजी के मनोरथ को पूर्ण करने के लिए स्वयं को समर्पित कर दीजिए। अगर आप स्थितियों के साथ संतुलन बैठा देंगे तो निःसंदेह संपूर्ण बाह्याचार व्यवस्थित संपन्न होंगे। हमारी दोनों की उदासीन मनोवृत्ति ने इस मासूम को कितना आत्म केन्द्रित कर दिया है?

दादा–दादी और समस्त परिजनों का लाडला दिनभर कितनी शैतानियाँ करता था?आज प्रतिपल चहकने वाले मासूम को गौर से देखिए–कितना परिवर्तन आ गया है? हर समय यह खोया खोया रहता है। जो जा चुके हैं, उन्हें हम दुबारा नहीं पा सकते पर जो वर्तमान में विद्यमान हैं, उनकी ओर तो ध्यान रखें। इसका क्या अपराध है, जिसकी सजा यह उठा रहा है। अभी से ही अगर यह आत्मकेन्द्रित और उदासीन हो गया तो भविष्य कितना खराब हो जाएगा?हम बड़े हैं। बड़प्पन रखते हुए अपने गम को शांत करें।

मोतीशा को अपनी भूल का भान हुआ। अपने आप में ही वे इतने खो गए थे कि उन्हें खेमचंद की भावनाओं का कुछ ख्याल ही नहीं रहा। उन्होंने फीकी हँसी हँसते हुए दूर कोने में खड़े बेटे को बुलाया।

खेमचंद ने आज लम्बे समय बाद पिता की प्यार से ओतप्रोत आवाज सुनी थी। उसका चेहरा गुलाब की तरह खिल उठा। वह तुरंत दौड़ता आया और पिता की गोद में दुबक गया। मोतीशा की पितृवत्सलता उभर आयी। उन्होंने कसकर अपने बच्चे को सीने से लगा लिया। मोतीशा को लगा–जैसे उनका रोम–रोम वात्सल्य की बरखा से खेमचंद का सिंचन कर रहा है। पिता–पुत्र का वह आनंददायक मिलन दीपा के हृदय में खुशियाँ भर रहा था। मोतीशा को लगा, यह समय योंही रूक जाए और वह अपने बच्चे को यों ही चिपकाएं रहें।

हृदय का भावोल्लास जब कुछ शांत हुआ तो उन्होंने स्नेह से लबालब भरकर कहा–बेटा! चंचल उम्र में इतनी गंभीरता क्यों?क्या अपने पिताजी से नाराज हो, जो कभी निकट नहीं आते?

प्रसन्नता से नौ वर्षीय खेमचंद ने कहा–कैसे आता आपके पास?आपने बातचीत करना ही बंद कर दिया था। फिर अब इस घर में मेरा मन भी तो नहीं लग रहा है। यह घर कितना सूना हो गया है। सारे कहाँ चले गए?कब तक लौट आएंगे?क्या वे नाराज हो गए हैं? आप मुझे उनका स्थान बताओ, मैं उन्हें मना लूंगा। वे मुझे मना नहीं करेंगे। अरे–अरे.....आप तो रोने लग गए। क्षमा कर दो न, अब कभी ऐसी बातें नहीं करूँगा। आपको दादा–दादी की याद आ

रही है न?

मोतीशा क्या जवाब देते?उन्होंने उत्तरीय से अपने आँसू पोंछे और कहा–बेटा! वे नाराज नहीं हुए हैं। वे कुछ समय के लिए नए मकान में रहने गए हैं। कुछ समय बाद वे आ जाएंगे। जहाँ वे गए हैं न, वह इससे खूब शानदार है। जब तुम बड़े हो जाओगे न, तब स्वतः ही सब कुछ समझ जाओगे। अभी तो पढ़ाई के दिन हैं। खूब मन लगाकर पढ़ाई करो।

बच्चा ही तो था वह। बहल गया। उसने आनंद से किलकारी मारते हुए कहा–मेरे सभी दोस्त कहते हैं, वे मर गए हैं। अब मैं उन्हें बताऊंगा कि वे मरे नहीं हैं अपितु नए संसार में रहने गये हैं। मोतीशा ने पुत्र की ललाट पर एक गहरा चुंबन अंकित किया और उसे विद्यालय जाने के लिए निर्देश दिया।

मोतीशा ने व्यवहारिक अपेक्षा से धीरे–धीरे स्वयं को संभाल लिया। दीपा के समर्पण, बेटे के भविष्य एवं परमात्मा की वाणी ने उन्हें संयत होने में खूब सहयोग दिया। विवेक चक्षुओं पर कब तक अज्ञान का परदा रहता। उसे दुम दबाकर भागना पड़ा। मोतीशा ने अब अपना संपूर्ण ध्यान व्यापार फैलाने में लगा दिया। सरल और पुण्यात्मा वे थे ही, भावनाओं के भंवरजाल में उलझी उनकी किश्ती धीरे–धीरे सफलता की मंजिल की ओर बढ़ने लगी।

मोतीशा के हृदय में अनेकों सपने थे। उन सपनों की पूर्ति में समृद्धि, भावना और पुरुषार्थ तीनों का संगम आवश्यक था। मोतीशा की महत्वाकांक्षाएं असाधारण थी और उनकी संपूर्ति में पुरुषार्थ की प्रचंड आवश्यकता थी। उन्होंने व्यापार की दिशा बदलने से पूर्व अत्यंत आत्मीय और पारिवारिक सर होरमसी से विचार विमर्श किया। सर ने अपना संपूर्ण सहयोग देने का वचन दिया।

उन्होंने दलाली का कार्य छोड़कर जहाजों द्वारा देशी वस्तुओं के निर्यात और विदेशी वस्तुओं के आयात का कार्य प्रारंभ कर दिया। उस समय समुद्री यात्रा खतरनाक मानी जाती थी। यद्यपि समुद्रीयात्रा समृद्धि की दृष्टि से लाभदायक थी परंतु सिर पर कफन बांधने वाला ही समुद्र यात्रा का साहस करता था। जितनी खतरनाक थी, उतनी ही महत्वपूर्ण भी। जो भी साहसी समुद्रीयात्रा करके लौटता था, वह स्वयं तो अपने आपको भाग्यशाली समझता ही था, परंतु उसके पारिवारिक सदस्य भी उसके इस साहस पर गौरव की अनुभूति करते थे। जब कोई समुद्री यात्रा के लिए प्रस्थान करता था तो वह जब तक वापस नहीं लौटता, उसकी जान सांसत में ही रहती थी। वह सानंद लौटता तो परिवार के सदस्य पुनर्जन्म जैसा उत्सव मनाते थे। अपने देश में उपलब्ध सामग्री से भरकर जहाजें विदेश में जाती थी एवं विदेशों में प्राप्त सामग्री से भरकर जहाजें देश में लौट

आती थी। इस प्रकार के एक चक्कर में लाखों की संपदा प्राप्त हो जाती थी।

जहाजों का निर्माण भारत में होता था पर भारत निर्मित वे जहाजें दुनिया के प्रत्येक देश में जाने में सक्षम थी। जहाजें दो प्रकार की होती थी, छोटी एवं बड़ी। बड़े जहाज में लगभग पन्द्रह सौ टन वजन ढोने की क्षमता रहती थी। वे जहाजें महीनों तक समुद्र की छाती पर चलती थीं, अतः खाने–पीने की सारी सामग्री जहाजों में ही भर दी जाती थी।

यद्यपि मोतीशा के इतिवृत्त के अनुसार उन्होंने स्वयं विदेश यात्रा नहीं की परंतु उनके चीन और पीनांग के साथ गाढ़ व्यापारिक संबंध थे। संबंधों की दृढ़ता का मुख्य कारण मोतीशा का गरिमापूर्ण व्यवहार था। वे संपन्न होते हुए भी भावनात्मक अपेक्षा से सरल थे। हृदय नवनीत सा कोमल था। नम्रता, सरलता, कार्यदक्षता, कृतज्ञता और माधुर्य उनमें कूट–कूटकर भरा था।

सर के प्रति तो उनके हृदय में इतनी गहन आत्मीयता थी कि उन्होंने अपने स्वामित्व की एक जहाज भी उनके नाम से जोड़ दी थी। उनका पारिवारिक संबंध अंतिम समय तक भी बना रहा। वे सर को अपने पिता का सम्मान ही प्रदान करते थे। अपनी उपस्थिति में सर को पानी भी स्वयं के हाथों से पिलाते थे। बहुधा होरमसी उनसे मजाक करते थे कि तुम्हारा कौनसा रूप वास्तविक हैं?तुम बेटे की तरह सेवा

करते हो तो मित्र बनकर विचार–विमर्श भी करते हो। मेरा व्यवहार उचित न लगे तो रौब से इन्कार भी कर देते हो।

समझ में नहीं आता कि कौनसे पुण्य से तुम जैसा योग्य प्यारा मानसपुत्र मैंने पाया है?सच तो यह है कि मुझे तुम पर अपने से भी अधिक विश्वास है। वर्षों से तुम मेरे साथ हो पर मेरे विश्वास को तुमने कभी खंडित नही किया। लगता है तुम्हारा मेरा यह संबंध जन्मांतरों का है।

तुम हिंदू, मैं पारसी परंतु कभी यह भिन्नता हमारे संबंधों में बाधक नहीं बनी। जैसा मैंने चाहा, तुम उसी सांचे में अपने आपको ढालते चले गए। मेरे एक इंगित पर तुमने अपना निर्णय बदला है। जो कुर्बानी और जो सेवा परायणता तुम्हारे अंदर तरंगित हो रही हैं, निःसंदेह दुर्लभ है। तुम्हें पाकर मैं सौभाग्यशाली हूँ। तुम नाम के ही नहीं, गुणों के भी मोती हो। तुम्हारा संयोग मेरे जीवन की माधुर्य रसभरी अनुपम कविता है। तुमने मुझे प्रत्येक क्षेत्र में पूरा–पूरा सहयोग दिया है। तुम मेरे बेटे नहीं हो पर बेटे से भी बढ़कर हो। कहते–कहते सर भावावेश से हाँफने लगे।

मोतीशा ने अत्यंत विनम्रता से कहा–सर कोई भूल हो गई है क्या?बड़े बुजुर्ग के द्वारा बच्चे के मुँह पर प्रशंसा करने का अर्थ है–या तो उसकी विकास यात्रा को वहीं पूर्णविराम देना और या उसकी नालायकी को प्रकट करना। अगर भूल हुई हो तो दो चपत लगा दें, प्रसन्नता बढ़ जाएगी। आज तक

आपसे सब कुछ पाया है पर यह गौरव नहीं पायां। अगर आप मुझे अपना बेटा ही समझते हैं तो इस प्रसाद से वंचित क्यों रखते हैं?

सर मोतीशा की बातें सुनकर हँसने लगे। मोतीशा ने कहा–सर भाग्यशाली तो मैं हूँ, जिन्हें आप देव पुरुष का सान्निध्य मिला। हमारे आंगन की सारी खुशियां आपकी ही बदौलत है। आज हम जो भी है , उसमें आपका ही योगदान है। आपने अपने हृदय की जो गहराई प्रकट की है, वह वर्तमान के इस संवेदनाशून्य समाज में किसे प्राप्त होगी?आपने पितृछाया से वंचित हमारे सिर पर अपना हाथ ही नहीं रखा अपितु अंगुली थामकर आर्थिक विकास की सीढ़ियाँ भी चढ़ाई। हमारे सूखे और नीरस जीवन बाग को अपने स्नेह का अमृत दिया। आपके चरणों में हम अपना सर्वस्व समर्पित कर दें तो भी शायद कम होगा।

मोतीशा और सर का अनुबंध हृदय का अनुबंध था और इसी कारण व्यावहारिक, सामाजिक और धार्मिक–सभी क्षेत्रों में मोतीशा सर्वप्रथम सर से ही पूछते और उनकी आज्ञानुसार ही आगे बढ़ते थे।

लक्ष्मी मोतीशा के पास उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। जहाँ भी हाथ डालते, सोना निकलता। व्यापार में आशातीत लाभ उन्हें प्राप्त हो रहा था। मोतीशा लक्ष्मीदास की अपेक्षा लक्ष्मीपति बनना चाहते थे। वे जानते थे–संपत्ति की तीन गतियाँ हैं– भोग, दान, विनाश। सर्वोत्तम क्रिया है–धार्मिक और सामाजिक क्रियाओं में संपत्ति का उपयोग। सामान्य उपयोग हैं–स्वयं के आराम और सुविधाओं में उसे खर्च करना। अगर दोनों संभव न हो तो फिर उसकी अंतिम गति है विनाश।

मोतीशा स्वयं के लिए संपत्ति का उपयोग करने की अपेक्षा परहित में, राष्ट्रहित में उसका उपयोग करना चाहते थे। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि जैसे पानी जहाज में भर जाने पर दोनों हाथों से बाहर फेंकते रहते हैं, वैसे ही सुज्ञजन आंगन में जब लक्ष्मी बढ़ने लगे तो दोनों हाथों से उसका दान करते रहते हैं। दान के अभाव में तिजोरी में बंद लक्ष्मी कब चुपके से खिसक जाए–पता ही नहीं चलता क्योंकि वह आने का रास्ता जानती हैं तो विदायी मार्ग खोजने में भी उसे समय नहीं लगता।

उन्होंने भींडी बाजार के किनारे पटेल रोड (इब्राहीम रहीम तुल्लारोड़) पर श्री शांतिनाथजी का मंदिर बनाया। इस मंदिर की प्रतिष्ठा वि.सं. 1876 माघ शुक्ला त्रयोदशी के

दिन अपने हाथों से संपन्न करवायी।

मोतीशा के पितृव्य (चचेरे बंधु) श्री भाईदास ने पायधुनी पर श्री गोडीजी पार्श्वनाथ के मंदिर का निर्माण कराया। मोतीशा को गोडी पार्श्वनाथ पर अपार श्रद्धा और निष्ठा थी। उन्होंने अपनी वसीयत में भी सर्वप्रथम उल्लेख गोडी पार्श्वनाथ का ही किया है। इससे एवं मंदिर और उपाश्रय के दस्तावेजों से अनुमान लगाया जाता है कि इस मंदिर के निर्माण में भी मोतीशा ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

मोतीशा का हृदय, उनके हृदय की समस्त संवेदनाएँ अब एकमात्र परमात्मा के चरणों में समर्पित हो गई थी। उनका अधिकांश समय अब परमात्मा के चरणों में ही व्यतीत हो रहा था। उनके अरमान, उनकी आशाएं एकमात्र परमात्मा की भक्ति में केन्द्रित हो गयी थी। परमात्मा के चरणों का जब जब भी वे आस्वादन करते, उन्हें यही लगता था कि जैसे उनके जीवन का संताप घुलता जा रहा है। परमात्म बिम्ब देखकर उन्हें ऐसा लगता कि उपशम रस झरती इस प्रभु प्रतिमा से साक्षात स्व में झाँकने का निमंत्रण मिल रहा है।

यह परमात्मबिम्ब उन्हें संबोधित कर रहा है कि विभाव दशा में, विपरीत परिणामों में तुम खूब भटके, अब तो तुम स्वयं के घर में प्रवेश करो। इन्हीं भावों को आनंदघनजी ने *कितना सटीक प्रस्तुत किया हैं–*

निशदिन जोऊं तारी वाटडी, घरे आवो नी ढोला।
मुझ सरिखा तुझ लाख छे, मारे तू ही अमोला।''

समता प्रतिदिन पलकें बिछाकर आत्मदेव को निमंत्रित कर रही है कि तुम अपने घर लौट आओ। मैं तुम्हारा पल–पल इंतजार कर रही हूँ। मेरी मान्यता है कि मुझ जैसी तुम्हारे पास अनेकों नारियाँ मौजूद हैं जैसे ईर्ष्या, ममता, अभीप्सा, तृष्णा, घृणा, रागदशा आदि पर मैं कहाँ जाऊं क्योंकि मेरे लिए तो तुम एक ही हो।

संध्या के समय मोतीशा इन्हीं विचारों में खोए खोए थे कि लगभग रात्रि के अंतिम प्रहर में अकल्पित, अचरजभरी और असंभव घटना घटी।

'सेठ! जाग रहे हो या सो रहे हो?' जब दो तीन बार यही ध्वनि मोतीशा के कानों से टकरायी तो मोतीशा को विश्वास हो गया कि यह उनका भ्रम नहीं, सत्य है। वे अचकचा कर उठ खड़े हुए। सामने देखा–आँखों को चुंधियाने वाला अत्यंत स्वरूपवान कोई देव खड़ा है।

मोतीशा तो अचरज से भर गए। अभी उन्होंने न किसी देव विशेष की आराधना की हैं और न किसी का स्मरण। स्मरण के अभाव में देवदर्शन का क्या तुक हो सकता है?महान आराधना के बावजूद भी देवदर्शन दुर्लभ हैं, फिर यह अकल्पित घटना कैसे घटी?उन्होंने स्वप्न है अथवा सत्य, इसकी प्रतीति के लिए स्वयं के हाथ पर हल्के से चिकोटी भरी तो उनकी स्वप्न की आशंका भी निराधार हो

गई।

अत्यंत विनम्रता से हाथ जोड़कर उन्होंने कहा—देव! इस कृपावृष्टि से तन मन कृतार्थ बन गया है। अत्यंत आभारी हूँ कि आपने दर्शन देकर मुझ अकिंचन को सौभाग्यशाली बनाया है।

देव मोतीशा की विनम्र और शालीन वाणी सुनकर गद्‌गद् हो गया। उसने मुस्काते हुए कहा—निश्चित ही तुम सर्वगुणसम्पन्न नरश्रेष्ठ हो। देव गुरु धर्म की कृपा तुम्हारे जीवनबाग को पूर्णता से महका रही है। तुम्हारा जीवन इतिहास की अविस्मरणीय घटना के रूप में अनेकों का आदर्श बनेगा। तुम सरल, संपन्न, कोमल, भावुक, क्षमावीर और औदार्य से परिपूर्ण हो। तुम्हारी जीवन यात्रा स्वर्णाक्षरों से अंकित होगी। अब शायद तुम्हारे चेहरे पर मेरा परिचय प्राप्त करने की जिज्ञासा उभर रही है।

मोतीशा—हाँ देव! वैसे सामान्य परिचय तो मुझे प्राप्त हो ही गया हैं। आपके ताज पर अंकित ऋषभदेव की प्रतिमा से। अगर मेरा अनुमान सत्य हैं तो आप प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के अधिष्ठायक हैं।

देव खुलकर मुस्काया। आनंदातिरेक से कहा—कहना पड़ेगा कि तुम चतुर और दक्ष भी हो। तुम्हारा अनुमान सत्य है। मैं अहमदाबाद में विराजमान ऋषभदेव प्रभु का सेवक ही हूँ। अभी इधर से गुजर रहा था तो मुझे भायखला का वातावरण अत्यंत आकर्षक लगा। चारों ओर बड़े—बड़े पेड़

जैसे वहाँ रूकने और चित्त समाधि प्राप्त करने का आमंत्रण देते हैं। अनेकों फूलों की महक आनंद के झूले में झूलने को मजबूर करती है। मैंने अपने ज्ञान द्वारा पता लगाया कि यहाँ भायखला में तुमने विशाल भूखंड खरीदा है।

मोतीशा देव के कथन का कोई अर्थ नहीं समझ पा रहे थे। उन्होंने स्वीकृति देते हुए कहा–हाँ देव!

सस्मित देव ने कहा–तुम्हें अचरज होगा यह जानकर कि आज मैं तुम्हें कुछ देने की अपेक्षा लेने आया हूँ। वह खरीदी गई भूमि अत्यंत रमणीय और पावन हैं। मैं अपने आराध्य प्रभु के साथ उसी भूमि पर अपना आवास बनाना चाहता हूँ।

मोतीशा तो जैसे उछल पड़े। आनंद और उल्लास से उनका रोम–रोम नृत्य कर उठा। मेरे स्थान का उपयोग प्रभु के लिए हो रहा है। क्या मैं इतना भाग्यशाली हूँ कि मेरे स्थान की याचना करूणावतार परमात्मा का अधिष्ठायक स्वयं करें। देव ने अपनी इच्छापूर्ति का माध्यम मुझे बनाया। मेरी जमीन भी सार्थक हैं क्योंकि वह देवाधिदेव परमात्मा की भक्ति में उपयोगी बनेगी। मेरा जीवन, मेरी शक्तियाँ सब कुछ तो अर्थवान हैं कि उन्हें परमात्मा की भक्ति में लगने का अनुपम अवसर प्राप्त हो रहा है।

उन्होंने पूर्ण धन्यता की प्रतिध्वनि करते हुए कहा–देव! लगता है, आज मेरे आंगन में अयाचित कल्पतरू उग आया है। मुझ तुच्छ और अकिंचन को आपने ऐसा

ऐतिहासिक सुनहरा अवसर प्रदान किया है, इसके लिए आभार शब्द का औपचारिक प्रयोग करके आपकी कृपा का मूल्यांकन नहीं करना चाहता। यह मेरे जीवन की अमृतमयी घडी हैं। आप श्री के आदेशानुसार पूर्ण प्रयत्न करूँगा कि इस स्थान पर परमात्मा का भव्य और ऐतिहासिक प्रासाद बने।

यक्ष की मनोकामना पूरी हुई। उन्होंने पुलकित होकर आशीर्वाद दिया और स्वस्थान की तरफ लौट चले।

अब नींद किसे आ सकती थी?आनंद से उनका हृदय तरंगित हो रहा था। रोम–रोम जैसे देवादेश की पूर्ति हेतु समर्पित हो गया था। वे बड़ी बेकरारी से सूर्योदय का इंतजार करने लगे।

अनुपम भाग्य लेकर आये थे मोतीशा! जिस घटना की कल्पना वे स्वप्न में भी नहीं कर सकते थे, वही घटना उनके जीवन में सहज ही घट गई थी। देवदर्शन और वह भी परमात्मा के प्रतिबिम्ब का युगों–युगों तक अगणित जन संकुल द्वारा दर्शन के उद्देश्य से आदेश... यह एक अनहोनी घटना थी। परंतु यह भी उनके भाग्योदय का ही परिणाम था कि मूर्त्त बनी। यह पुण्य भी उनका अपना उपार्जित था। पूर्व संचित तो था ही इस जन्म में आकर उन्होंने इस पुण्य के उपार्जन में और अधिक वृद्धि की थी।

लक्ष्मी या सम्पन्नता प्राप्त करना इतना मूल्यवान नहीं है, जितना उसे प्राप्त करके विनियोजन की व्यवस्था करना।

मोतीशा से भी अधिक समृद्धि के स्वामी बम्बई में निवास करते थे परंतु इतिहास में वे ही नामांकित होते हैं, जिनकी शक्तियाँ और चिंतन राष्ट्रहित और संस्कृति के संरक्षण में उपयोगी बनती है। मानव समृद्धि को तिजोरी में बंद करके रखें, इससे वह अमर नहीं होता परंतु उसकी अमरता उस प्राप्त वैभव का मुक्तहस्त से आवश्यकतानुसार दान देने में है।

मोतीशा के हृदय में कल्पनाओं की तरंगें नृत्य करने लगी। मंदिर का स्वरूप भव्य और कलात्मक तो होना ही चाहिए, साथ ही उसमें ऐतिहासिक पालीताणा तीर्थ का आंशिक स्वरूप भी निखरना चाहिए।

प्रातःकालीन आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त होकर उन्होंने अपने पारिवारिक मित्रतुल्य शिल्पकार श्री रामजीभाई को आमंत्रित किया। रामजीभाई अब मात्र शिल्पी के रूप में ही उनके निकट नहीं थे अपितु उनके संबंधों में एक गहरी आत्मीयता का पुट रहता था। मोतीशा के निर्माण संबंधी समस्त कार्यों में रामजीभाई का ही मार्गदर्शन रहता था।

रामजीभाई तो अभी शय्या त्याग करके उठे ही थे। उन्होंने तो जैसे ही मोतीशा की पुकार सुनी, तुरंत कह दिया, जरूर सेठजी को मंदिर निर्माण की ललक जगी है। कैसा पुण्यवान हैं, जो इतने मंदिर बनाने के बाद भी तृप्त नहीं हो रहा है। ऐसे नररत्न कहाँ मिलते हैं, जो आत्मशांति और

आत्म आराधना में नित नए सर्जन की ओर गतिशील रहते हैं।

मानव भौतिक विकास में अवश्य नए–नए सपने संजोता है पर आत्मविकास में एकाध उपक्रम करके ही तृप्त हो जाता है जबकि मोतीशा के समस्त उपक्रम इसके विपरीत हैं।

रामजीभाई तैयार होकर तुरंत मोतीशा द्वारा भेजे वाहन में बैठकर मोतीशा की हवेली पहुँच गए। मोतीशा तो बैठक में उनका इंतजार ही कर रहे थे। दोनों की आँखें मिली। आँखों में स्नेह का सागर था, तो होठों पर मृदु मुस्कान! मोतीशा ने खड़े होकर रामजी भाई का अभिवादन किया और रामजी भाई मोतीशा के इस व्यवहार से जमीन में गड़ से गए।

रामजीभाई–आपका आमंत्रण पाकर अनुमान लगा सकता हूँ कि किसी कार्ययोजना को प्रारंभ करना है। फरमाइए ! कहाँ क्या करना हैं?

मोतीशा–लगता है तुमको और मुझको एक ही साथ सपना आता है या तुम मेरे इतने अधिक निकट पहुँच गए हो कि बिना कहे ही मेरी मानसिकता समझ जाते हो। फिर भी तुम सारी बातचीत समझ लो और उसी अनुरूप मुझे अतिशीघ्र नक्शा तैयार करके दो।

मोतीशा ने अपनी कल्पना का ढांचा रामजी भाई के सामने रख दिया। रामजीभाई ने नक्शा समझने से पूर्व

जमीन देखने की भावना प्रकट की। रामजीभाई को लेकर मोतीशा उस स्थान पर पहुँचे जहाँ निर्माण कराना चाहते थे। विस्तृत भूभाग देखकर रामजीभाई अत्यंत प्रसन्न हुए। मोतीशा ने कहा–भायखला मंदिर सिद्धाचल (पालीताणा) की मुख्य टूंक जैसा बनना चाहिए। मुझे अतिशीघ्र नक्शा तैयार करके दिखाओ। अन्य कार्य व्यस्तता का त्यागकर तुम्हें मात्र इसी कार्य में लग जाना चाहिए।

कुशल शिल्पकार रामजी भाई ने मोतीशा की भावना को समग्रता से समझ लिया और आशा से भी अधिक त्वरित गति से अपना कार्य संपन्न कर लिया। मोतीशा नक्शा देखकर प्रसन्नता से भर गए। उन्होंने रामजी भाई को सीने से लगाते हुए कहा–तुम्हारा दिमाग जादू का पिटारा है। तुम्हारे हाथों में अद्भुत कौशल हैं। वास्तव में तुम मेरे अद्भुत मित्र रत्न हो। तुम्हारे अभाव में मेरी मनोकामना निसंदेह कोई भी पूरी नहीं कर सकता। तुम्हारा जन्म शायद मुझे सहयोग देने के लिए ही हुआ है। मेरी अमूर्त कल्पनाओं को तुम्हारी अंगुलियां और तेजस्वी प्रतिभा ही साकार कर सकती है।

तुरंत उस नक्शे का मोतीशा ने अनुमोदन कर दिया। रामजीभाई शिल्पशास्त्र के अतिरिक्त ज्योतिष और मुहूर्तशास्त्र के भी अच्छे पंडित थे। उन्होंने उसी समय ज्योतिष के आधार पर गणना करके मुहूर्त निकाल दिया। अत्यंत उल्लास और रमणीय माहौल में मंदिर का खातमुहूर्त और शिलान्यास मोतीशा ने अपनी धर्मपत्नी सौभाग्यवती

दीपादेवी के सहयोग से हजारों की जनता के बीच संपन्न किया। रामजीभाई वैसे भी मोतीशा की रग–रग से परिचित थे। उनकी उदारता किसी सम्राट से कम नहीं थी फिर भी मोतीशा ने सावधानी की दृष्टि से कह दिया–पूर्ण क्षमता से भव्यतम, देवविमान को भी चुनौती दे ऐसा मंदिर तैयार करना है। खर्च के लिए किसी प्रकार का तनाव मत रखना। हजारों लाखों और उससे भी अधिक खर्चे की चिन्ता किए बिना बस कार्ययोजना को अतिशीघ्र संपन्न करना है। इस भव्य जिनालय के साथ मेरा सपना और देवादेश दोनों जुड़ गये हैं।

निर्माण का कार्य युद्धस्तर पर प्रारंभ हो गया। इस टूंक के निर्माण के लिए अनेक कुशल शिल्पियों को एवं दक्ष कारीगरों को निमंत्रित किया गया। शिल्पकार एवं कारीगर दक्षता एवं भव्यता के साथ इसमें सेठ मोतीशा की भावना के अनुरूप पालीताणा की मुख्य टूंक की प्रतिकृति को आकार देने में अप्रमत्त होकर जुट गए।

सेठजी की दिनचर्या आराधना से प्रारंभ होती थी। प्रातः उठते ही वे सामायिक आदि से निवृत्त होकर धान्य से एक कटोरा भरकर उसमें एक रुपया डालकर पैदल ही निकल पड़ते थे। जो भी राह में मिलता, उसे वह रुपया सहित धान्य दे देते। यह उनका गुप्तदान होता था। उसके पश्चात् वे गोडीजी मंदिर दर्शनार्थ जाते थे। वहाँ पूजन आदि से निवृत्त होकर अगर कोई यति या मुनि भगवंत विराजमान होते तो उनके दर्शन और व्याख्यान का अवश्य श्रवण करते। व्याख्यान आदि से निवृत्त होकर घर पर नाश्ता आदि करके जहाँ–जहाँ उनके मंदिर के निर्माण कार्य चलते थे, वहाँ निरीक्षण के लिए जाते थे।

भायखला मंदिर के निर्माण की गति आश्चर्यजनक थी। इसकी गतिशीलता में आर्थिक उदारता का तो महत्व था ही पर उससे अधिक सेठजी की आत्मीयता का भीगापन था। निर्माण कार्य में जुटे समस्त कारीगरों के प्रति सेठजी के हृदय में पूर्ण स्नेह और अपनत्व था। उनमें वैसे भी ऊँच–नीच की भावना कभी नहीं पनपी थी। वे इन्सान–इन्सान को समान स्तर पर मानते थे। जाति और सत्ता के आधार पर खड़ी भेद की दीवारों को विकास में बाधक तत्व के रूप में ही स्वीकार करते थे। ये समस्त भेद तो सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत आरोपित भेद हैं।

भायखला मंदिर के निर्माण की गति ज्यों–ज्यों विकसित होती गई, मोतीशा के सपने उसी स्तर से पंख फैलाने लगे। मोतीशा की आकांक्षा के अनुसार इस मंदिर को सिद्धाचल की मुख्य टूंक की आकृति देने में भी शिल्पकारों को सफलता मिल गयी थी। भायखला मंदिर में पुण्डरीक गणधर की स्थापना, रायणपादुका, सूरजकुण्ड, गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी देवी आदि के लिए भव्य आले आदि का निर्माण कराया। भायखला मंदिर के साथ–साथ दादा गुरुदेव की भव्य एवं विशाल दादावाड़ी का निर्माण भी करवाया।

जहाँ आराधना और साधना के लिए मोतीशा ने मंदिर एंव दादावाड़ी का निर्माण करवाया, वहीं स्वस्थ मनोरंजन और पवित्र आकर्षण के लिए सुन्दर और अनेकानेक रंगबिरंगे फूलों से महकता उपवन भी तैयार करवाया। सूरजकुण्ड के जल से बगीचे में लगे फूलों को सिंचन प्राप्त होता था। यह बगीचा मंदिर के बाहरी भाग में बनाया गया था।

बगीचे में लगे अगणित खिलते एवं महकते फूल मोतीशा के हृदय की कोमलता और भावुकता के प्रतीक थे। मोतीशा राग और वैराग्य के मध्य की स्थिति में विचरण करने वाली संवेदनशील आत्मा थे। ये ताजे महकते फूल मोतीशा के आध्यात्मिक संस्कारों के मध्य भी सांसारिक और भौतिक

आकर्षण के प्रतीक थे। भायखला का मंदिर, भव्य और विशाल दादावाड़ी, मनमोहक और आकर्षक बगीचा उनकी अटूट धर्मश्रद्धा और जीवन शैली का नमूना था। संवेदना और प्रेमरस से परिपूर्ण होने पर भी उनकी आत्मा आध्यात्मिक स्थानों को भी कलात्मकता प्रदान कर भौतिकता में भी जहाँ आध्यात्मिक भावों को उभारती थी, वहीं अध्यात्म उसे आकर्षक बनाने का अवसर तलाशते थे।

भायखला के इस मंदिर निर्माण में 70 देहरियाँ बनाई गई। जितनी देहरियाँ उतनी ही प्रतिमाएं भी तैयार करवायी।

भायखला के इस मंदिर से उनकी इतनी गहरी रूचि जुड़ गयी थी कि उन्होंने अपना नया भव्य बंगला इसके समीप तैयार करवा दिया।

परम आस्था और अटूट समर्पण तो था ही, पर उसके साथ ही उनमें परमात्मा के प्रति गहरा रागभाव भी था।

श्रीमद् देवचन्द्र परमात्म स्तवना में परमात्मा से प्रेम स्थापित करने का उपाय पूछते हैं–

ऋषभ जिणंदसुं प्रीतड़ी,
किम किजे ही कहो चतुर विचार।
प्रभुजी जई अलगा वस्या,
तिहाँ किणे नवि हो कोई वचन उचार।।

परमात्मा से तादात्म्य जुड़े.....प्रभु के साथ हमारे हृदय की तंत्रियां बजे, यह हमारी आकांक्षा है परंतु कैसे जुड़े

परमात्मा से प्रीति क्योंकि उनका निवास तो हमारे निवास से अत्यंत दूर हैं। ऐसे स्थान पर वे विराजमान हैं, जहाँ संवाद स्थापित नहीं होता।

उन्हें समाधान अपने अंतर से ही प्राप्त हो जाता है–

"प्रीति अनंती परथकी, जे तोडे हो ते जोड़े एह"

संसार के प्रति और संसार के पदार्थों के प्रति हमारा जो रागभाव हैं, जो अपनत्व का भाव हैं, वह टूट जाए तो परमात्मा से हमारा प्रेम संबंध स्थापित हो सकता है। अगर संसार और कषायों से हमारा नाता नहीं टूटता हैं, तो परमात्मा से प्रेम स्थापित करने की कामना कभी पूरी नहीं हो सकती।

इतिहास में अंकित उनके चरित्र को पढ़कर हम यह नहीं कह सकते कि वे संसार से पूर्ण निवृत्त हो चुके थे परंतु यह स्वीकार करने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उनमें परमात्मा के प्रति भी गहरा श्रद्धा भाव था। वे प्रार्थना के स्वरों में कहते थे।

"केवल करूणामूर्ति छो, दीनबंधु दीनानाथ।
पापी परम अनाथ छुं, ग्रहो प्रभु मुझ हाथ"

"श्रीमद् राजचंद्र"

उनके रोम–रोम में अपने तारक और अंतिम लक्ष्य परमात्मा के चरणों में गहरा समर्पण था। दर्शन और दृश्य के प्रति तादात्म्यता, इन दोनों में गहरा अंतर है। मोतीशा के

अटूट समर्पण और अपूर्व प्रेम का ही यह परिणाम था कि अपने पूर्वजों के बनाए भवन के बावजूद भी उन्होंने अपना नया आवासस्थान मंदिर के सन्मुख बनवाया। उनकी यह प्रवृत्ति इस कथन की प्रतीक है कि–

उत्तमसंगे रे उत्तमता वधे, सधे आनंद अंनंतोजी।

"देवचंद्र"

देव गुरु धर्म का अधिकाधिक सान्निध्य निःसंदेह मानवमन के सांसारिक आकर्षण और आसक्ति के बंधनों को तोड़ने में अत्यंत सक्षम माध्यम है। उत्तम मानव की संगति पतन की खाइयों में गिर रहे मानव के कदमों को अवश्य ही उत्थान की दिशा में अग्रसर करती है। उत्थान की दिशा में गतिशील चेतना को जिस अनहद आनंद की उपलब्धि होती है, वह मात्र अनुभूतिगम्य ही हो सकती है।

इधर मंदिर निर्माण की गति आश्चर्यजनक थी, उधर अहमदाबाद में विराजमान ऋषभदेव प्रभु का बम्बई में प्रवेश कराना था। मोतीशा को तो जैसे धुन लग गयी थी कि अतिशीघ्र प्रभु का सान्निध्य प्राप्त हो। वे मुहूर्त प्राप्त करने के लिए गच्छनायक अपने गुरुदेव के रूप में स्वीकृत खरतरगच्छीय श्री जिन महेन्द्र सूरि के पास पहुँचे। महेन्द्र सूरि शासन प्रभावक, संघ समर्पित मोतीशा को अचानक देखकर आश्चर्य के साथ प्रसन्नता से भर गए।

मोतीशा ने समयोचित संवाद के तुरंत बाद भायखला

मंदिर निर्माण की संपूर्ण घटना से गुरुदेव को अवगत कराया। आचार्य भगवंत अपने भाग्यशाली भक्तप्रवर की इस देवादेश की घटना से अत्यंत प्रभावित हुए। उन्हें लगा कि इस पंचमकाल में भी कोई कार्य असंभव नहीं है। आवश्यकता है एकनिष्ठा की! जरूरत है श्रद्धा और आस्था से संपन्न होने की! शासन भक्त और गच्छगौरव मोतीशा की भक्ति भावना से गुरुदेव पूर्व में भी परिचित थे परंतु भायखला की इस घटना ने तो मोतीशा की प्रभुभक्ति पर एक प्रकार से मोहर लगा दी।

सचमुच मोतीशा की शक्ति और संपत्ति दोनों ही सार्थक थी क्योंकि उसका उपयोग इतिहास के निर्माण में तो हुआ ही पर लाखों लोगो को आत्मकल्याण और आत्मसाधना का एक माध्यम भी प्राप्त हो गया। अधिकार और लक्ष्मी का प्राप्त होना ही शुभकर्म का प्रतीक नहीं अपितु उसका उपयोग किस दिशा में हो रहा है, यह भी चिंतन का ज्वलंत मुद्दा है। श्रीमद् राजचंद्र के शब्दों में–

"लक्ष्मी अने अधिकार वधता, शु वध्युं ते तो कहो।
शुं कुटुंब के परिवारथी, वधवापणुं ए नय ग्रहो।।
वधवापणुं संसारनुं, नरदेहने हारी जवो।
एनो विचार नहीं अहो! हो! एक पल तमने हवो।।

क्या लक्ष्मी और सत्ता को प्राप्त करना ही हमारे सार्थक जीवन का प्रतीक है? अथवा परिवार और परिचितों का

जमघट अपने आसपास बढ़ाना ही हमारी क्षमता का असली मूल्यांकन है। यह संपूर्ण विस्तार आत्मसाधक श्रीमद् राजचंद्र के दृष्टिकोण से एवं अन्यान्य सभी महापुरुषों की नजरों में मात्र मानवजीवन की पराजय का ही प्रतीक है। क्या हमने विस्तार की वास्तविक परिभाषा पर कभी विश्लेषण प्रस्तुत किया है?

चारों ओर बहती हवा के थपेड़ों ने मोतीशा की इस रोमांचक निर्माण की कहानी को प्रसारित कर दिया। अब तो अगणित निगाहें उस दिन का इंतजार करने लगी, जब विधिवत् प्रभुवर जिनालय में प्रतिष्ठित होने वाले थे।

आचार्य श्री ने मुख्य बिंब के प्रवेश हेतु श्रावण शुक्ल द्वितीया वि.सं. 1884 का मुहूर्त्त प्रदान किया एवं प्रतिष्ठा हेतु वि.सं. 1885 मि.शु. छट्ठ का मुहूर्त्त प्रदान किया। मुहूर्त प्राप्त होते ही मोतीशा का हृदय बल्लियों उछलने लगा। उनके हृदय आंगन में प्रसन्नता की कोंपले फूटने लगी। उन्हें प्रत्येक कदम पर यह अहसास होता था कि इस समस्त निर्माण और निर्माण के साथ जुड़ी समस्त घटनाओं में देव, गुरु और धर्म का आशीर्वाद तो हैं ही, पर पर्दे से गोमुख यक्ष का भी उन्हें पूर्ण सहयोग प्राप्त हो रहा है। मुहूर्त ग्रहण करने के साथ ही मोतीशा ने आचार्य भगवंत से प्रतिष्ठा समारोह की निश्रा प्रदान करने हेतु अधिकार भरा निवेदन किया। स्मित का अमृत बिखेरते आचार्य भगवंत ने भी "वर्तमान

योग'' के शब्दों द्वारा साधु मर्यादा में स्वीकृति प्रदान कर दी।

समस्त कार्य मोतीशा के पुण्य प्रभाव एवं देवी कृपा से सानंद संपन्न हो रहे थे। कल्पनाशील दानवीर मोतीशा अपनी समस्त प्राप्त समृद्धि का मुक्त मन और मुक्त हस्त से उपयोग कर रहे थे। उनकी यह दृढ़ मान्यता थी कि सत्ता और संपत्ति देव–गुरु–धर्म के आशीर्वाद से ही प्राप्त होती हैं अतः उनका विनिमय पुनः उनकी प्रभावना में ही करना चाहिए। इस भायखला की प्रतिष्ठा को वे ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान करना चाहते थे।

भाग्यशाली मोतीशा पर इस समय असीम कृपा बरस रही थी। वे पुण्यानुबंधी पुण्य का उपार्जन कर रहे थे। पुण्यवान वे थे ही क्योंकि समृद्धि के साथ उच्च संस्कार भी प्राप्त हुए थे। इस जन्म में भी श्रावक जीवन की भूमिका पर आरूढ होकर वे पुण्योपार्जन कर रहे थे। अति उमंग के साथ उन्होंने अपने उद्‌गार परमात्मा के दरबार में पेश किए–

''साहेब सेवक विनती ए दिलमां धरवी।
ममाई शहेर पधारतां, हवे वार न करवी (वीरविजयजी)

उन्हें तो उस प्रतिमा से इतना अधिक प्रेम हो गया था कि पल मात्र के लिए भी उस प्रतिमा को विस्मृत नहीं कर पाते थे। वीर विजयजी के शब्दों में–

''रात दिवस हइडा थकी, एक पल न विसारे।
रागीने घर जायवु, युगतुं संसारे।''

मोतीशा ने दरबार में निवेदन किया कि यद्यपि आपको नियंत्रित करने की शक्ति नहीं है फिर भी आप करूणावतार हो और करूणा भरी दृष्टि डालकर बम्बई पधारो क्योंकि आपकी अनुपस्थिति मेरे शरीर को.... मेरी आत्मा को नुकीले डंकों की तरह चुभती है। मैं सक्षम नहीं हूँ पर भक्ति और अनुराग से परिपूर्ण हूँ।

मोतीशा भक्ति भावना से ओतप्रोत थे पर साथ ही क्रियापद्धति से भी पूर्णतः अवगत थे। परमात्मा के बिम्ब को बम्बई तक लाने की क्रिया में भी पूर्ण सतर्कता और सावधानी बरती। परमात्मा को विराजमान करने के लिए विशेष रूप से एक पालकी का निर्माण करवाया। अहमदाबाद से भरूच तक का तो रास्ता सडक मार्ग से तय किया गया एवं भरूच से बम्बई तक का रास्ता उन्होंने जहाज द्वारा तय किया।

रास्ते में किसी प्रकार की अविधि आशातना न हो इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था। अष्टप्रकारी पूजन सामग्री की जहाज में व्यवस्था थी। देवी सहयोग एवं अनुकूल वातावरण से जहाज सागर के सीने पर चलता चलता बम्बई समुद्री किनारे तक पहुँच गया। मोतीशा ने जैसे ही प्रभु का आगमन सुना, उनका रोम–रोम खिल उठा। बधाई लाने वाले पोत रक्षक को रोमांचित हुए सेठ ने अपने गले में पहना शुद्ध मोतियों का कण्ठा प्रदान करके उसका दारिद्र्य दूर कर दिया।

आज मोतीशा के पाँव धरती पर नहीं ठहर रहे थे। अंग अंग जैसे खिल रहा था। अभी मोतीशा अपने आपको पितृचरणों की अनुपस्थिति से अनाथ और कमजोर समझ रहे थे। पर आज प्रभु का आगमन श्रवण कर उन्हें अहसास हुआ, जैसे उनके सर पर अमर छाया हो गई है।

सामान्य सत्ताधीश का वरदहस्त पाकर भी हम अपने आपको कृतपुण्य समझ लेते हैं तो मोतीशा को तो साक्षात् अखंड छत्रछाया प्राप्त हो रही थी। माता–पिता एवं समस्त पारिवारिक सदस्यों की मृत्यु से मोतीशा का संवेदनशील हृदय रीता हो चला था पर आज त्रैलोक्यनाथ देवाधिदेव युगाधिपति परमात्मा का आगमन उनके घावों से भरे हृदय पर मल्हम की तरह प्रमाणित हुआ। उनका बंजर हृदय लहलहा उठा। वे आज परमात्मा की छत्रछाया में अपने आपको पूर्ण सुरक्षित एवं सनाथ महसूस कर रहे थे। उन्हें अपनी जीवन नैया का खिवैया आज प्राप्त हो गया था।

उन्होंने उसी समय भवन में जाकर अपनी पत्नी को परमात्म बिम्बयुक्त जहाज आगमन की सूचना दी। दीपा तो आराधना और साधना के मार्ग में मोतीशा से भी दो कदम आगे थी। तत्काल प्रसन्नता से जहाज की दिशा में बैठकर उन्होंने भावपूर्वक स्तुति की।

अब मोतीशा को चैन कहाँ था?उन्हें अब सर्व प्रथम परमात्मा के दर्शन करने थे। तुरंत बग्घी आ गयी पर मातीशा

समृद्ध उद्योगपति ही नहीं थे बल्कि वे श्रद्धा सम्पन्न, विनम्र श्रावक थे। उन्होंने समृद्धि की प्रतीक बग्घी में बैठकर परमात्मा के दर्शनार्थ जाना उचित नहीं समझा। वे पूजन सामग्री लेकर अपनी धर्मपत्नी दीपा के साथ पैदल ही उस उपवन की ओर चल पड़े, जहाँ अस्थायी तौर पर परमात्मा को बिराजमान किया था। ज्योंहि दूर से परमात्मबिम्ब के दर्शन हुए कि पाँवों में एकदम पंख लग गए। वे उस प्रतिमा के दर्शन से इतने विभोर हुए कि वातावरण से बेभान होकर परमात्मा के पवित्र चरणों को पकड़कर आँसू बहाने लगे। दीर्घावधि से बिछुड़े माता–पिता से मुलाकात होने पर जितना आह्लाद एक बच्चे को होता है, वही स्थिति मोतीशा की हो रही थी। जन्म जन्मांतर से आत्मा के साथ से जुड़े परमात्मा के दर्शन कर मोतीशा अगर अपने होशोहवास को खोए तो यह स्थिति अस्वाभाविक नहीं थी, क्योंकि एक जन्म से जुड़े माता–पिता के प्रति भी मासूम शिशु आत्मीयता रखता है, तो परमतारक देवाधिदेव तो मोतीशा के रोम–रोम से जुड़े हुए थे।

मोतीशा इस समय न स्तुति कर रहे थे, न भक्ति, वे तो मात्र तीखे स्वरों में आत्मीय निवेदन प्रस्तुत कर रहे थे कि तूने मुझे इतना लम्बा वियोग क्यों दिया?मैं कपूत था पर तू तो परमपिता हैं। पूत कपूत हो सकते हैं पर तू तो करूणा का सागर है। क्या पितृहृदय भी संसार और कषायों की आग में

जलते अपने पुत्र को देख सकता है?

मुझे संसार के भ्रमण में संतप्त देखकर भी तू मोम क्यों नहीं बना?क्या मैं तेरी कृपा के प्रसाद को पाने में असमर्थ और अयोग्य हूँ। मुझे अपनी शीतल और आनंदमयी छाया दे दे। जन्म मरण के पाटों के बीच पिसता जा रहा हूँ। प्रभु मुझे तार दें।

मैं जानता हूँ, मैं तेरे योग्य नहीं हूँ। परंतु मुझे तेरी करूणा पर विश्वास है। तूने जब अपने महासंकट कर्ताओं को भी क्षमादान देकर अनुग्रहित कर दिया तो क्या मुझे अपनी क्षमा की सरिता में नहलाकर पावन नहीं कर सकता?जिनहर्षसूरि की धारा में–

"तू तो करूणा रस भर्योजी, तू सहुनो हितकार।
हूँ अवगुण नो ओरड़ोजी, गुण तो नहीं लवलेश।।"

प्रभो! मुझ नापाक सेवक को अपने चरणों की छाया में रख ले। तेरा वियोग अब मैं झेल नहीं सकता। मैं संसार के प्राणीमात्र से निम्नकोटि का हूँ, फिर भी तेरा हूँ।

"अधमाधम अधिको पतित, सकल जगत मां हूँ,
श्रीमद् राजचंद्र

मैं तलहटी में खड़ा हूँ पर तूं तो पवित्रता के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ है। तेरी मेरी कोई संगति नहीं है, फिर भी गंगा नदी में जैसे सभी के पाप धुल जाते हैं, ऐसी हिन्दू मान्यता हैं, वैसे ही तेरी चरण सेवा में क्या मेरे समस्त

पूर्वजन्म कृत कर्म क्षय नहीं हो सकते?

मुझे क्षमा कर दो प्रभो! मैं जानते हुए भी उनसे गले मिला, जो मेरी ही आत्मा के पतन के मुख्य कारण बने। तूं जिन इन्द्रियों की डोर को अपने हाथ में थामकर इच्छानुसार उन्हें नियंत्रित करता था/घुमाता था, उन्हीं के चंगुल में फंसकर मैंने अपने हाथों अपने पाँवों पर कुल्हाड़ी मारी है। आनंदघनजी के शब्दों में–

"जे तेणे जित्यो रे, तेणे हुँ जीतियो रे
पुरुष किस्युं मुझ नाम.... पंथडो निहालुं।"

कैसे समझु कि मैं पौरुष से सम्पन्न हूँ?यद्यपि में दुर्गुण शिरोमणि हूँ पर तूं–

"केवल करूणामूर्ति छो, दीनबंधु दीननाथ।
पापी परम अनाथ छूं, ग्रहो प्रभुजी हाथ"

श्रीमद् राजचंद्र

अब मैंने तेरी शरण स्वीकार कर ली है। मेरी आत्मा पर छायी कर्मों की मलीनता को धो सकूं, ऐसा आशीर्वाद दीजिए।

ये शब्द मात्र मोतीशा के कंठ से ही नहीं, हृदय से निकल रहे थे। उनकी नस–नस में पुकार थी। उनके रोम–रोम में परमात्म प्रेम की कविता गूंज रही थी। वियोगजनित पीड़ा उनके अंग–अंग को दहका रही थी। अचानक उन्हें महसूस हुआ–परमात्मा के वियोग से जलते

उनके अंगों पर परमात्मा की करूणा का अमृत बरस रहा है। मोतीशा के हृदय का समर्पण और परमात्मा के बिम्ब से निःसृत हो रही करूणा की सरिता का अपूर्व और अलौकिक संगम था।

भावविह्वल हृदय से प्रार्थना के पश्चात् पुनः वे शहर आ गए।

शहर आकर सेवक द्वारा उन्होंने उद्घोषणा करवायी कि परमात्मा का सामैया किया जा रहा है। उस सामैये में सभी को पधारना है।

मोतीशा इस समय तक बम्बई के प्रसिद्ध और ख्यातिप्राप्त सेठ के रूप में स्थापित हो चुके थे। उम्र से यद्यपि वे युवा थे पर आचार और विचार से वे गंभीर और प्रौढत्व की भूमिका तक पहुँच गए थे। उनके नाम में बम्बई की जनता चुम्बकीय आकर्षण महसूस करती थी। विशाल जनसमूह के साथ सामैये के रूप में मोतीशा परमात्मा की प्रतिमा का प्रवेश समारोह कराना चाहते थे।

सूर्य की किरणें फैलने के साथ ही आज धरती पर भी उत्साह और उल्लास की लालिमा चिहुँ ओर नजर आ रही थी। सभी अपनी प्रातःकालीन नित्य क्रियाओं से यथाशीघ्र निवृत्त होकर परमात्मा के वरघोडे में जुड़ना चाहते थे। मोतीशा का विशाल बंगला भी संकीर्ण नजर आ रहा था। लोगों का आवागमन बढ़ता जा रहा था। तैयारियाँ मुँह अंधेरे

से ही प्रारम्भ हो गई थी।

मोतीशा और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती दीपा देवी की प्रसन्नता पूर्ण यौवन पर थी। मोतीशा स्वयं तैयारी में जुटे हुए थे। उल्लास से थिरकता उनका स्वर रह रहकर गूंज रहा था—कभी निर्देश के रूप में तो कभी आदेश के रूप में।

ठीक समय पर संघ के साथ मोतीशा वरघोडे के रूप में समुद्र किनारे पहुँचे। विधि—विधान करने के पश्चात् प्रभु को लेकर वरघोड़ा नगर प्रवेश की ओर अग्रसर हुआ। वरघोडे की रूपरेखा वीर विजय की ढाल में—

"हाथी घोडा पालखी, चकडोलर थाली।
बहुला वाजिंत्र वार्जत, गर्व लटकाली।।

जुलूस आकर्षक अनुशासित एवं क्रमबद्ध था। सर्वप्रथम ऊँट था, जिस पर उनके मित्रतुल्य एवं सहयोगी मुनीमजी बैठे नगाड़े बजा रहे थे। नगाड़ा इस बात का प्रतीक था कि प्रभु का पदार्पण हो रहा है। उसके बाद सजे हुए हाथी के होदे पर मोतीशा का लाडला इकलौता बेटा खेमचंद अभिवादन की मुद्रा में बैठा था। उस समय खेमचंद के चेहरे पर बिखरी सौम्यता, उसकी मासूमियत युवकों के आकर्षण और ईर्ष्या, दोनों का कारण बन रही थी। खेमचंद के पीछे शाही एवं तेज तर्रार घोड़े एवं बैण्ड थे।

ठीक उसके पश्चात् समारोह के आयोजक, भक्ति के रंग में आकंठ डूबे श्रेष्ठीवर्य दानवीर सेठ श्री मोतीशा दूध की धारा देते हुए चल रहे थे। उसके बाद आकर्षक चाँदी के रथ

में परमात्मा को लेकर पूजन के पवित्र वस्त्रों से सुसज्जित दीपा देवी आसीन थी। आज दीपा देवी का खिलता सौन्दर्य इन्द्राणी को भी मात कर रहा था। प्रभु के दोनों ओर चामर विंजने का पुण्यकार्य कर रहे थे– सेठ मोतीशा के दांये–बांये हाथ की तरह श्री बालाभाई एवं त्रिकमजी।

रथ के बाद मानवता के उन्नायक, संस्कृति के आदिपुरुष, मानवता के मसीहा श्री ऋषभदेव प्रभु के जयनादों से दिग्दिगन्त को गुंजाता विशाल पुरुषवर्ग चल रहा था।

युवकों का जोश आज चरमसीमा पर था। उनके पाँवों में जैसे कोई अदृश्य सत्ता ने घुंघरू बांध दिए थे। उनके पाँवों की थिरकन आज देवसभा के नृत्य को भी मात कर रही थी। मात्र उनके पाँव ही नहीं, रोम रोम थिरकन से व्याप्त था। उनके शरीर की समस्त ऊर्जा पाँवों में सिमट आई थी। भक्ति के दीवाने वे संपूर्ण रास्ते में नृत्य करके अपने आनंद को अभिव्यक्त कर रहे थे।

पुरुष वर्ग के पश्चात् विभिन्न रंग बिरंगी वेशभूषा में सजीधजी श्रद्धावान् एवं धर्मप्राण महिलाओं का समूह चल रहा था। जन सैलाब बाढ की तरह बढ़ता चला जा रहा था। लगता था आज परमात्मा जैन समाज की दीवारों को तोड़कर समस्त मानवमात्र की श्रद्धा और आस्था के केन्द्र बन गये है। समस्त मानवजाति इस जुलूस में सम्मिलित होकर प्रभु के प्रति अपनी संपूर्ण आस्था और समर्पण को

प्रमाणित कर रही थी।

महिलाओं के मस्तक पर मंगलकलश थे। मुख्य कलश मोतीशा की बहिन के सिर पर था। जो भी राह चलता इस जुलूस की अनुपम छटा को देखता, मंत्रमुग्ध हो उसी दृश्य में खो जाता। इस जुलूस ने महावीर भक्त कोणिक के वरघोडे की स्मृति कराली–

"साजन साथे सेठजी, चाले परवरिया।
ऐ सामैयुं देखतां, कोणिक सांभरिया।।"

सबसे अंत में जैन दर्शन एवं विभिन्न महापुरुषों से संबंधित ऐतिहासिक और आकर्षक झांकियाँ थी। उस संपूर्ण जुलूस की शोभा अनुपम और निराली थी। जिसने भी देखा, अपलक देखता ही रहा।

मुख्य मार्गों द्वारा चलता हुआ यह ऐतिहासिक वरघोड़ा यथासमय मोतीशा के नए बने भव्य आवास पर पहुँचा जो कि मंदिर के ठीक सामने था। मोतीशा ने अस्थायी समय के लिए वहाँ बनी पीठिका पर परमात्मा को विधिपूर्वक विराजमान कर दिया।

बाहर बने विशाल मंडप में तत्कालीन संघाध्यक्ष ने संघ की अनुमति लेकर मोतीशा के भव्य ललाट पर कुंकुम का तिलक किया जो इस बात का प्रतीक था कि प्रतिष्ठा समारोह पर्यंत संपूर्ण संघ पर मोतीशा का मार्गदर्शन मुख्य रूप से रहेगा। मोतीशा की अध्यक्षता में संपूर्ण संघ सक्रिय सेवाएं प्रस्तुत करेगा।

समारोह के अंत में मोतीशा द्वारा संक्षिप्त उद्‌बोधन दिया गया। अपने इस सम्मान के लिए एवं समारोह को सफल बनाने के लिए आभार व्यक्त किया गया। समारोह विसर्जन से पूर्व मोतीशा द्वारा मांगलिक प्रभावना वितरित की गई।

उसी दिन मोतीशा ने मंदिर निर्माण में प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े अपने समस्त मित्रबंधुओं एवं कारीगरों को ससम्मान भोजन भी कराया।

मंदिर निर्माण का कार्य अपने अंतिम चरण में था। आचार्य भगवंत श्री जिन महेन्द्रसूरि का अपने विशाल संघ के साथ पदार्पण हो चुका था। बड़ी बैचेनी से मोतीशा प्रतिष्ठा के दिन का इंतजार कर रहे थे। उनके तार परमात्मा से इतने गहरे जुड़ गए थे कि अब उन्हें इस कार्य के अतिरिक्त और कुछ नजर भी नहीं आता था। अपना सारा व्यापार उन्होंने अपने विश्वस्त सहयोगियों के भरोसे छोड़ रखा था।

इंतजार की घड़ियाँ समीप आती जा रही थी। मोतीशा का रोम–रोम आशा और उल्लास का पर्याय बना हुआ था। उनका विश्वास था कि वही समय सार्थक है, जो समय प्रभु–भक्ति में व्यतीत होता है। उनके मातहत भी मोतीशा की रात–दिन की संगति के कारण उन्हीं के रंग में रंगे जा चुके थे। न वे बेईमानी करना जानते थे, और न सेठ के व्यापार में किसी प्रकार की धोखाधड़ी। वे अपने स्तर पर ही समस्त व्यापारिक समस्याओं को सुलझा देते थे। उनके इस

प्रकार के आत्मीय सहयोग के कारण ही मोतीशा अपने आपको अधिकांश समय के लिए धर्मक्रिया को समर्पित कर सकते थे। वे व्यापारिक तनावों से संपूर्णतः मुक्त थे।

मोतीशा को इतना आत्मीय सहयोग प्राप्त हुआ परंतु इसके लिए मोतीशा का अपना आचरण ही मुख्य रूप से कारण बना था। अपने कर्मचारियों के प्रति वे विश्वस्त थे। उनके सामान्य दुःख–दर्द में शरीक होना, जहाँ वे अपना कर्त्तव्य समझते थे, वहीं उनकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करना भी अपना नैतिक दायित्व समझते थे। यही कारण था कि उनमें परस्पर पारिवारिक संबंधों की जड़े काफी गहरी थी। मोतीशा की अपनी कार्य पद्धति ही ऐसी थी कि जिससें कर्मचारीगण फर्म को मोतीशा के अधीन समझते हुए भी अपनी ही समझते थे।

प्रतीक्षा की घड़ियाँ समाप्त हुई। महोत्सव की घड़ियाँ समीप आने लगी। प्रतिष्ठा समारोह की भव्य तैयारियाँ की गई। स्थान–स्थान पर सुंदर आमंत्रण–पत्रिकाएं भिजवाई गई। विधि–विधान के लिए विशाल मंडप बनाया गया। अनेकों प्रकार के चलचित्रों द्वारा उस मंडप को सजाया गया। आगंतुक जनता के लिए विशाल पैमाने पर आवास और भोजन की व्यवस्था की गई।

पूजा और रात्रि में भक्ति भावना हेतु प्रसिद्ध भजन मंडलियाँ निमंत्रित की गई। ज्यों–ज्यों समारोह की घड़ियाँ निकट आती जा रही थी, त्यों–त्यों मोतीशा अपनी शारीरिक

आवश्यकताओं के प्रति उदासीन होते जा रहे थे। उनके संपूर्ण शरीर में जैसे विद्युत तरंगें प्रवाहित हो गई थी। भक्ति की तरंगों से इतने तरंगित थे कि न उनका समय पर खाना–पीना होता था और न आराम। एक ही लक्ष्य के प्रति वे पूर्णतया समर्पित थे।

उनका सारा परिवार, मित्र मण्डली एवं परिचित लोग भी मोतीशा की सत्प्रेरणा पाकर प्रतिष्ठामय हो गए थे। प्रकृति भी रमणीय थी। न अंगों को प्रकंपित करती सर्दी थी और न शरीर झुलसाने वाली गर्मी। उस समय समस्त व्यवस्थाएं प्रत्येक दृष्टि से अनुकूल थी और उसका मुख्य कारण यह भी था कि देव भी संपूर्ण अनुकूलता का सर्जन अपने स्तर पर कर रहा था।

हम उस प्रतिष्ठा समारोह की भव्यता शब्दों द्वारा अंकित नहीं कर सकते, क्योंकि शब्दों की सीमा है और वह ऐतिहासिक प्रसंग तो अद्भुत था। मोतीशा की तन–मन और धन की शक्ति तो उस समारोह को समर्पित थी ही, साथ ही विशाल मित्र मंडली भी सेठ की भावना और लगन को पूर्णता प्रदान करने में तत्पर थी, पर इन सभी के शिखर स्वरूप गोमुख यक्ष का सतत सान्निध्य, निर्देशन, वरदहस्त–बेशकीमती था।

प्रतिष्ठा समारोह मंगल विधि से प्रारंभ हुआ। विशाल सजे सजाए मंडप में अष्टाह्निका महोत्सव प्रारंभ हुआ। स्वयं मोतीशा सपत्नीक पूजन की सामग्री लेकर खड़े रहते थे।

स्वयं की भक्ति ही शक्ति प्रदायक है। हम अपनी सम्पन्नता और व्यस्तता का आवरण डालकर अन्यों के द्वारा धर्मसाधना कराएं और पुण्य स्वयं उपार्जित करना चाहें तो असंभव है।

कर्मबंधन और कर्मक्षय की प्रक्रिया मन की वृत्ति के साथ जुड़ी हुई है। अगर मन के परमाणु क्रिया के साथ संलग्न नहीं होते तो बंधन गहरा नहीं पड़ता। क्रिया शुभ है तो बंधन भी शुभ है। क्रिया अशुभ है तो बंधन भी अशुभ है। शर्त और आवश्यकता है—भावों की धारा में हृदय को डूबाने की।

मानव स्वयं क्रिया में प्रत्यक्ष रूप से जुड़े तो निसंदेह उसे भावों की धारा में डूबने का एक अवसर प्राप्त होगा और अगर वह क्रिया शुभ और निर्मल है तो उस क्रिया के माध्यम से अवश्य ही जीवन सार्थकता को उपलब्ध होगा। गीता में कहा है—'मनः एव मनुष्याणां, कारणं बंध मोक्षयोः'

मोतीशा श्रद्धालु और धार्मिक प्रकृति के नररत्न थे।

पूजा के वस्त्र पहने पूजन की सामग्री चांदी की थाल में सजाकर खड़े होने में कभी उनको संकोच नहीं होता था। दर्शकों पर उनकी यह क्रिया अमिट प्रभाव छोड़ती थी। संपन्न, सक्षम और प्रभावशाली व्यक्तित्व से युक्त मानव की प्रत्येक क्रिया एक प्रतिक्रिया को जन्म देती है, साथ ही अनुकरणीय भी बनती है। मोतीशा मानते थे—

'जे जिन पूजा रे, ते निज पूजना रे।'

परमात्मा की जो भी द्रव्य या भाव पूजना अनुयायी वर्ग

द्वारा संपन्न होती है, वह गहराई में झांके तो उसकी अंपनी पूजा है। वह स्वयं परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त करना चाहता है। पूज्य बनना चाहता है इसलिए वह पूजा करता है ताकि उसमें भी उपशम रस झरती परमात्मा की अलौकिक चरण वंदना से समता और समाधि का सोता फूटे।

पूजा मानव के हृदय की भक्ति और समर्पण का प्रतीक है। प्रभु के साथ हमारा समर्पण जुड़ा हुआ है, न कि वैतनिक व्यक्ति का। वैतनिक व्यक्ति की निष्ठा प्रभु से नहीं, वेतन से जुड़ी हुई रहती है। हम अगर उस वैतनिक व्यक्ति के विश्वास पर अपने तारक परमात्मा की सेवा कराना चाहें तो हमारे अपने अंतर में भक्ति और भावों की सरिता कभी नहीं बह सकती। भावों की रस धारा तो आलंबन के आधार पर ही पुष्ट बनकर बहती है, आलंबन कोई और ले और आनंद कोई और प्राप्त करे, यह असंभव है।

परमात्मा की पूजा का मुख्य कारण श्रीमद् देवचंद्र के मत में–

अज कुलगत केसरी लहे रे, निज पद सिंह निहाल।
तिम प्रभु भक्ते भवि लहे रे, आतमशक्ति संभाल।।

बकरों के समूह में उनकी संगति के कारण शेर का बच्चा भी में–में करने लग जाता है। किसी भीमकाय को देखकर या भय के सामान्य वातावरण में भी वह भयभीत होकर कांपने लग जाता है। वही शेर का बच्चा एक बार तो शेर को देखकर भय के मारे भाग जाता है, पर शेर की गर्जना

उसके अवचेतन मन को गहराई से प्रभावित करती है और वह भी वैसी ही गर्जना करने का प्रयास करता है। संक्षिप्त अवधि में ही उसे सफलता प्राप्त हो जाती है। जैसे शेर का बच्चा शेर को देखकर अपने विस्मृत और सुषुप्त शौर्य को प्राप्त कर लेता है, वैसे ही परमात्मा की शांतसुधारस बरसाती प्रतिमा भी आत्मा को परमात्मा बनने की प्रेरणा प्रदान करती है।

श्रद्धालु मोतीशा परमात्मा से संबंधित समस्त क्रियाएं अपने हाथों से संपन्न करके अद्भुत रोमांच का अनुभव करते थे।

नवग्रह पूजन, दश दिक्पाल पूजन आदि नियत समय पर विधिकारक स्वधर्मी बंधु बड़नगर निवासी श्री गलाशा के कुशल निर्देशन में सानंद सम्पन्न हुए। मोतीशा की उदारता और प्रभुभक्ति के चर्चे हर जुबां पर चर्चित हो रहे थे।

वह सुनहरी पल....वह अद्भुत और शब्दातीत घड़ी....वह रोमांचक वेला अंत में आ ही गई, जिसका सपना मोतीशा ही नहीं, उनके साथ हजारों लोग देख रहे थे। जिस पल का पलकें बिछाकर इंतजार कर रहे थे, वह भाग्यशाली पल जनता के समक्ष पहुंच गया था। रोमांच और उत्सुकता चरम सीमा पर थी। वह पल, जो अपने आप में असामान्य था, इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात करने वाला था। मोतीशा का जीवन तो इस पल के साथ धन्य और सार्थक होने वाला था ही, साथ ही यह आयोजन भविष्य में भी अनेकों

के जीवन को खूबसूरत करने वाला स्वर्णिम आयोजन था।

मिगसर शुक्ला षष्ठी का शुभ दिन.....आचार्य भगवंत की तारक निश्रा, मोतीशा जैसे श्रद्धालु आयोजक, गोमुख यक्ष का प्रतिपल सान्निध्य और परमतारक परमात्मा ऋषभदेव को नवनिर्मित विशाल गगनचुम्बी भव्य कलात्मक मंदिर में स्थापना की शुभ वेला....जनता की प्रसन्नता समस्त अवरोधो को तोड़कर बह रही थी।

आज प्रातःकाल से भायखला मंदिर की ओर जनता का रैला उमड़ पड़ा था। सभी की दिशा एक ही थी। सभी का लक्ष्य भायखला मंदिर था। अतिशीघ्र घरेलू व्यवस्था व्यवस्थित कर महिलाएं भी विशाल संख्या में सज–संवर कर मंदिर के प्रांगण में एकत्रित हो रही थीं। चहल–पहल अद्भुत थी। मोतीशा के हृदय का आनंद कौन अपनी लेखनी में बांधने को सक्षम हो सकता है?उल्लसित उनका चेहरा अनोखे अंदाज से चमक रहा था।

एक–एक पल उन्हें भारी लग रहा था। वे रात्रि में सो भी नहीं पाए थे। दीपा भी उनकी भावनाओं पर अंकुश लगाना नहीं चाहती थी। वह भी कदम से कदम मिलाकर पूर्ण सहयोग दे रही थी। झल्लाना, वक्त पर तैयार न होना, व्यवस्था पर पैनी नजर न रखना आदि सभी से वह दूर थी। मोतीशा पूजन के कपड़े पहनकर आंगन में आते, उससे पूर्व ही उन्हें पूजन सामग्री से सज्जित दीपा तैयार मिलती। दीपा को उन्हें एक कार्य के लिए दुबारा कहने की आवश्यकता

नहीं पड़ती थी।

आज भी दीपा वक्त पर ही तैयार हो गई थी। शुद्ध जरी का सिंदूरी रंग का वेश उसके पवित्र और निर्मल सौन्दर्य पर विकासमान सूर्य की लालिमा को भी नजरअंदाज करा रहा था। मोतीशा ने एक पवित्र नजर से दीपा को देखा और समस्त पारिवारिक सदस्यों के साथ वे जिनालय की ओर अग्रसर हुए। उनसे कुछ कदम पीछे खेमचंद भी पूजा के वस्त्रों में चल रहा था।

सधी चाल....उत्कंठित हृदय.....भावनाओं के ज्वार में उफनता जन सैलाब....सभी ने देवालय में प्रवेश किया। आचार्य भगवंत साथ ही थे। जयनाद से दिशाएं गूंज उठी। आचार्य महाराज सस्मित इस आनंदमय वातावरण के सर्जक और सूत्रधार मोतीशा को मूक भाषा में आशीर्वाद दे रहे थे। प्रतिमा की स्थापना में कुछ पल बाकी थे। आचार्य महाराज ने मंत्रोच्चार प्रारंभ किया।

ऊँ पुण्याहं पुण्याहं, प्रीयंतां प्रीयंतां की मंगल ध्वनि मंदिर के कोने–कोने से गूंज उठी। हजारों कंठों की सामूहिकता से यह मंत्रोच्चार धरती की सीमा लांघकर स्वर्गद्वार तक पहुंच गया। देवों ने सुना तो सकपका गए। ज्ञान के माध्यम से जाना कि मोतीशा इस ध्वनि द्वारा हमारा आह्वान कर रहे हैं। उन्होंने अपने साथी देव, जो अमीचंद की आत्मा थी, उनकी तरफ देखा तो प्रसन्नता के आंसू उनकी आँखों में स्पष्टतः दिखाई दे रहे थे।

आश्चर्य से पूछा—ऐसी प्रसन्नता की वेला में आंसू! देव ने कहा—ये आंसू आनंद के हैं। आज मंत्रोच्चार की जो ध्वनि स्वर्ग के द्वार पर दस्तक दे रही है, पूर्व जन्म में उस आयोजक का पिता होने का गौरव मुझे है। आज मुझे इस जन्म से पूर्व का वह मानव जीवन सार्थक नजर आ रहा है। अब तुरंत उस प्रतिष्ठा विधि को साक्षात् देखकर नयन धन्य कर लें।

तुरंत मोतीशा के पितृदेव की प्रेरणा और अपनी भावना के वशीभूत देवों का एक समूह प्रतिष्ठास्थल पर पहुंच गया। अतिशय शक्ति और विशिष्टताओं से भरपूर उस देव समूह के अदृश्य होने पर भी उनकी उपस्थिति का अहसास जनता को हो गया था। अमीचंद (देव) ने जब उस भक्ति और भाव की धारा में निमज्जन करते जनसैलाब को देखा तो उनका हृदय बल्लियों उछलने लगा। उन्हें यह मारवाड़ी दोहा तुरंत याद आया—

"जननी जणें तो भक्त जन, कां दाता कां शूर।
नहीं तो रहीजे वांझणी, मती गमाइजे नूर।"

जो पुत्र पिता के नाम को अमर और ऐतिहासिक बनाए, निसंदेह उस व्यक्ति की माता, उसके पिता और उसके निकट के स्वजन भी अपने आपको गौरवान्वित मानते हैं। अमीचंद की आँखों में हर्षाश्रु छलक आए। उन्होंने अपने अंगजात को दूर से ही अगणित आशीर्वाद से नहला दिया। अब उनकी प्रियतमा की अनुभूति साकार अवश्य होगी, ऐसा

दृढ़ विश्वास भी उनके अंतर में स्थापित हो गया।

सेठ मोतीशा अपनी पत्नी दीपादेवी के साथ प्रतिमा को स्थापित करने के लिए उत्सुकता से मंडप की परिधि में ही खड़े थे। प्रतिष्ठापक मोतीशा, आचार्य भगवंत एवं विधिकारक सभी की निगाहें घड़ी पर अटकी हुई थी। प्रतिमा स्थापन में समय की सावधानी अत्यंत अनिवार्य है। अगर समय में सामान्य चूक हो जाय तो भी प्रतिष्ठाचार्य एवं आयोजक दोनों के लिए खतरनाक स्थिति हो जाती है। श्री जिन महेन्द्रसूरि क्रिया अनुष्ठान आदि में पूर्ण पारंगत थे। नियत समय पर ज्योंहि सुई का काटा पहुंचा, विधिकारक के सहयोग से जनता के जयनाद के साथ ऋषभदेव परमात्मा की प्रतिमा को गद्दीनशीन कर दिया गया। मंदिर का कोना–कोना घंट की टंकार, बेंड की मधुर ध्वनि एवं तुमुल घोष से गूंज उठा। आचार्य भगवंत ने वासक्षेप करके स्थापना विधि को संपन्न किया।

स्थापना होते ही भक्त एवं श्रद्धालु लोगों के पांव स्वतः थिरक उठे। बिना घुंघरू के ही पाँवों में स्वतः गति आ गई। भक्ति के दीवाने उनको न होश था, न औपचारिकता। वहां तो मात्र भक्ति की तरंगें प्रवाहित हो रही थी। भक्ति का नशा वही समझ सकता है, जिसने इसे अनुभूत किया है। यह एक ऐसा निर्झर है, जिसमें हृदय अगर डूब जाय तो समग्रता से वह आत्मविस्मृत हो उठता है। सारे कल्मष उस भाव धारा में विलीन हो जाते हैं। उस प्रतिष्ठा में भी समर्पण की शीतल धारा श्रद्धालु भक्त हृदयों को आप्लावित कर रही थी। स्वयं मोतीशा भी अपने को संयत नहीं रख पाए। सारे बंधन तोड़कर उनके पाँवों ने भी नृत्य की मुद्रा से अपने से अपने आप को जोड़ लिया।

मोतीशा की अभिलाषाओं ने आज पूर्णता के शिखर को छू लिया था। उनका शांत और सौम्य व्यक्तित्व आनंद और उल्लास से गुनगुना रहा था। जीवन का समस्त आनंद जैसे साकार हो गया था। उनके हृदय की चिरंतन अभिलाषा साकार होकर नाच रही थी। निःसंदेह भायखला मंदिर के निर्माण से इतिहास एवं भायखला मंदिर के समस्त दर्शनार्थी मोतीशा की उदारता और समयोचित धार्मिक और आध्यात्मिक संस्कारों के प्रति कृतज्ञ है।

भायखला मंदिर के संस्थापक सेठ मोतीशा के इस

निर्माण से युग की एक महत्वपूर्ण मांग तो पूरी हुई ही साथ ही इस निर्माण और प्रतिष्ठा के प्रत्यक्षदर्शी भी स्वयं को सौभाग्यशाली समझते थे कि उन्हें इतनी सुंदर दैवी घटना से साक्षी बनने का अवसर प्राप्त हुआ। साथ ही अपने पूर्वकृत पापों को भक्ति की धारा में बहाने का मौका मिला।

मूलनायक ऋषभदेव की स्थापना के साथ ही उनके दांयी ओर वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में विचरण करने वाले सीमंधर स्वामी की एवं बांयी ओर तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ की प्रतिमा स्थापित की गई। प्रतिष्ठा के दिन शांति के विस्तार के लिए अष्टोत्तरी शांति–स्नात्र महापूजन पढ़ाई गई। द्वारोद्घाटन की विधि भी सानंद सम्पन्न हुई। उस दिन समापन के उपलक्ष्य में दादा गुरुदेव की बड़ी पूजा पढ़ाई गई। इस प्रतिष्ठा समारोह में दूरदराज से अनेकों व्यक्ति उपस्थित हुए। स्वयं अहमदाबाद के नगर श्रेष्ठी श्री हेमाभाई भी पधारे थे।

सेठ हेमाभाई के साथ सेठ मोतीशा के घरेलू एवं व्यापारिक दोनों ही प्रकार के संबंध थे। अहमदाबाद निवासी श्रेष्ठिवर्य श्री हठीसिंह, केसरीसिंह, सेठ हेमाभाई वखतचंद एवं करमचंद प्रेमचंद ने सं. 1875 से 1881 के मध्य अपने–अपने व्यापारिक प्रतिष्ठान बम्बई स्थापित कर दिए थे। इन चारों में आपसी आंतरिक समझ, एक चिंतन और एक ही लक्ष्य होने के कारण मित्रता भी गहरी थी। आपस में

चारों एक दूसरे की क्रिया में सहयोगी बनते थे। इनका आपसी व्यवहार राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की स्मृति कराता था। इन सभी के साथ–साथ अहमदाबाद निवासी सेठ सूरजमल बखतचंद के साथ भी गहरा मैत्री भाव था। उन्होंने भी अपना प्रतिष्ठान बम्बई में स्थापित कर दिया था।

मोतीशा के मित्रों में मांगरोल निवासी नानजी जेकरण चीनाई का नाम भी आता है। इनका व्यापार चीन के साथ था। सेठ मोतीशा का एवं इनका स्वतंत्र व्यापार था या भागीदारी में, इसके संबंध में तो इतिहास एकमत नहीं हैं, पर इनके विकास में मोतीशा का योगदान अवश्य था।

एक बार मोतीशा का माल लेकर ये चीन गए। लगातार दो वर्ष बीत गए, पर वहाँ से उनके कोई समाचार नहीं आये। और इधर समाचारों के अभाव में परिवार व्याकुलता महसूस करने लगा। पारिवारिक सदस्यों की व्याकुलता मोतीशा को और अधिक डंक की तरह चुभने लगी। अपने मित्र के संकट की कल्पना मात्र से मोतीशा का भावुक हृदय व्यथा के सागर में डूबा जाता था। उन्होंने समाचार जानने हेतु अनेकों प्रयत्न किए पर सफलता नहीं मिल पाई।

नानजी की पत्नी दीपशिखा बनकर जलती जा रही थी। मोतीशा भावुक तो थे ही, व्यवहारिकता भी उनमें कूट–कूटकर भरी थी। वे जानते थे–कि मित्र पत्नी

पति–वियोग की दारुण ज्वाला को तो झेल ही रही है, साथ ही आर्थिक तनाव भी उसे संतप्त करता होगा। उन्होंने दीर्घचिंतन कर एक विशाल भवन अपनी मित्र–पत्नी के नाम से खरीद लिया और वह मकान उन्हें सौंप दिया ताकि किराए पर उठाकर उससे आर्थिक रूप से तो वे सक्षम रहे।

लगभग बारह वर्ष की दीर्घावधि के पश्चात् मोतीशा को शुभ संवाद प्राप्त हुआ कि नानजी भाई आशातीत सफलता प्राप्त कर सानंद समुद्र किनारे लौट आए हैं। आनंद के उन पलों में स्वयं मोतीशा मित्र–पत्नी के पास पहुंचे और उसके सुहाग के सकुशल लौट आने की बधाई दी। मानो उसके अंतर की जलती आग पर अमृत की धारा प्रवाहित कर दी मोतीशा ने। वह खुशी से झूम उठी। आशा के अगणित दीप जलाकर वह अपने परिजनों एवं मोतीशा सहित सागर तट पर जा पहुंची। मोतीशा एवं समस्त परिजन जिसके मिलन की आशा छोड़ चुके थे, आज उसे प्रसन्न वदन देखते ही सभी के मुरझाए चेहरे खिल गए।

मोतीशा की उदारता और उनकी मित्रता निःसंदेह पुण्यवान को ही उपलब्ध होती थी। वे मात्र न्याय प्रिय ही नहीं, आत्मप्रिय भी थे। पापोदय में जहां मानव के अपने धारण किए वस्त्र भी काटने लग जाते हैं, उसके समस्त तथाकथित उसका दामन छोड़ देते हैं, ऐसे समय में भी मोतीशा अपने अंगीकृत औपचारिक मित्र को भी पूरा–पूरा

सहयोग देकर उसके जीवन में बंसत की बहार ले आये थे।

यह उनकी व्यापक उदारता उन्हें वंशानुगत प्राप्त गरिमा थी। उनमें ही नहीं, यह आत्मीयता नेमीचंद सेठ के भी रोम–रोम में व्याप्त थी।

सेठ नानजी भाई ने प्रचंड पुरुषार्थ द्वारा स्वयं को बम्बई नगरी में स्थापित किया था, परंतु दुर्भाग्य से 1858 में आग के प्रकोप में उनके समस्त गोडाउन का सामान भस्म हो गया। स्वयं के स्वामित्व की सारी संपदा भस्मी भूत हुई थी, साथ ही अन्य के कर्जदार भी हो गए। विषम परिस्थिति–जन्य हताशा ने नानजी भाई को कसकर चपेट में ले लिया। ऐसी विषम परिस्थिति में भी नानजी भाई की धार्मिक श्रद्धा अकंप अविचल रही। मंदिर में वे दर्शन कर रहे थे और इतने में अचानक सेठ नेमीचंद भी दर्शन करने पहुँच गए थे।

दोनों एक साथ बाहर आए। स्वधर्मी बंधु समझकर नेमीचंद ने परिचय पूछा। स्वयं भुक्तभोगी होने से अतिशीघ्र समझ गए कि किसी चिंता ने इन्हें व्यथित कर रखा है। आत्मीयता से जब सारा इतिवृत्त पूछा तो नानजी भाई को अपनी व्यथा प्रकट करनी ही पड़ी। गंभीरता से नेमीचंद सेठ ने कहा–आप मेरे स्वधर्मी बंधु के नाते स्वजन है। आपकी चिंता मेरी चिंता है। हम घर चलते हैं। मेरी माँ अत्यंत व्यावहारिक चतुराई से ओतप्रोत है। वे अवश्य ही कोई

समाधान ढूंढ देगी।

नेमीचंद ने माँ की आज्ञानुसार समस्त लेनदारों को एकत्रित किया। उन सभी को देने की राशि तय की गई, एवं समय भी तय कर दिया। इससे कर्जदारों से मुक्ति भी मिली और शालीनता भी सुरक्षित रही। इस राशि को चुकाने में भी सारा सहयोग नेमीचंद एवं मोतीशा का ही रहा। इन्होंने अपनी पूंजी देकर नानजी को कलकत्ता भेजा और जो भी लाभ प्राप्त हुआ, उसकी राशि का पचास प्रतिशत भाग नानजी को प्रेमपूर्वक दे दिया। पाँच वर्ष के सतत पुरुषार्थ से कर्जमुक्त भी हुए और एक लाख की राशि का संग्रह भी कर लिया। ये कलकत्ता में नानजी चीनाई के नाम से स्थापित हुए थे।

जब 1872 में नेमीचंद सेठ की असामयिक मृत्यु हो गयी तो ये बम्बई आ गए और मोतीशा के साथ व्यापारिक संबंध पूर्व की तरह ही कायम रहे।

सेठ मोतीशा के जीवन प्रसंग में सेठ मोकमभाई एवं हठीसिंह का नाम भी उल्लेखनीय है। मोकमभाई ने द्वितीया के चाँद मोतीशा को देखा तो उनके साथ व्यापारिक एवं आत्मीय संबंध स्थापित करने की सहज जिज्ञासा हुई। परस्पर की मुलाकात उनके हृदय की निकटता में सहयोगी बनी। आत्मीयता को और अधिक व्यापकता देने के लिए मोकमभाई ने एक अवसर का उपयोग किया, जिसने उनकी

मित्रता को स्थायित्व तो दिया ही, मोतीशा के हृदय पर भी गहरी छाप छोड़ी।

सेठ हेमाभाई ने अहमदाबाद से पालीताणा पद यात्रा संघ का आयोजन किया। इस संबंध में दो मत है कि संघ कौनसे संवत् में आयोजित किया गया। एक मत से संघ 1878 एवं दूसरे मत में संघ 1873 में आयोजित किया गया था। जब संघ काठियावाड के चोरवाड (मांगरोल) के निकट पहुँचा तो सेठ मोकमभाई ने संघ को मोतीशा की तरफ से खाना दिया। अनुमानित राशि उस भोजन पर सात हजार के आसपास व्यय की गयी पर इसकी भनक भी मोतीशा को नहीं होने दी।

जब मोतीशा को किसी सामान्य व्यक्ति द्वारा इनकी जानकारी हुई तो इन्हें आश्चर्य के साथ–साथ गहरा प्रेम भी उमड़ आया।

प्रतिक्रिया के रूप में उन्होंने रतलाम और पाली की अफीम की खरीदी की आढ़त हठीभाई सेठ को सौंप दी। लाखों का लाभ सेठ हठीसिंह को इससे प्राप्त हुआ। मोतीशा का हृदय भावुक था, वहीं उपकारी के प्रति उनका रोम–रोम कृतज्ञ था। सामान्य उपकारी के उपकारों को भी वे स्मृति में रखते थे। आर्थिक दृढ़ता प्राप्त होने के बाद भी वे सामान्य रिश्तों को भूले नहीं।

इस प्रकार जहाँ मोतीशा धार्मिक कार्यक्रमों में

अग्रपंक्ति में थे, वहीं सामाजिक और व्यावहारिक क्षेत्रों में भी उनका पूर्ण योगदान रहता था। आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति को चुपचाप सहयोग देकर उसे आत्मनिर्भर बनाने की उनकी उत्कट ललक रहती थी। स्वयं के सामर्थ्य और पुण्योपार्जित लक्ष्मी को उन्होंने तिजोरी से न बाँधकर अपने पुण्य से बाँधा था।

भायखला मंदिर के निर्माण में लगभग तीन लाख रुपए का व्यय हुआ। प्रतिष्ठा समारोह की राशि अलग है। उसका उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

भायखला मंदिर निर्माण से पूर्व मोतीशा ने पालीताणा में विशाल यात्रिक भवन का निर्माण भी सम्पन्न करवाया था। इस विशाल भवन को "मोतीशा की धर्मशाला" अथवा मोतीसुखिया के रूप में पहचाना जाता है। इस धर्मशाला का निर्माण व्यय 76000 रहा था। 1887 में यह धर्मशाला यात्रिकों के उपयोग में आने लग गई थी। वर्षों पुरानी इस धर्मशाला के निर्माण में इतनी अच्छी निर्माण सामग्री काम में आई थी कि आज भी वह पूर्ण सुरक्षित है। साधु–साध्वी भगवंतों के रुकने की व्यवस्था भी सुंदर है। भोजनशाला की व्यवस्था भी यहाँ है। मोतीशा की श्रेष्ठता को निःसंदेह कोई चुनौती नहीं दे सकता। आज भी अगर बाहर से कोई संघ आता है तो उस संघपति का प्रथम तिलक मोतीशा की धर्मशाला का व्यवस्थापक ही करता है। खरतरगच्छीय देवचंद्रजी म. द्वारा

स्थापित आनंदजी कल्याणजी पेढ़ी की मुख्य तिजोरी की एक चाबी मोतीशा का कामकाज संभाल रहे व्यक्ति के पास रहती है।

जिस दिन भायखला मंदिर का प्रतिष्ठा समारोह सम्पन्न हुआ , उस दिन मोतीशा ने समस्त कारीगरों को सम्मान स्वरूप अपनी ओर से भोजन कराकर इस मंदिर के निर्माण में उनके योगदान को प्रतिष्ठा प्रदान की। अपने इस सम्मान से कारीगरों का हृदय भर आया। इसके वास्तुकार रामजी भाई को तो उन्होंने चालणी भरकर आभूषण प्रदान किए एवं हजारों लोगों की उपस्थिति में उन्हें सम्मानित भी किया।

स्वयं आचार्य भगवंत संत हृदय मोतीशा की प्रभु शक्ति से प्रभावित हुए। उन्होंने मोतीशा को "श्रावक रत्न" से संबोधित करके गौरव प्रदान किया।

अक्सर कलाकार अपनी कला साधना में समय का अधिक भोग देने के कारण अर्थोपार्जन की उनकी मानसिकता भी नहीं होती और इस कारण बड़े–बड़े कलाकार जहाँ कला को समर्पित होकर इतिहास को अद्भुत कला का नमूना प्रदान कर जाते हैं, वही वे अपने वर्तमान में सम्पन्नता से वंचित भी रह जाते है।

रामजी भाई भी इसके अपवाद नहीं थे। वे तन्मयता से कला साधना को समर्पित थे परंतु उनकी इस कला साधना

से घर की सारी आर्थिक व्यवस्था चरमरा गयी थी। वे कर्जदार भी हो गए थे पर संकोचवश मोतीशा के सामने अपनी डगमग करती आर्थिक व्यवस्था के संबंध में संकेत नहीं दे पाए। मोतीशा द्वारा प्राप्त अनमोल ज्वेलरी को प्राप्त कर उनके चेहरे पर एक तृप्ति आ गई। इनके विक्रय से जो राशि प्राप्त होगी, उससे अपने आपको कर्जमुक्त कर लूंगा। तृप्ति के साथ दर्द भी उनके चेहरे पर स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो रहा था कि जिन वस्तुओं को उन्होंने अपने समय की महान् हस्ती से उपहार स्वरूप प्राप्त किया हैं, उन्हें वे मधुर स्मृति के रूप में सहेज नहीं सकेंगे।

भायखला मंदिर में रामजीभाई ने अथक परिश्रम किया था, तब कहीं जाकर मोतीशा के सपने को यथार्थ के आंगन में उतार पाए थे। आज इस मंदिर के निर्माण को देखकर रामजी भाई की प्रसन्नता अंग–अंग को खिला रही थी पर उपहार में प्राप्त अलंकारों को बेचने की कल्पना भी उन्हें साल रही थी, पर निरूपाय थे क्योंकि वे वर्षों से सिहोर निवासी मेहता मेराज शामला से ऋण ले रहे थे पर पुनः लौटाने का साहस कभी नहीं कर पाए थे।

रामजी भाई की उदासीनता का कारण जब मोतीशा के मैनेजर ने पूछा तो वे अपने दर्द को छिपा नहीं सके।

मैनेजर वीरचंद के चेहरे पर विषाद की रेखाएं उभर आई। अपने स्वामीप्रदत्त वस्तुओं का मूल्यांकन किसी और

के द्वारा वे भी कराना नहीं चाहते थे। मोतीशा की नामांकित वस्तुएं बाजार में विक्रय के लिए जावे, यह मोतीशा का अपमान है। कितनी भावुकता और उल्लास से मोतीशा ने रामजीभाई को उपहार दिए है। वे भी समाधान खोजने की मुद्रा में वहीं सिर पकड़कर बैठ गए।

उन दोनों के बीच संवाद चल रहा था, इतने में सेठ मोतीशा अचानक उसी कक्ष में पहुँच गए। दोनों को उदास और गमगीन देखकर मोतीशा चकरा गए। आज प्रसन्नता के माहौल में इतना सन्नाटा.....। मोतीशा ने आत्मीयता से विषाद का कारण पूछा।

रामजी भाई तो संकोच से जमीन खुरचने लगे। जब वीरचंद कुछ कहने के लिए मुँह खोलने लगे तो रामजी भाई संकेत से मना करने लगे। अब तो मोतीशा की उत्सुकता और बढ़ गई। उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा—तुम लोग आज भी मुझे कितना पराया समझते हो। जब तक अपने व्यक्तियों का विश्वास प्राप्त नहीं होता तब तक निःसंकोच संवाद संभव नहीं होता। लगता हैं, मैं तुम्हें अपना समझता हूँ, अधिकार भी जताता हूँ पर तुम लोग न अधिकार जताते हो, न अपना समझते हो। कहते—कहते मोतीशा की आवाज भर्रा गई।

अपने मालिक की उदासीनता और पीड़ा देखकर वीरचंद ने तुरंत रामजीभाई की स्थिति स्पष्ट कर दी और उनकी योजना से भी अवगत करा दिया। मोतीशा तुरंत

तमतमा गए। उन्होंने रामजीभाई को संबोधित करके कहा–तुमको मैंने हमेशा अपना निकट सहयोगी माना है। कभी स्वप्न में भी तुम्हें कर्मचारी नहीं समझा। जरूरत होने पर आधी रात के समय मैं तुम्हे पुकारता रहा हूँ। इतना गहन अपनत्व होने पर भी तुम औपचारिकता की दीवारों को नहीं ढहा सके।

अगर मेरे नामांकित आभूषण बाजार में चले जाते तो तुम भी समझ सकते हो कि मेरे बारे में क्या धारणा बनती?क्या मेरे बारे में लोग यह धारणा नहीं बनाते कि मैं अपने सहयोगियों का शोषण करता हूँ। क्या तुम मुझे अपने ज्येष्ठ भ्राता समझकर संकेत नहीं कर सकते थे कि तुम किन परिस्थितियों से गुजर रहे हो?अपनों का अपनापन समय पर ही तो छलकता है। लगता हैं, मेरे व्यवहार में कहीं भूल हुई है, जिससे वर्षों तक साथ रहने पर भी विश्वास का धरातल मजबूत नहीं हो पाया। खैर..... जो हुआ, उसे भूल जाओ। भविष्य में ध्यान रखना। मुझे कभी अंधेरे में रखने का प्रयास मत करना। मैं चाहता हूँ, हम सभी के हृदय में एक दूसरे के प्रति विश्वास और प्रेम की रागिनी बजे। हम सभी परस्पर सहयोग करके ही उद्देश्य की दिशा में आगे बढ़ सकते है।

अब तुम शीघ्र ही मूल एवं ब्याज जोड़कर पन्ना मुझे दे दो। मैं अपने आप मेहताजी से मिल लूंगा।

रामजीभाई की आँखें मोतीशा के इस उदार व्यक्तित्व से भीग गई। रामजीभाई का कण–कण जैसे मोतीशा के प्रेम में नहा उठा। मोतीशा जैसे दुर्लभ व्यक्तित्व को पाकर वे गौरव से भर गए। वे अपने भावों को रोक नहीं पाए। अपने स्थान से उठे और तुरंत श्रद्धा वश वे मोतीशा के पाँवों में झुककर अपनी श्रद्धा को आँसुओं के रूप में अभिव्यक्त करने लगे।

मोतीशा अचानक इस भावुक आक्रमण से हड़बड़ा गए। उन्होंने बलिष्ठ भुजाओं से रामजीभाई को उठाया और अपने चौड़े सीने से लगा लिया। दोनों ने एक दूसरे की आँखों में अपना प्रतिबिम्ब देखा और अंतर में बहती प्रेमभरे भ्रातृत्व की निर्मल उर्मियां उमड़ पड़ी। दोनों की आँखों से आनंद और हर्ष के आँसू उमड़ रहे थे।

कुछ देर पश्चात् भावनाओं के भंवरजाल से जब वे बाहर आए तब मोतीशा ने रामजीभाई की आँखों में अपने लिए विशिष्ट सम्मान के भाव देखकर कहा–भाई! अपने निकट के व्यक्तियों के सुख दुःख में उपयोगी होना मेरा कर्तव्य है। तुम तो महान् कलाकार हो परंतु सामान्य कर्मचारी की भी आंतरिक जिंदगी में झांकना मेरा कर्तव्य है। अगर वे शांत स्वस्थ प्रसन्न रहेंगे, तभी उनकी समस्त कार्यजा शक्ति का मैं लाभ उठा पाऊंगा। वे तनावग्रस्त रहकर क्या मेरी आकांक्षा की पूर्ति कर सकेंगे? उनके

सुख–दुःख में भागीदार बनकर मैं उन पर नहीं, स्वयं पर उपकार कर रहा हूँ।

रामजी भाई–नहीं सेठजी! आज तक हमने शोषण करते हुए पूंजीपतियों को खूब देखा है, परंतु आप जैसे कोमल, उदार, करूणावत्सल, माता–पिता से भी अधिक संरक्षण करने वाले स्वामी नहीं देखे है। उनकी निजी जिंदगी के आँसुओं को पोंछने वाले करूणाभरे स्वामी कहाँ प्राप्त होते हैं?सचमुच अपना रोम–रोम आपको समर्पित करे तौ भी ऋणमुक्त नहीं हो सकते। भर्राए हृदय से रामजीभाई ने कहा और उठकर अपने आवास की ओर चले गए।

सेठ मोतीशा दो घटिका पूर्व ही जागृत होकर आत्मस्थ होने का उपक्रम कर रहे थे। वे एक संपन्न और समाजसेवी होने के साथ–साथ अपने प्रति पूर्ण ईमानदार थे। जीवन की संपूर्ण भोग सामग्री जुटाकर भी उसमें आसक्त नहीं बने थे। उनका तन संसार में था। संसार की भौतिक सामग्री के मध्य वे निवास कर रहे थे पर उनकी अपनी चेतना जागृत थी। पूर्णतः वे महावीर के अनुयायी थे। व्यापार करना, यह उनके गृहस्थ जीवन की अनिवार्य और अपरिहार्य आवश्यकता थी। इसके अभाव में वे कर्तव्यच्युत हो सकते थे पर मात्र वे गृहस्थ ही नहीं थे। वे एक श्रावक पुत्र थे। माँ रूपल के दुग्धपान के साथ–साथ संस्कारों का भी अमृत पिया था। उन संस्कारों की क्रियान्विति ने ही उन्हें आज तक हमारे बीच अमर बनाए रखा है।

प्रतिक्रमण के द्वारा उन्होंने आत्मा पर लगी कर्मरज को धोया। संपूर्ण तन्मयता से नवकार महामंत्र का जाप किया। सामायिक और स्वाध्याय से निवृत्त होकर वे कक्ष से बाहर निकलने को ही थे कि एक करूण और तीखे क्रंदन ने *उनकी संपूर्ण चेतना को केन्द्रित कर दिया। वे उस आवाज की वास्तविकता को जानने के लिए झरोखे में आए और* ज्योंहि झरोखे से सड़क के नजारें को देखा, उनका सर्वांग कांप उठा।

नीचे कुछ राजकीय कर्मचारी कुत्तों की फौज को पकड़ कर विभिन्न अमानवीय यातनाएँ देकर उन्हें मौत के घाट उतारने को उतावले हो रहे थे। आँखों के सामने नाचती मौत ने उन कुत्तों की आवाज को और अधिक करूण एवं तीव्र बना दिया था।

मोतीशा ने उन आँखों में झांका, जिनमें मौत की छाया तैर रही थी। मोतीशा तुरंत उन आँखों की भाव–भाषा को ताड़ गए। उन्हें लगा कि वे जलती आँखें उनसे पूछ रही हैं कि–"किस अपराध की हमें सजा दी रही है?क्या मात्र इसलिए हम पर अत्याचार किए जा रहे हैं कि हम निहत्थे और अशरण हैं?क्या अधिकारों की सार्थकता किसी निरीह को मारना ही है।" मोतीशा उन आँखों में तैरते प्रश्नों का ज्यादा सामना नहीं कर पाए। उस समय तुरंत अपने आराध्य करूणा के सागर प्रभु महावीर का यह उद्घोष उनकी स्मृतियों के झरोखे में उतर आया–सभी प्राणी जीवन चाहते हैं। मृत्यु किसी का सपना नहीं है। स्थिति की भयावहता भी मौत का सामना करने के लिए प्रेरित नहीं करती। जीवन जीना यह प्रत्येक प्राणी का अपना मौलिक अधिकार है। आप किसी को जीवन नहीं दे सकते तो लेने का क्या अधिकार है? निःसंदेह प्रभु महावीर को भी अपने युग की इन्हीं अमानुषिक और हिंसक घटनाओं ने उद्विग्न किया होगा और इसी की प्रतिध्वनि में उन्होंने अपनी संपूर्ण ऊर्जा

लगाकर अहिंसा को प्रतिस्थापित किया होगा।

मोतीशा ने उन कर्मचारियों को तुरंत अपनी रौबदार आवाज से रोका और स्वयं तत्काल नीचे उतरे। उन्होंने तल्खी से पूछा–तुम किस के आदेश से इस प्रकार की जघन्य और अमानवीय क्रूरता ढा रहे हो?

कर्मचारियों ने परिचय पाकर मोतीशा का अभिवादन किया और कहा–सेठजी! हम तो ठहरे चिट्ठी के चाकर! आदेशों की अवमानना करना हमारे लिये कष्टदायक एवं घातक है। हमें अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर भी आदेश की पालना करनी पड़ती है। नौकरी प्रारंभ करने से पूर्व स्वामी के इंगित को अपनी जान देकर भी पूरा करने की शिक्षा हमें दी जाती है।

मोतीशा ने इस संहार का मूल कारण जानना चाहा। तब उन कर्मचारियों ने संक्षेप में इतिवृत्त सुनाते हुए कहा–सेठजी! कुछ दिन पूर्व किसी पागल कुत्ते ने एक मान्य अधिकारी को घायल कर दिया था। गवर्नर अपने प्रिय अधिकारी की इस हालत से क्रोधित हो उठे और उन्होंने प्रतिशोध की भावना से सम्पूर्ण नस्ल को समाप्त करने की आज्ञा प्रसारित करवा दी।

मोतीशा ने करूणार्द्र होकर कहा–पर एक कुत्ते के सामान्य अपराध के पीछे सम्पूर्ण जाति के प्रति बैर रखना न न्यायोचित हैं, न मानवोचित। मान लिया कि उसने उस

अधिकारी पर जानलेवा हमला किया हैं पर यह तो उसकी अज्ञानदशा और पशुता का प्रतीक हैं पर गवर्नर तो सभ्य, सुसंस्कृत और विवेकशील है। क्या पशुता और मानवता में कहीं कोई भिन्नता नहीं है ?पशु ने जो किया, वह सहज क्रिया थी, न कि संकल्पबद्ध या पूर्वाग्रह से पीड़ित थीं पर मानव उसकी इतनी खतरनाक और पूर्वाग्रह युक्त होकर प्रतिक्रिया करे, यह कहाँ न्यायसिद्ध है?क्या आज का मानव इतना सूख गया हैं कि उसमें क्षमा और करूणा की कुछ बूंदें भी अवशिष्ट नहीं रही।

वे राजकीय कर्मचारी मोतीशा की बातों का हृदय से यद्यपि समर्थन कर रहे थे पर राजाज्ञा की अवहेलना या उसका प्रतिकार करने का साहस उनमें नहीं था। वे भी जानते थे कि यह अनुचित है। इतनी सख्त सजा का प्रावधान तो कानून की किसी भी पुस्तक में नहीं है। परंतु सत्ता के सामने उनके विरोध की आवाज गूंगी थी। सत्ता के नशे में चूर उन सत्ताधारियों की समस्त संवेदनाएं पथरा चुकी थी। उनके समक्ष न कानून की कोई धारा का महत्व था और न किन्हीं कोमल भावों को पहचानने की क्षमता थी।

मोतीशा का संवेदनशील मन दर्द से भीग गया। उनकी समस्त भावनाएं इस घटना से आंदोलित हो उठी और रोम–रोम कुछ करने को तड़फने लगा। वे टूटे दिल से ऊपर आए पर उनकी आँखें बरस रही थी। वे विचारों में डूब

गए कि क्या करें जिससे जीवदया के प्रति जनता को जागरूक किया जा सके।

दीपा ने मोतीशा को विचारों में डूबा देखा तो दो क्षण सोचती रही कि सुबह–सुबह किस घटना ने स्वामी के हृदय को चिन्तनशील बनाया है?उसका अपना कोई आचरण नहीं था, जिससे उसके स्वामी आहत हो। फिर बेटा..... वो तो अभी उठा ही नहीं है। शयन तक तो पूर्ण मानसिक स्वस्थता थी। क्या बात है?क्या कोई अनहोनी घट्ना घटी है?पर कहीं से न कोई संदेश आया है, न कोई आगंतुक आया हैं, अतः अनहोनी घटना की कल्पना भी निराधार है।

दीपा ने मधुर आवाज में कहा–स्वामी! कोई अनहोनी घटना?हाँ दीपा! मैं आज अत्यंत तनाव महसूस कर रहा हूँ। मुझे लगता है मेरा वजूद निरर्थक है। मेरे समक्ष प्राणियों को यातना देकर मौत के मुँह में धकेल दिया जाता है। यह मेरा पौरुष, जिस पर मुझे नाज था, आज चूर–चूर हो चुका है। उनकी आवाज में जमाने का दर्द समाया हुआ था।

दीपा आवाज की गंभीरता पर चौंक पड़ी। इतना दर्द... ...आवाज नहीं जैसे कराह रहे हैं। जरूर किसी गंभीर घटना ने इन्हें घेर लिया है। उसने पुनः पूछा–मैं सम्पूर्ण घटना की गहराई में जाना चाहती हूँ।

सुनो दीपा! आज प्रातः बड़ा ही खौफनाक दृश्य था। अपने प्रिय व्यक्ति के सामान्य दर्द से जहाँ हम व्यथित हो

जाते है, वहीं निरीह और अनाथ कुत्तों की संपूर्ण जाति पर प्रहार हो रहा है। गवर्नर संपूर्ण नस्ल का बैरी बनकर उनकी जान ले रहा है। बताओ दीपा! तुम मेरी पत्नी ही नहीं, हृदय की, भावनाओं की भागीदार हो। मैं क्या करूं?क्या मेरा मनुष्यत्व इतना अन्याय झेल सकता हैं?मेरा रोम–रोम सुलग रहा है। तुम मेरी प्रेरणा दीप बनकर मेरी इस स्थिति में मेरा कर्तव्य स्पष्ट करो।

दीपा मोतीशा के भावुक मन से परिचित थी। इस स्थिति में मोतीशा तो क्या, कोई भी अहिंसक उद्वेलित हो सकता था। तो फिर मोतीशा तो सहज स्वाभाविक मोम हृदय ही थे। परदुःखकातर उनकी आत्मा का प्रत्येक प्रदेश रो रहा था। दीपा भी कुछ क्षण प्रस्तर हो गई। उसका नारी हृदय चीत्कार उठा।

मानव जीवन सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट सृजन है। उसकी क्षमता असंदिग्ध और अथाह है। वह अपनी क्षमता का आंशिक उपयोग भी करे तो नित नए कारनामों को जन्म दे सकता है। उसके कारनामे इन्सानियत के गौरव भी बनते हैं, तो कंलक भी बन सकते है। यह उसके अपने विवेक पर निर्भर करता हैं कि वह रचनात्मक दिशा में अपना ध्यान केन्द्रित करता हैं या विध्वंसात्मक शक्ति की प्राप्ति में।

इन्सान इन्सान की आकृति में रहकर भी क्यों पाशविकता पर उतर आया है?क्या जीने का अधिकार मात्र

उसी को है?अगर सत्ता और शक्तिसंपन्न होने के कारण वह अपने से कमजोर प्राणियों को तड़फा सकता हैं, तो क्या उससे उपर कोई सत्ता नहीं है?फिर क्या उसी वेदना से उसे नहीं गुजरना होगा, जिस वेदना से गुजरने के लिए वह आज किसी को मजबूर कर रहा है?

क्या दुःख देकर सुख पाया जा सकता है?अगर आप किसी के लिए अपना सुख कुरबान करते हो, तो आप दैवत्व की ऊँचाईयों पर आरूढ़ हो जाते हो। अगर दैवत्व की अपने आप में स्थापना न कर सको तो जो जिस हाल में हैं, उससे छेड़छाड़ कर हैवान का चोला तो न पहनो।

प्रकृति के सारे घटक अपने अपने दायरे में सीमित रहते हैं, पर एक इन्सान ही ऐसा है, जो सभी से छेड़छाड़ कर अपने आप को गौरवान्वित समझता है। मानव अपने अस्तित्व के लिए दूसरों को मिटाना अपना अधिकार क्यों समझता हैं?अगर सत्तासंपन्न मानव अपने अस्तित्व को दूसरों पर कुरबान करे तो.....।

पर दीपा किसे कहती अपनी यह भावना?मोतीशा तो वैसे भी इन संस्कारों का प्रतिनिधित्व करते थे। उसकी अपनी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहकर मोतीशा के हृदय को हल्का करे! दीपा अन्यमनस्कता से कटोरे के दूध को चम्मच से निरर्थक हिलाती रही।

मोतीशा ने व्यग्रता से कहा–कहो दीपा! मैं कैसे इन

प्राणियों को मौत के जाल से मुक्त कराऊं?मेरी आँखों में अभी भी उनकी तड़फती सूरत नृत्य कर रही है। मेरे पौरुष को चुनौती देते हुए मानों वे प्रश्न कर रहे हैं कि क्या यहीं हैं तुम्हारी अहिंसा? क्या यही हैं महावीर और बुद्ध की धरती पर फैला अहिंसा का प्रकाश, जिसमें हम निरपराधी अपने मौत के श्याह अंधेरे को भोगने के लिए मजबूर हो रहे हैं?

दीपा ने अपना मौन तोड़ा। कुछ संयत होकर उसने अपने प्रियतम से कहा–निःसंदेह आपकी भावनाएं अपने स्थान पर उचित हैं पर भावनाओं का आवेश ही कार्य की क्रियान्विति में उपयोगी नहीं होता। उसके लिए आवश्यक है– यथार्थ और कल्पना के मध्य संतुलन स्थापित करना। आपकी भावनाएं सत्ता को इस योजना से विरत नहीं करेगी। आप इसके लिए जनमानस को आंदोलित कीजिए और सत्ता को यह क्रूर निर्णय वापस लेने के लिए विवश कर दीजिए।

ऐसा कोई असंभव कार्य नहीं, जिसे मानव शक्ति चाहकर संभव नहीं बना सके। जनशक्ति के समक्ष तो राजशक्ति को झुकना ही पड़ेगा। आप योजनाबद्ध अपने कार्यक्रम का निर्धारण करके अवश्य ही अपनी भावनाओं को साकार कर सकते हैं। जनता की जागरूकता ही राजशक्ति को चुनौती दे सकती है।

मोतीशा ने दीपा की समयोचित सलाह सुनी, उन्हें

पसंद आई। मोतीशा में यह झूठा मिथ्या भ्रम कभी नही था कि नारी मात्र रूप और सौन्दर्य से ही पति की डोर को अपने हाथों में लेकर घुमाती रहती है। वे तो मानते थे कि नारी सृष्टि की वह रचना हैं, जिसकी शून्यता मात्र नीरसता और कठोरता का ही अहसास करवाती है। नारी तो संभवतया पुरुष के अभाव में भी जिन्दगी जी सकती है। पर पुरुष नारी के अभाव में अकेलेपन की पीड़ा से व्याकुल हो ही जाता है।

मोतीशा का मन अवसादग्रस्त था। उनकी संवेदनाएं इतनी व्यापक थी कि उन्हें दूसरों का दर्द भी अपना ही लगता था। "आत्मवत् सर्वभूतेषु" का सिद्धांत मात्र बुद्धि या दिमाग तक ही सीमित नहीं था। वह उनके रोम–रोम में व्याप्त होकर उनके जीवन की प्रत्येक क्रिया में दृष्टिगत होता था। दीपा ने पुनः दुध लेने का आग्रह किया पर जब हजारों आत्माएं प्राणरक्षा की चिंता में व्याकुल होकर विलाप करे, उस समय मोतीशा प्रफुल्लता से दुग्धपान करे, निःसंदेह यह असंभव था।

उन्होंने इस घटना से अपना व्यक्तिगत विरोध प्रदर्शित करते हुए संकल्प ग्रहण किया कि जब तक मैं इस दिशा में कोई सकारात्मक और दीर्घजीवी योजना का सूत्रपात नहीं करूँगा, तब तक के लिए दूध का त्याग रखूंगा।

मोतीशा भाषण या वाक्चातुर्य का प्रदर्शन करके अपने नाम की ख्याति नहीं चाहते थे। वे त्याग की ऊर्जा से भरकर

अपनी कार्यसिद्धि करते थे। आज मानव समस्त अपेक्षाएं दूसरों से पूरी करवाना चाहता है। वह स्वयं अकर्म रहकर नेता बनना चाहता है। भीड़ का एक हिस्सा बनकर रहने में संकोच का अनुभव होता हैं पर नेता के चरित्रगत गुणों की दृढ़ता और उनके आचरण से कोसों दूर रहना चाहता है।

मोतीशा नेता नहीं थे, वे मुमुक्षु थे। उनकी आत्मा में करूणा सहज स्वाभाविक थी। कृत्रिमता से कोसों दूर वे प्राणीमात्र के प्रति अनुकंपा से भरे हुए थे। सौभाग्य से उन्हें अपनी सहगामिनी भी वैसी ही मिली थी। अतः उन्हें मानसिक अशांति का कभी सामना नहीं करना पड़ा। दीपा ने मोतीशा के संकल्प का अनुमोदन किया।

मोतीशा अपने विचारों की क्रियान्विति और उसी की योजना में खोए ऑफिस पहुँचे। परंतु मन की एकाग्रता स्थिर नहीं हो पाई। उन्होंने अपने निकट के कुछ मित्रों को आदमी भेजकर बुलवाया और अपनी मनोदशा का स्पष्ट शब्दों में चित्रांकन करते हुए भावपूर्ण शब्दों में मूक जानवरों की पीड़ा अभिव्यक्त की।

यह भारत महावीर और बुद्ध की करूणा से अनुप्लावित धरती है। यहाँ अनुकम्पा और करूणा के संस्कार मानव में जन्मजात है। मूक प्राणियों की भावपूर्ण पीड़ा की अभिव्यंजना ने लोगों को भी आंदोलित कर दिया। वे तुरंत आवेश में चीख पड़े। वे सभी संकल्पबद्ध हो गए कि

"आप जो भी करेंगे, उसमें हम कंधे से कंधा मिलाकर साथ चलेंगे। इसके लिए चाहे हमें अपने प्राणों की आहूति क्यों न देनी पड़ें?

मोतीशा की आँखों में एक चमक आ गई। उन्हें आत्मविश्वास तो था ही पर अब वह विश्वास अनेकों का सहयोग और साथ पाकर अधिक प्रबल बन गया। उन्होंने योजना बनाकर समस्त हिन्दू समाज के सामने प्रस्तुत की। एक स्वर से निर्णय की योजना हुई कि 7 जून (1832) को अहिंसात्मक रूप से प्रबल जनमत के साथ विरोध कर प्रदर्शन किया जाए।

ठीक समय पर नियत स्थान पर हजारों जीवदया प्रेमी लोग एकत्रित हो गए। सभी के हाथों में विभिन्न अहिंसात्मक नारों की तख्तियां थी। बिना हंगामे के उस शांतिमार्च को देखकर दर्शकों ने मोतीशा के नेतृत्व की दाद दी। सरकार ने उस आंदोलन की गंभीरता को देखकर प्रारंभ में ही दबा देना उचित समझा।

उसने अपनी सेना भेज दी। उन्होंने शांतिपूर्वक *आंदोलन कर रही जनता को अपनी सत्ता के हथियार द्वारा* तितर–बितर कर दिया। भविष्य में कभी आंदोलन की संभावना न बने, इस हेतु भयभीत करने के लिए आंदोलनकारियों पर विभिन्न प्रकार के मुकदमें चलाकर उन्हें मानसिक रूप से त्रस्त कर दिया। कुछ दृढ़ संकल्पी

कार्यकर्ताओं को छोड़कर अन्य सारी भीड़ छितरा गई।

मोतीशा के चेहरे पर फिर भी निराशा के कोई चिन्ह नही थे। वे जानते थे–ऐसी दीर्घजीवी योजनाएं लम्बा परिश्रम और गंभीर त्याग मांगती है। प्रारंभिक क्षणों में ही बिना कुछ तपे अगर सफलता प्राप्त हो जाए तो सफलता मूल्यहीन हो जाती है। सरलता से प्राप्त सिद्धि रोमांच का अनुभव नहीं कराती। योजना का मूल्यांकन जनसाधारण तभी समझता हैं, जब उसके लिए लम्बा सफर किया जाए।

मूक और निराश्रित प्राणों को आह्लादित करना, उनके जीने के मौलिक अधिकारों की प्राप्ति में सहयोग देना, एक बहुत बड़ा यज्ञ है। मोतीशा जानते थे कि इस यज्ञ में कितने श्रम की आहूति देनी हैं अतः सरकारी बाधाओं का पूर्वाभास होने के कारण इस बाधा ने उन्हें अशांत यां भयभीत नहीं किया।

उन्होंने पुनः मुंबई के प्रमुख समाज सेवियों की एक बैठक बुलाई। इन सभी ने उत्साह से घर–घर जाकर इस योजना से लोगों को जोड़ा। लाखों का स्वयं का व्यापार, व्यस्तम जिंदगी, फिर भी करूणा की भावना ने उन्हें सब कुछ विस्मृत करने के लिए प्रेरित किया।

उनके साथ जुड़े व्यक्तियों की मनोवृत्तियाँ भिन्न–भिन्न थी। पर लक्ष्य सभी का एक था। कुछ स्वेच्छा से, कुछ दबाव से, कुछ उन्हें आदर्श मानकर, कुछ परलोक

चिंता से जुड़े थे। जनसंकुल से आक्रांत उस माहौल में मोतीशा का व्यक्तित्व चुंबकीय आकर्षण का काम करता था।

माहौल में अनोखी शांति थी। सुई गिरने की आवाज भी उस सन्नाटे को चीर सकती थी। सभी के चेहरों पर एक उत्सुकता थी। मोतीशा कैसे अपनी लक्ष्यसिद्धि करते हैं और उसमें हमारी क्या भागीदारी हो सकती है, यह जानने की जिज्ञासा सभी में थी। मोतीशा की कार्यशैली, उनके उत्साहित समर्पण से यह अन्दाज तो निकल ही गया था कि अवश्य ही वे मंजिल को छू लेंगे, पर कैसे?बस यही प्रश्न सभी की चेतना को झंकृत कर रहा था।

आगंतुक विशिष्ट प्रभावशाली व्यक्तियों पर मोतीशा ने एक आशा भरी नजर डाली और संबोधित किया–बंधुओं! आपको ज्ञात होगा कुछ दिनों से हमारे शहर में निर्ममतापूर्वक प्राणियों का वध स्वयं सरकार की अनुमति से किया जा रहा है। हमारा कर्तव्य और हमारी संवेदनाएं अधीर और व्याकुल होकर इस अपकृत्य को रोकने के लिए हमें ललकार रही है। महापुरुषों का यह शाश्वत संदेश हैं कि–हमें दूसरों को पीड़ा पहुँचाकर कभी तृप्ति का अनुभव नहीं करना चाहिए क्योंकि अंततोगत्वा वह पीड़ा हम अपने आपको ही पहुँचा रहे हैं। जिस प्रकार अन्याय करना पाप है, वैसे ही अन्याय को आँख मूंदकर सहना भी पाप हैं अतः हम

अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर इस क्षेत्र में बहती खून की धारा को रोके।

तुरंत एक व्यक्ति, जो मोतीशा की क्षमता को तौलना चाहता था, उसने खड़े होकर कहा—पर सेठजी! जब रक्षक ही भक्षक बन जाते हैं, तब किसके सन्मुख जाकर रक्षा की गुहार की जाए और राजसत्ता का विरोध करके उनकी नाराजगी का दंड कौन भोगे?

मोतीशा उसकी बात सुनकर आवेश से भर उठे। उफ्! इतनी शक्तिहीनता। क्या मानवजाति इतनी कायर हो गई हैं कि उसका खून खौलता ही नहीं?क्या उसमें साहस और शौर्य का इतना अभाव हो गया हैं कि वह जरा सा उचित विरोध करने में भी हिचकिचाहट का अनुभव करता है।

मन ही मन मोतीशा ने अपने आवेश को नियंत्रित करके पूछा—अगर कोई शक्तिशाली आपके मकान पर जबरन आधिपत्य जमा ले, तो क्या आप उस स्थिति में भी यही कहेंगे कि कौन विरोध करें?

तुरंत वह और उसके समर्थक बोल पड़े—ऐसा कैसे हो सकता हैं?हम अपनी जब्त संपत्ति को पाने के लिए पूरा जोर लगा देंगे। इस अन्याय का पुरजोर शब्दों में विरोध किया जाएगा।

मोतीशा उन वेदना के क्षणों में भी मुस्काए बिना नहीं

रहे। कितने स्वार्थ भरे विचार। मात्र अपनी सुरक्षा की सावधानी। क्या हमारे हृदय से संस्कार, हमारी अपनी परोपकार वृत्ति और परस्पर सहयोग की भावना समाप्त हो गई ?हमारे हृदय में हिंसा और अन्याय के विरूद्ध लड़ने की क्षमता क्यों नहीं रही? क्यों हमने अपनी क्षमता और योग्यता को परिवार की चारदीवारी तक सीमित कर दिया है?मोतीशा ने वेदनाभरे प्राणों से कहा–बंधुओ! तो क्यों नहीं हम अपने विलासिता और स्वार्थभरे वातावरण से ऊपर उठकर अगणित प्राणियों की सुरक्षा के लिए कारगर कदम उठाते?

हिंसा करना जितना पाप हैं, हिंसक राजा के शासन में मूक बनकर उस अन्याय को सहन करना भी उतना ही पाप है। क्या हिंसा से कोई तृप्त बना हैं?इसी प्रकार से खून की नदियाँ बही तो हमारी संस्कृति रसातल में चली जाएगी, साथ ही प्रेम और करूणा की सात्विकता भी मानवों के हृदय से नष्ट प्रायः हो जाएगी।

भाईयों! अगर हम इन मूक प्राणियों की पुकार नहीं सुनते तो फिर हमारे कानों की क्या उपयोगिता हैं?क्या हम अपना भरण पोषण करने तक ही सीमित हैं?अपना जीवन तो पशु भी चलाते हैं। क्या हमारे और पशुओं के जीवन में कोई अंतर नहीं है? अगर आपका पुरुषार्थ ऐसी संवेदनशील घड़ी में भी सुषुप्त रहता है तो जानवर हमसे बेहतर है। कम से

कम वे पशु या कमजोर तो कहलाते हैं। जागो बंधुओं! इतिहास के पृष्ठ उन महापुरुषों के नाम को अंकित करने में गौरव समझते हैं, जो वक्त की सामान्य धारा में न बहकर किसी नई और भव्य पगडंडियों का निर्माण करता है।

हमें वक्त की पुकार को सुनकर अपने अंदर सोयी महावीर की करूणा को जगाना होगा।

मोतीशा के भावभरे और जोशीले भाषण से जनता की सुषुप्त करूणा अंगड़ाई लेकर जाग उठी। कुछ नवयुवकों के चेहरे तो जोश से लाल हो गए। आँखों से अंगारे बरसने लगे। तुरंत प्रतिक्रिया सामने आई। कार्यक्रम के संयोजक मोतीशा नियुक्त हो गए। मोतीशा ने तीन दिन का समय मांगा ताकि कार्यक्रम संतुलित रूप से सफलता के साथ मुकाम तक पहुँचे।

मोतीशा आज कोमल और मखमली सेज पर भी बार–बार करवटें बदल रहे थे। बेचैनी उनके अंग–अंग से टपक रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे उनके अंदर कोई संघर्ष चल रहा है और वे किसी अंतिम निर्णय तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। दीपा की जब अचानक आँख खुली तो देखा–उसके स्वामी की आँखें सोचने के अंदाज में बार–बार सिकुड़ रही है। वह धीमे से उठकर बैठी और कहने लगी–क्या कोई शारीरिक रूग्णता है?आप अकेले इतनी देर से अस्वस्थता का अनुभव कर रहे है। क्या मुझे संकेत नहीं

कर सकते थे?

मोतीशा बोले–शारीरिक परेशानी का अनुभव होता तो अवश्य ही तुम्हें जगाता पर मेरी परेशानी तो मानसिक हैं, जिसका तुम्हारे जागने से कोई हल नहीं निकलना हैं।

दीपा ने गंभीरता से कहा–देव! मैं जानती हूँ, इन दिनों आपका चिंतन मात्र एक ही लक्ष्य को समर्पित हैं। पर नीरव सन्नाटे में अकेले सोच–सोचकर परेशान होने की अपेक्षा अपनी परेशानी को मुझसे बाँटने में कोई खतरा तो नही हैं? शास्त्रों में पत्नी को मित्र की संज्ञा से जो अभिहित किया है, वह इसी संदर्भ में तो सार्थक है।

शाम की सभा में क्या निर्णय हुआ?मोतीशा ने संपूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। दीपा ने यकायक कहा–पर देव! ऐसे समय में आप अपने इष्ट दादा गुरुदेव श्री कुशलसूरि की आराधना क्यों नहीं करते? इस पुनीत कार्य में उनके आध्यात्मिक आशीर्वाद का उपयोग नहीं होगा तो कब होगा?हम हमारी संपूर्ण क्षमता का तो उपयोग करेंगे ही, साथ ही उनका संबल भी प्राप्त हो जाए तो सफलता में कोई संदेह नहीं होगा।

मोतीशा को भी यह बात पसंद आ गई। उन्हें गुरुदेव पर पूर्ण आस्था थी। संकट काल में गुरुदेव के नाम का संबल उन्हें साहस देता था। उन्होंने उसी समय निर्णय ले लिया कि वे प्रातः होते ही आयंबिल के अनुष्ठान द्वारा गुरुदेव

का अदृश्य सहयोग और आशीर्वाद मांगेगे।

इस निर्णय ने मोतीशा के हृदय में आशा और उत्साह का संचार किया। अब मोतीशा सहज थे। मानसिक उद्विग्नता तिरोहित हो चुकी थी। दीपा के सुझाव ने मोतीशा को अनिर्णय की स्थिति से उबरने में मदद की। अब विश्राम के क्षणों में किसी प्रकार की बाधा नहीं थी। सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत हुई।

प्रतिदिन की अपेक्षा आज वे प्रातः और अधिक जल्दी उठे। एकांत कक्ष में जाप योग्य सामग्री व्यवस्थित करके मोतीशा उत्साह से जाप में एकाग्र बन गए। मन, वचन, काया की पूर्ण शुद्धता थी। आत्मा का प्रत्येक परमाणु जाप पर केन्द्रित था। न समय का भान था, न शरीर का होश। मात्र था तो एक संकल्प, जिसकी संपूर्ति हेतु गुरुदेव का वरदहस्त पाना था।

परम करूणासागर गुरुदेव! वात्सल्य छलकाती परम पवित्र तेजस्वी मुखमुद्रा! स्नेहसरिता बहाती आँखें! अमृत रस से सराबोर प्रत्येक रोमराजि । जिनका संपूर्ण जीवन ही अहिंसा के चारों ओर मंडराता रहा! उनका प्रतिबिंब ही ऐसा है कि जो भी देखे... मंत्रमुग्ध होकर देखता रह जाए। फिर मोतीशा भला क्यों न प्रभावित होते?

स्वर्ग के अलौकिक साम्राज्य में भक्त की पुकार ने गुरुदेव के हृदय को विचलित कर दिया। उन्होंने अपने

ज्ञानबल द्वारा चारों ओर निरीक्षण किया और ज्योंहि पता लगा कि पुण्यशाली मोतीशा उन्हें एक शुभ प्रवृत्ति में सहयोग हेतु स्मरण कर रहे हैं, तुरंत दौड़ आए।

पूर्ण एकाग्रता से मंत्रजाप करते लगभग चौबीस घण्टे बीत चुके थे। चेहरें पर वही उल्लास टपक रहा था। जाप की निरंतरता से चेहरे पर अनोखा तेज चमक रहा था। अचानक शान्त और नीरव सन्नाटे को तोड़ती आवाज उभरी–मुझे क्यों याद किया? मोतीशा पलभर तो अचंभे से भर गए। क्या वास्तव में ही कोई आवाज हैं या मेरे मन का भ्रम?पुनः दुबारा वही आवाज कानों से टकरायी तो मोतीशा को विश्वास हो गया कि मेरी साधना सफल हो गई है। लक्ष्य की पवित्रता ने मेरे अनुष्ठान को अतिशीघ्र सफल बना दिया हैं। वे उठ खड़े हुए। उन्होंने विनम्रता से वंदना करके निवेदन किया–प्रभो! आप ज्ञानी हैं। आप स्वयं ज्ञान द्वारा मेरे मनोरथ को जान सकते है। मूक प्राणियों पर हो रहे अत्याचारों को समाप्त करने में मैं अपनी सामान्य भूमिका निभा सकूं ऐसा आशीर्वाद दीजिए गुरुदेव!

गुरुदेव ने दो पल ध्यान किया और तुरंत "तथास्तु" कहकर अदृश्य हो गए। कक्ष दिव्य प्रकाश और भीगी–भीगी खुशबू से भर उठा।

मोतीशा का हृदय गुरुदेव का वरदान पाकर भक्ति से गद्‌गद् हो उठा। चेहरा आनंद से पुलकित हो गया। उन्हें

लगा–जैसे अलौकिक और अखूट संपत्ति उन्हें प्राप्त हो रही है। वे तुरंत कक्ष से बाहर आए। उन्होंने अपनी प्रिय सहचरी दीपा को धीमे से आवाज देकर जगाया। दीपा चेहरे पर बिखरी आभा को देखकर समझ गई थी कि स्वामी की अभिलाषा पूर्ण हो गई हैं। उसने पुलकित बदन से बधाई दी।

आज मोतीशा के अंग–अंग में स्फूर्ति थी। पूर्ण आत्मविश्वास का गौरव उनके अंग–अंग से छलक रहा था। सीना गौरव से फूला हुआ था। अदृश्य सत्ता अवश्य ही कुछ ऐसे समीकरण बनाएगी, जो मेरे लक्ष्य सिद्धि की सीढ़ी बनेगी। सोचते–सोचते मोतीशा कल्पनाओं में डूब रहे थे।

प्रातः होते होते मोतीशा के हृदय में अचानक एक भावना जगी कि सम्पूर्ण हिन्दू समाज में परम मान्य शक्तिशाली गोस्वामीजी की अपने घर पर पधरावणी करवायी जाए।

स्वयं चुस्त जैने होने पर भी सर्वधर्म समन्वय के वे परम पक्षधर थे। अपने आराध्यदेव द्वारा प्ररूपित नियम और आचार संहिता के प्रचार में किसी भी पवित्र माध्यम का उपयोग करने के वे प्रबल समर्थक थे। उनके रग–रग में एक ही पवित्र भावना रमण कर रही थी कि प्राणी मात्र के सुख और संतोष की वृद्धि के लिए अधिकाधिक मात्रा में उपाय किये जाए।

मोतीशा के हृदय की उदारता और पवित्रता का यह

एक नमूना था कि व्यक्तिगत पुरुषार्थ और साधना का उपयोग जनहित में किया। मोतीशा चाहते तो अपनी साधना के अंत में आशीर्वाद स्वरूप विशाल धन संपदा का कोश या किसी प्रदेश का ताज माँग सकते थे पर ऐसी तुच्छ अभिलाषा के लिए मोतीशा के उदार व्यक्तित्व में कोई स्थान नहीं था।

अपने निकटवर्ती चन्द मित्रों को लेकर मोतीशा स्वामीजी के स्थान पर पहुँचे और अपने निवास स्थान पर पदार्पण हेतु निवेदन किया। जाति–धर्म की भिन्नता होने पर भी मानवता की भावना से ओतप्रोत स्वामीजी ने स्वीकृति दे दी। स्वामीजी के अनुयायियों को बड़ा अचंभा हुआ। पुनः पुनः निवेदन पर भी स्वामीजी का आगमन असंभव माना जाता था जबकि बिना दबाव और आग्रह के बड़ी सहजता से उन्होंने मोतीशा के निवेदन को स्वीकार कर लिया था।

उत्साह से मोतीशा ने गोस्वामीजी के आगमन की भव्य और विशाल पैमाने पर तैयारियां करवायी। सभी निकटवर्ती परिचितों को आमंत्रित किया। सेठानी दीपा ने तरह–तरह की भोजन सामग्री द्वारा हवेली को महका दिया। ऐसा लग रहा था, जैसे मोतीशा के घर किसी विशाल उत्सव की तैयारी हो रही है।

ठीक समय पर विशाल लवाजमे के साथ स्वामीजी का शिष्यवृंद सह आगमन हुआ। गोस्वामीजी प्रशांत, सरल

और मंत्र–तंत्र के पूर्ण विज्ञाता थे। जनता में उनके प्रति गहरी श्रद्धा थी। हजारों लोग ऐसे थे जो उनके दर्शन किए बिना मुँह में पानी भी नहीं डालते थे। कई बड़े–बड़े राज्याधिकारी भी उनकी प्रसन्नता को अपना सौभाग्य समझते थे। पूर्ण सात्विक और ब्रह्मचारी गोस्वामीजी के आगमन के उपलक्ष्य में सेठ मोतीशा ने अपनी संपन्नता और उदारता का खुलकर उपयोग करते हुए चांदी के बड़े थाल में 15 हजार की विशाल राशि आश्रम की सेवा और व्यवस्था हेतु समर्पित की।

स्वामीजी आश्चर्यचकित रह गए। इतनी बड़ी राशि एक मुश्त में तो आज तक आश्रम को कभी भी प्राप्त नहीं हुई थी। उनके अपने निकटवर्ती सूत्रों से भी इतनी राशि उपलब्ध नहीं हुई थी। मोतीशा के साथ ही उनकी पत्नी दीपा एवं अन्य लोगों ने भी अच्छी मात्रा में राशि भेंट की।

गोस्वामीजी ने अत्यंत आत्मीय, वात्सल्यभाव से कहा–सेठ! तुमने आश्रम के लिए इतनी सेवा की। बताओ मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूं?मोतीशा ने विनम्रता से कहा–स्वामीजी! आप स्वयं प्राणी मित्र है। परोपकार आपकी नस–नस में है। अट्ठारह पुराणों का निष्कर्ष यह है कि परोपकार जैसा पावन कार्य नही है।

आप अपने प्रभुत्व एवं प्रभाव का उपयोग करते हुए मूक प्राणियों की सुरक्षा हेतु कोई कदम उठाइए।

गोस्वामी इस प्रस्ताव से चकरा गए। यह कैसा निःस्वार्थ भक्त! इतना सुन्दर मौका पर याचना की भी तो अपने लिए नहीं, अबोले प्राणियों के लिए। धन्य है उस कलाकार को, जिसने इतने सुंदर संस्कारों की जीवंत मूर्ति तैयार की! वह बाग धन्य है, जिसमें ऐसा महकता गुलाब पनपा। अगर यह चाहता तो मुझे सीढ़ी बनाकर किसी उच्च सत्ता को भी प्राप्त कर सकता था।

गोस्वामीजी ने आनंद से पूछा–मेरे द्वारा तुम किस प्रकार का सहयोग चाहते हो?मोतीशा ने तुरंत शहर में फैली हिंसा की घटनाओं पर प्रकाश डालते हुए हाथोंहाथ पांजरापोल की स्थापना हेतु प्रस्ताव भी धर दिया। गोस्वामीजी ने तुरंत सहमति देते हुए कहा–भक्त! कल का सूर्योदय अवश्य नया उजाला लेकर आएगा। मोतीशा की प्रसन्नता असीम हो गई। स्मित उनके चेहरे पर छलक पड़ा।

वैष्णव समाज में खलबली मच गई। चारों ओर चर्चा का बाजार गरमाने लगा। आज गोस्वामीजी ने हवेली को बन्द करवा दिया है। सारे अनुयायी थक गए पर द्वार कोई भी नहीं खुला सका। अनेकों लोगों की यह प्रतिज्ञा थी कि स्वामीजी के दर्शन पश्चात् ही पानी का घूंट लेना। दर्शनाकांक्षी अकुलाने लगे। चारों ओर फुसफुसाहट होने लगी। सभी जानते थे कि अवश्य अनहोनी घटी हैं, जिस

कारण स्वामीजी ने नाराज होकर एकांतवास स्वीकार किया हैं! पर क्या अनहोनी घटी है, यह प्रश्न अनुत्तरित था। चारों ओर घूमकर प्रश्न पुनः उसी स्थान पर आ जाता था, जहाँ से प्रारंभ हुआ था।

व्याकुलता चरम सीमा पर पहुँची। राज्याधिकारी भी दौड़ते आए। एक भय सभी को खा रहा था कि कहीं भावुकता में आकर भक्तगण किसी नई घटना को जन्म न दे दें।

अंत में विचार विमर्श करके गोस्वामीजी के प्रमुख शिष्य के पास कुछ चुने हुए प्रतिनिधि पहुँचे! आग्रहपूर्ण निवेदन पर शिष्य ने संक्षेप में इतना ही बताया कि पूज्यवर जानवरों पर हो रहे अत्याचारों को रोकना एवं विशाल पांजरापोल की व्यवस्था चाहते है। जब तक इन कार्यों की सम्पूर्ति नहीं होती हैं, तब तक दर्शन बंद रहेंगे।

अनुयायी वर्ग के पास विश्वस्त समाचार पहुँच गए। सारे संदेह के बादल छंट गए। अब तो निर्णय करना था। या तो दर्शन से वंचित रहो और या आदेशों का पालन।

वह युग श्रद्धा और आस्था से जगमगाता युग था। जनता में अपने आराध्य और पूजनीय के चरणों के प्रति सर्वात्मना समर्पण का संगीत बजता था। एक बार स्वयं को शिष्य के रूप में समर्पित करने के पश्चात् उनके आदेश की अवहेलना किसी भी कींमत पर संभव नहीं थी। माघ की यह

उक्ति कि "आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया" उनकी प्रत्येक क्रिया में झलकती थी। सोचने का अवकाश ही नहीं था। रग–रग में एक मंत्र था, अगर गुरु के प्रति श्रद्धा हैं, तो उनके प्रत्येक आदेश को सिर झुकाकर स्वीकृति देना हमारा कर्तव्य है।

संगठन सामूहिक हित का आधार पाकर ही शिखर की बुलंदियों को छूता है। प्रत्येक व्यक्ति की सुविधा भिन्न हो सकती हैं पर सत्य सभी का एक होता है। संगठन के विकास में संगठन से जुड़े लोगों को आहुतियाँ देनी पड़ती है और उन आहुतियों से ही संगठन का यज्ञ सदा प्रकाशमान रहता है। आहुतियों के अभाव में संगठन कभी विकसित पेड़ बनकर विश्रामस्थल नहीं बन सकता।

संगठन समर्पण का आधार चाहता है। वहाँ तर्क परक क्रियाओं को कोई स्थान नहीं मिलता। प्राचीन इतिहास पर सरसरी निगाह डाले तो यह तथ्य प्रकट हो ही जाएगा कि परम्परा के विकास का मूल कारण तर्करहित आदेश की पालना थी। इसका अर्थ यह नहीं कि हम अपने चिंतन को गिरवी रख दें। जहाँ चर्चा को अवकाश देना हो, खुलकर अपने मत को प्रकट करे पर अंतिम निर्णय अपने आराध्य या आदरणीय का आदेश ही बने।

वैष्णव समाज संख्या की दृष्टि से समृद्ध था। पर उन्होंने अपने सारे नीतिगत निर्णय गुरुचरणों में समर्पित कर

दिए थे। उन्होंने आनन–फानन में आदेश पालन का निर्णय ले लिया। इस पांजरापोल की स्थापना में यह अद्भुत विशेषता थी कि इसमें सभी कौम बिना भेदभाव के स्वेच्छा से जुड़ी थी। उसी समय सभी प्रकार के व्यापारों पर एक निश्चित कर लगा लिया गया। सामूहिक निर्णय की इस पवित्र कारवाई ने लाखों अबोल पशुओं को जीने का अधिकार दिया। आस्थापरायण जनता के प्रेमभरे हृदय का प्रतिदान मिला उन मूक प्राणियों को, जो आज तक अनाथ थे, बेसहारा थे।

प्रथम मुख्य व्यवस्थापक नियुक्त किए गए मोतीशा के अत्यंत निकटवर्ती मित्र एवं व्यवसायी भागीदार श्री सर जमशेदजी जीजी भाई। सूर्य के यौवन तक आते–आते तो सारे निर्णय भी हो गए। फंड भी एकत्र हो गया और नियुक्तियां भी हो गई। स्वामीजी के प्रयासों को पूर्ण सफलता मिली और मोतीशा की कल्पना का सपना यथार्थ के धरातल पर ठोस और मजबूत नींव के साथ उतर आया। निःसंदेह मोतीशा के व्यक्तित्व की यह अद्भुत घटना है। उनके जीवन की अमरता का यही राज हैं कि वे प्रमुदित होकर जीना चाहते थे पर उनकी प्रसन्नता अपने निकटवर्ती प्राणीमात्र की खुशी में निहित थी। दूसरे के होठों की हँसी छीनकर स्वयं ने अपनी मुस्कान नहीं सजायी थी। उन्होंने वक्त की नजाकत को पहचाना और वह करिश्मा कर

दिखाया जिसकी सामान्यतया कल्पना भी असंभव है। कहते हैं– अकेला चना भाड नहीं फोड़ सकता पर मोतीशा ने प्रबल आत्म विश्वास के साथ योजनाबद्ध रूप से इस प्रकार पासे फैंके कि सहजता से ही दांव जीत गए। न राजद्रोह का अभियोग लगा और न राष्ट्र की संपत्ति और श्रम के साथ छेड़खानी की।

यह कहावत पूर्णतः सार्थक बनी कि जो पुरुषार्थी होते हैं, उन्हें स्वतः ही अनपेक्षित सहयोग नियति के द्वारा प्राप्त हो जाता है। अकर्मण्य रहकर अगर मोतीशा भी भीड़ का हिस्सा बन जाते तो संभवतः उनके व्यक्तित्व के ताज में इतना अद्भुत और सुनहरा हीरा नहीं जुड़ता।

शताब्दियाँ बीत गई पर मोतीशा अपने स्नेह की व्यापकता से आज भी जीवंत व्यक्तित्व है। वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में जहां रेगिस्तान की सूखी धरती में पानी का रैला व्यापक रूप से बहता नजर आता हैं, वहीं मानवों के हृदय का संपूर्ण प्रेम स्वार्थ की आग को भेंट होकर भस्मीभूत हो चुका है। नैसर्गिक प्रेम का अस्तित्व ही जैसे सात समंदर पार हो गया हैं और इसी कारण मानव का अस्तित्व, उसकी पहचान उसके जीवन की सीमाओं में ही सिमट गई है।

मौत तो जन्म से ही जुड़ा हुआ सत्य है। निःसंदेह इस सत्य से तो एक न एक दिन रूबरू होना ही है। आज तक मौत को कोई भी शख्स पराजित करने में सक्षम नहीं हो

पाया। पर जो मानव अपने आकांक्षा के घेरे को तोड़कर जीता हैं, वह व्यावहारिक संदर्भ से मर सकता हैं पर अपनी कीर्तिपताका के माध्यम से मरकर भी अमर हो जाता है।

इतिहास में रेखांकित मोतीशा की जीवनी के पृष्ठ कहते हैं कि उन्होंने अपने जीवन काल में अपनी ओर से पांजरापोल की व्यवस्था के लिए 18,125 रुपए कैश दिए एवं सी.पी. टेंक पर अपने आधिपत्य की विशाल जमीन, जिसकी मूल्यराशि उस समय 39,225 की थी, पांजरापोल हेतु सहर्ष समर्पित कर दी।

धीमे–धीमे स्थान की कमी नजर आने लगी क्योंकि पांजरापोल में सुचारू और सुन्दर व्यवस्था के कारण पशु दिन–प्रतिदिन बढ़ने लगे थे, तब उदारतापूर्वक मोतीशा ने संपूर्ण 'चीमड' गांव ही खरीद कर पांजरापोल को भेंट दे दिया।

अनुकंपा और प्राणीदया की यह घटना मोतीशा के हृदय का स्पष्ट प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है। वे साक्षात् अमृतकोष थे। उनका स्नेह व्यापक और असीम था इसलिए वह अमृत तुल्य था। सीमित स्नेह जहाँ राग की संज्ञा पाकर जहर का कार्य करता हैं, वहीं फैला हुआ राग करूणा में परिवर्तित होकर अनेकों के जीवन की संजीवनी बन जाता है।

पांजरापोल स्थापना की यह घटना मोतीशा के

सर्वगुण संपन्न व्यक्तित्व को उजागर करने में मील का पत्थर प्रमाणित हुई। हर जुबां पर मोतीशा की उदारता और हृदय की भावुकता की चर्चा थी। व्यापक हित में किया गया पांजरापोल का यह कार्य आज हजारों–लाखों प्राणियों के जीवन का वरदान बन गया। निःसंदेह पांजरापोल की प्रत्येक ईंट मोतीशा के संवेदनशील भावुक हृदय की गाथा का प्रतिनिधित्व करती है।

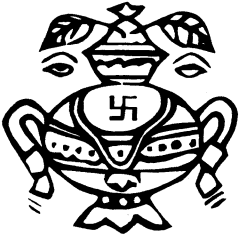

प्रफुल्लित मोतीशा ने हवेली के द्वार पर नजर डाली तो नियम के विरूद्ध उन्हें अपनी प्रिय पत्नी नदारद दिखी। कुछ आश्चर्य और चिंता मिश्रित भावों से व्याकुल होकर उन्होंने हवेली में प्रवेश करके चारों ओर नजरें घुमायी पर दीपा नजर नहीं आई। उनके विस्मय का पार नही रहा। इस समय हजार कार्यों को छोड़कर भी दीपा यहाँ द्वार पर मेरा इंतजार करती थी, पर आज घटनाक्रम में परिवर्तन क्यों हुआ?

वे लम्बे–लम्बे डग भरते हुए शयनकक्ष में पहुँचे तो दीपा को बैचेन और उद्विग्न अवस्था में शयन करते हुए पाया। दीपा इस हद तक उदास और खोयी हुई थी कि हल्का–सा भी आभास नही हुआ कि उसके प्रियतम व्याकुल नजरों से उसे ही देख रहे हैं।

दो क्षण इंतजार कर मोतीशा पलंक के समीप गए और व्याकुलता से पूछा–देवी! अगर आज इतनी अस्वस्थता महसूस कर रही थी तो किसी व्यक्ति को भेजकर मुझे बुलवा लिया होता।

दीपा ने बड़ी–बड़ी कजरारी आँखें ऊपर उठायी। कुछ पल तो विश्वास ही नहीं हुआ कि समय इतना अधिक बीत गया है। ज्योंहि वह मोतीशा के आगमन से विश्वस्त

हुई, तुरन्त ही वस्त्र व्यवस्थित कर बैठ गई।

मोतीशा की चिंता बढ़ने लगी। उनकी सारी प्रसन्नता काफूर हो गई। उत्तर न पाकर उन्होंने पुनः इस समय शयन का कारण पूछा।

दीपा ने कृत्रिम हास्य बिखरते हुए कहा–योंही मन भारी हो रहा था। अतः कुछ देर विश्राम की आवश्यकता महसूस कर सो गई थी। सोते–सोते कब आँख लगी और कितना समय बीता, पता ही नहीं चला। आप नीचे चले। भोजन का समय हो गया होगा।

उदास होते हुए मोतीशा ने कहा–लगता है आज तक हमारा और तुम्हारा मात्र औपचारिक नाता है। अभी तक तुम मेरे से अपने दिल के दर्द को अभिव्यक्त करने में हिचकिचाहट का अनुभव करती हो! क्या मैं तुम्हारी भावनाओं का बँटवारा नहीं कर सकता?कहते–कहते मोतीशा थोड़े भावुक बन गए। उनकी आवाज भीग गई। उन्होंने आगे कहा–आज इस भरे संसार में तुम्हारे अतिरिक्त मेरा कौन है?न मात–पिता रहे, न भाई–बहिन। सारा संसार और सारे रिश्ते तुम पर केन्द्रित हो गए हैं। क्या तुम भी मेरा विश्वास नहीं करोगी?मेरे सूने संसार में प्रसन्नता के फूल खिलाने वाली एकमात्र तुम हो। बताओ किस प्रक्रिया ने तुम्हारे हृदय पर आघात किया है।

दीपा को लगा–कारण बताए बिना प्रियतम की

प्रसन्नता लौटाना असंभव है। उसने धीरे–धीरे कहना प्रारंभ किया–दीपावली का पर्व निकट आता जा रहा है। आज जब पिताजी के कक्ष की झाड़ पोंछ कर रही थी तो उनकी यादों ने व्यथित कर दिया। सारा परिवार बहुत कम अंतराल में मौत की आगोश में सो गया। कितने सपने पिताजी और माताजी की आँखों में तैरते थे?उनका वात्सल्य जन्मदाता से भी अधिक था। माताजी की गोद में मुझे अपनी माँ की ममता और उष्मा महसूस होती थी। सारा दिन यह भव्य महल स्वर्ग के रौनक की अनुभूति कराता था। आज वह सूना महल काटने को दौड़ता है। मन यादों से भारी हो गया। चुपचाप आकर सो गई।

मोतीशा भी यादों के बियावन में भटक गए। अतीत उनकी आँखों के सामने तैर आया। चिंताओं का घनीभूत बोझ पिताजी ढो नहीं पाए। चंचला लक्ष्मी दगा दे गई। प्रामाणिक नीतिनिष्ठ पिताजी मात्र एक सौदे की प्रतिकूलता से देनदार हो गए।

समय कितना परिवर्तनशील है। आज देव गुरु कृपा से अथाह संपत्ति है। कितना भी खर्च करूँ फिर भी न्यूनता नहीं हो सकती, पर भोगने के लिए इकलौता मैं बचा हूँ। अंतर से उपजी शून्यता क्या इस वैभव की चकाचौंध से भर सकती है? काश! आज सभी जीवित होते तो मेरी यह उपलब्धि कितनी आनन्ददायक होती! सोचते–सोचते

मोतीशा की आँखों में अश्रु बिन्दु छलक आए।

पति–पत्नी दोनों की आँखों से आँसू बहते रहे। स्मृतियों के सावन में भीगते रहे। जब हृदय कुछ हल्का हो गया तो दीपा ने कहा–स्वामी! यद्यपि मैं आपको सलाह देने की योग्यता नहीं रखती फिर भी आपको उचित लगे तो ध्यान दें कि पिताजी की मनोकामना और माताजी के सपने की पूर्णता में विलंब का अब क्या कारण है?

संपत्ति की प्रचुरता होने पर भी अगर सही समय पर उसका उपयोग नहीं किया जाए तो लक्ष्मी आने की राह पहचानती है तो पुनः जाने की राह तलाशते भी उसे समय नहीं लगता। समय रहते सुकृत कर लेना ही बुद्धिमत्ता हैं। तन भी चंचल, धन भी चंचल परन्तु प्राप्त सामग्री का व्यय ही मानव की योग्यता का परीक्षण है। आप मात–पिता की स्मृतियों को शाश्वत रूप देना चाहते हैं, तो अतिशीघ्र निर्णय करें, ताकि दिव्यलोक में विराजमान उनकी आत्मा आपके इस कृत्य पर अगणित आशीर्वाद की बौछार करके आनन्द का अनुभव करें।

मोतीशा का चेहरा खिल गया। उन्होंने दीपा का चेहरा हथेलियों के बीच लेकर कहा– तुम शास्त्रीय "धर्म पत्नी" के संबोधन का जीता जागता नमूना हो। खैर, बताना तो नहीं चाहता था पर बात तुमने प्रारंभ कर दी है तो तुम्हारी जानकारी के लिए बता दूँ कि कुछ दिन पूर्व ही इस संबंध में

मैं निर्णय ले चुका हूँ और अतिशीघ्र मौके पर जाकर विस्तृत चर्चा करके योजना का श्री गणेश कर दूँगा।

'मैं दो–चार दिन बाद ही स्थापत्य कला विशेषज्ञों के साथ यात्रा पर निकल रहा हूँ। मैं सारी योजना को अंतिम रूप देकर मुहूर्त पर ही तुम्हें यकायक बताकर चौंकाना चाहता था, पर तुम तो मेरी गुरु साबित हुई। पता नहीं, आज ही तुम्हें कोपभवन में आकर सोने की इच्छा क्यों जगी और भावनाओं में बहाकर मुझसे सारी बात उगलवा ली। वास्तव में तुम बड़ी चतुर निकली।' नकली क्रोध का प्रदर्शन करते हुए मोतीशा ने कहा।

दीपा खिलखिलाकर हँस पड़ी। कक्ष में जैसे एक साथ हजार घण्टियाँ बज उठी। वातावरण की बोझिलता पल भर में दूर हो गई। उसने हँसते हुए कहा–आपको यह बात तो लग्नमंडप में ही समझ लेनी चाहिए थी कि अब आपका निजी कुछ भी नहीं रहेगा। जो भी होगा , उस सबकी पचास–पचास प्रतिशत की भागीदारी होगी।

जो–जो बातें आप ईमानदारी से बता दोगे, उतनी ठीक है और अवशिष्ट बातें मुझे मेरा जासूस कह जाएगा। अतः आपके हित में यही अच्छा है कि आप सारी जानकारियाँ ईमानदारी से बता दो।

मोतीशा ने भी तनिक आवेश से कहा–क्या कहा?जरा वापस कहना। क्या तुमने मेरे पीछे कोई जासूस लगा रखा

है, जो तुम्हें आकर मेरी सम्पूर्ण रिपोर्ट दे जाता है। मोतीशा की धड़कनें अनियंत्रित होकर बेकाबू हुई जा रही थी।

दीपा उनकी इस स्थिति का आनन्द ले रही थी। उसे हार्दिक सुकून मिल रहा था, पर उसने अपनी हँसी पर जबरन नियंत्रण कर रखा था। मोतीशा की सरलता और सहजता पर दीपा के हृदय में गहरा प्यार उमड़ रहा था। कितनी सादगी और कितनी निर्मलता? मात्र मेरे शब्दों को पकड़ लिया। जो भी कहूँ, बिना उस पर चिंतन किए आँखें मूँद विश्वास कर लेते हैं।

उसने अपने मन में उमड़ रही श्रद्धा को छिपाते हुए उसी लहजे में कहा–क्यों नहीं?पूर्वजों के वचन हैं कि लक्ष्मी अपने आगमन के साथ दुर्गुणों की गंदगी भी ले आती हैं, ताकि उसे पुनः जाने के लिए सबल बहाना मिल जाए। आपके आचरण में सात्विकता बनी रहे इसलिए मेरी चौकसी आवश्यक है।

मोतीशा ने पीड़ापूर्ण लहजे में कहा–दीपा! पति–पत्नी के संबंध का महल विश्वास की आधारशिला पर टिकता है। क्या तुम्हें मेरी सात्विकता पर संदेह है?मेरी रग–रग में परमात्मा महावीर के संदेश का अमृत बहता है। पुण्य प्रभाव से अल्प परिश्रम से भी समृद्धि की बहुलता अवश्य प्राप्त कर ली है, पर यहाँ तक पहुँचने से पूर्व जीवन की ऊबड़–खाबड़ टेढ़ी–मेढ़ी मंजिल को भी मैंने तय करके खूब अनुभव प्राप्त

कर लिए हैं और माता–पिता ने मुझे लाखों–करोड़ों की संपत्ति भले न दी हो पर संस्कारों की जो अपूर्व संपदा दी है, वह अनमोल है। वे संस्कार इतनी दृढ़ता से जीवन में घुल–मिल गए हैं कि उनके विपरीत आचरण की कल्पना भी संभव नहीं है।

तुमने कल्पना कैसे कर ली कि मेरे कदम कभी बहक सकते हैं?मुझे मेरी माँ ने अपने खून से ही नहीं, नैतिकता के संस्कारों से भी सींचा है। मुझे तो गर्भ से ही अभिमन्यु की तरह जन्म–मरण के चक्रव्यूह को भेदने के संस्कार दिए गए है।

दीपा ने खनकती मधुर हँसी के साथ कहा–कितने सरल हो आप! मेरी छोटी सी मजाक पर आप इतने गंभीर हो गए हैं। मेरे कथन का भाव नहीं समझकर आपने मात्र शब्दों को पकड़ लिया है। आपने प्रेम की शक्ति और उसकी प्रभावकता के बारे में विचार नहीं किया। प्रेम की तरंगें कितनी सूक्ष्म है, क्या आप नहीं जानते?

मैं शरीर की अपेक्षा घर में अवश्य रहती हूँ पर मेरा हृदय तो छाया की तरह सदैव आपके साथ ही रहता है। मुझे आपकी नैतिकता पर किसी प्रकार का संदेह कभी हो भी नहीं सकता। जासूस से मेरा तात्पर्य मेरे प्रेम से था। मेरा प्रेम प्रतिपल आपके साथ रहता है। आपके हृदय सागर में उठती तरंगों की अस्पष्ट सूचनाएँ मुझे मेरे समर्पण के वायरलेस

द्वारा प्राप्त हो जाती है। आज का वार्तालाप उसका ताजा उदाहरण है।

स्वामी! क्या आप नहीं जानते कि पतिव्रता नारी का हृदय उसके अपने प्रियतम के साथ ही संलग्न रहता है। क्या आप मुझे अपने से भिन्न समझते हैं। आपके समस्त भावों और संवेदनाओं को मैं आपके बिना कहे ही समझ जाती हूँ। दो हृदय की जहाँ अभिन्नता होती है, वहाँ परस्पर हर्ष और विषाद की अनुभूतियाँ स्वतः ही हृदय में तरंगित हो जाती है। आज का यह परिसंवाद इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

गुप्तचर तो वह छोड़ता है, जहाँ संदेह की परछाईयाँ दामन के ईर्दगिर्द लिपट जाती है। मुझे आप पर संदेह अथवा विश्वास करने की क्या आवश्यकता है? मुझे अपने समर्पण पर गहरा विश्वास है, उसी विश्वास की नींव पर मेरे आनन्दय जीवन का भव्य प्रासाद तैयार हुआ है।

क्या आप अपने को स्वतंत्र समझते हो?मैं तो आज तक यही समझ रही हूँ, हम दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। बाह्य दृष्टि से न आप स्वतंत्र हैं, न मैं स्वतंत्र हूँ।

स्वामी! प्रेम की तरंगें बड़ी सूक्ष्म होती है। वे तो बिना किसी आलंबन के ही दूर सुदूर फैल जाती है। दीपा की बातें सुनकर मोतीशा का सारा गुस्सा पलभर में गायब हो गया। वे मुग्ध भावों से प्रियतमा के शब्दों की गहराई को नापते रहे।

अब मोतीशा को एक–एक पल भारी लग रहा था। किसी अपरिहार्य कारण से स्वयं तत्काल पालीताणा जाने में सक्षम नहीं होने से उन्होंने अपने विश्वस्त पांच सहयोगियों के साथ सूत्रधार रामजी भाई को पालीताणा भेज दिया। रामजी भाई मोतीशा के दाहिने हाथ की तरह थे। मोतीशा के सारे निर्माण कार्य रामजी भाई के कुशल निर्देशन में ही सम्पन्न हुए थे। उनके संबंध मात्र व्यावसायिक ही नहीं थे, अपितु पूर्ण आत्मीय थे।

रामजी भाई को निर्णय और खर्च की पूरी छूट थी। रामजी भाई सम्पूर्ण आवश्यक सूचनाएँ, भावनाएँ समझकर पालीताणा पहुँचे। वे तन–मन की पूर्ण पवित्रता से पहाड़ पर चढ़े। सिद्धगिरि अधिष्ठायक से उन्होंने सन्मति प्रदान हेतु निवेदन किया। उस समय सिद्धगिरि पहाड़ पर चार बड़ी टूंकें थी। एक शिखर युक्त आदिनाथ भगवान की मुख्य टूंक, दूसरे शिखर पर खरतर वसहि एवं छीपावसहि। वैसे छीपावसहि स्वतंत्र टुंक की अपेक्षा खरतरवसहि के अंतर्गत ही एक मंदिर के रूप में नजर आती है।

इन दोनों शिखरों के बीच एक बहुत विषम खाई थी और खाई के नीचे बहुत बड़ा तालाब था। सूत्रधार रामजी ने उस विषम और भयंकर तालाब को देखा, यात्रियों की परेशानी को भांपा तो मन ही मन निर्णय ले लिया। बस–अगर कुछ करना है तो इसी खाई को भरवाकर यहीं

विशाल टूंक का निर्माण किया जाए। उन्होंने अपने दल के सदस्यों के समक्ष इस भावना को रखा। वे सब तो इस खाई की गहराई को पाटने की कल्पना से ही हक्के–बक्के रह गए। आखिर अंतिम निर्णय हेतु मोतीशा की आवश्यकता समझकर उन्हें बुलाया गया।

अहमदाबाद के प्रमुख श्रेष्ठिवर्य हेमाभाई एवं मोतीशा आदि की पूरी टोली शिखर निर्माण के लक्ष्य से यात्रा पर प्रस्थित हुई। मोतीशा ने बड़ी सूक्ष्मता से उस तालाब का निरीक्षण किया। मोतीशा मात्र अपनी ओर से ही शिखर निर्माण नहीं कराना चाहते थे, अपितु अपने आत्मीय एवं मित्रों की भी भागीदारी रखना चाहते थे। उन्होंने गंभीरता से चिंतन कर हाथों–हाथ निर्णय दे दिया। सेठ हेमाभाई समीप ही खड़े थे।

अपने मित्र के इस निर्णय से उनके हाथ–पाँव फूल गए। वे समझ नहीं पा रहे थे कि अपने मित्र को कैसे समझावे कि यह कार्य आसान नहीं है। कैसे होगा इतना भागीरथ काम?अगर बीच में रूक गया तो कितनी लोकहँसाई होगी। इस तालाब को, जिसे कुंतासर का खड्ढा कहा जाता है, भरने में मेरा मित्र अपने सारे गोदाम भी खाली कर दें, अपनी सारी संपत्ति इसमें होम कर स्वयं बाबा भी बन जाए, तो भी यह कार्य संभव नहीं है।

उन्होंने कहा भी सही–मित्र अपने होश की दवा करो।

तुम जिस कार्य हेतु निर्णय लेने जा रहे हो, उसकी कल्पना तीर्थंकरों के शासनकाल में भी किसी ने नहीं की और न किसी तुम्हारे पूर्वज ने की। कल्पनाओं के पंखों पर सवार मानव यथार्थ की यात्रा नहीं कर सकते। माना तुम बम्बई के नगर सेठ हो। तुम्हारी उदारता कर्ण को भी मात करती है, पर इसमें उदारता से अधिक पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

मोतीशा के होठों पर एक मुस्कान आ गई। उन्होंने अपने मित्र की चिंता को दूर करते हुए कहा—मित्र! असंभव को संभव करना ही तो पुरुषार्थ की अमरता है। सामान्य कार्य तो कभी भी संपन्न हो सकते हैं, पर मैं तो शासनदेव के सहयोग और माता—पिता के दिव्याशीष से ऐसा भव्य निर्माण करवाना चाहता हूँ, जो मेरे माता—पिता की स्मृति को युगों—युगों तक गाता रहे।

हेमाभाई ने पुनः कहा—फिर भी सोच लो मित्र! यह सिद्धाचल का शाश्वत तीर्थ है। बड़ी—बड़ी योजनाओं को पूर्णता के शिखर पर पहुँचने में विलम्ब लगता है। तब तक स्थितियाँ परिवर्तित भी हो सकती हैं। तुम सोचो। फिर भी तुम्हारा निर्णय अटल है तो एक बार भाभी से पूछ लो।

हँसेते हुए मोतीशा ने कहा—दोस्त! तुम भी हद करते हो, यह जानते हुए भी कि एक बार मैं जो निर्णय ले लेता हूँ, उसमें परिवर्तन असंभव है। संघर्ष करने की शिक्षा तो मुझे माँ ने घुट्टी में ही पिलाई है। फिर यह काम क्या मैं अपने निजी

स्वार्थ के लिए कर रहा हूँ। लाखों लोगों के हित में उठाए जा रहे इस कदम को मानव तो क्या, देवता भी आशीर्वाद देगें। क्या उनकी शुभकामनाएँ मेरा कवच बनकर मुझे सुरक्षा प्रदान नहीं करेगी?रही बात भाभी की, तो उसे तुम जानते हो। वह प्रत्येक अच्छे कार्य में दो कदम मुझसे आगे रहती है। वह तो और अधिक मुझे प्रेरणा देगी।

हेमाभाई को भी विश्वास हो गया कि कोई अदृश्य प्रेरणा मोती के साथ है। अन्यथा जिस कार्य को कोई भी लाखों–करोड़ों वर्ष की दीर्घावधि में भी करने की कल्पना नहीं कर सका, उसी के लिए मोती के दिल में इतनी बैचेनी क्यों?फिर भी उन्होंने अंतिम प्रयास किया–यह मत सोचना कि मैं इस कार्य की उपयोगिता से इन्कार कर रहा हूँ। तुम्हारा नाम तो इतिहास में अमर होगा ही पर इस निर्माण की उपयोगिता से जैन समाज तो क्या, इस तीर्थ पर आने वाला कोई भी यात्री अछूता नहीं रहेगा। फिर भी अभी भी मैं मना करता हूँ कि इतना बड़ा काम मत उठाओ।

मोतीशा ने एक कवि को उद्धृत करते हुए कहा सुनो–

तूफानों के भय से जिसके
साहस में बाधा आई है,
ऐसे बदकिस्मत राही ने
अपनी मंजिल कब पाई है?

जो मंजिल का मतवाला है,
तूफानों से कब घबराता है,
छोटा–सा निर्झर बहने को
चट्टानों से टकराता है।।

मंजिल भी साहसी के गले में वरमाला पहनाती है।

तुम विश्वास करो अपने मित्र की आत्मा की आवाज का। मेरे अन्तर्मन से ही यह प्रेरणा जगी है। लगता है कि कोई अदृश्य शक्ति मुझे माध्यम बनाकर यात्रीजनों की सुविधा करना चाहती है।

हेमाभाई ने हर्षाश्रु सह मोतीशा के इस कार्य की पूर्णता हेतु शुभकामनाएँ दी। अन्तर्मन खुशी से जगमगा उठा। अपने मित्र की इस महान् योजना से फैलने वाली खुश्बू का उन्हें अंदाज था। दोनों हाथ में हाथ डाले नीचे उतर आए। चारों ओर यह शुभ संवाद फैल गया कि बम्बई के प्रसिद्ध नगर सेठ मोतीशा सिद्धगिरि पर शिखर निर्माण करवा रहे हैं। जिसने भी सुना दाँतो तले अँगुली दबा दी। जो जहाँ था, उसने वहीं से मूकवाणी से अपनी अगणित शुभकामनाएँ प्रदान की। सूत्रधार रामजी भाई की प्रसन्नता असीम थी।

स्थान एवं योजना को अंतिम निर्णय दे दिया था, पर मोतीशा को चैन कहाँ था। वे तो अतिशीघ्र खातमुहूर्त और शिलान्यास करवाना चाहते थे।

उसी रात्रि में आणंदजी कल्याणजी की पेढ़ी पर मोतीशा, सेठ हेमाभाई, रामजी भाई एवं अन्य सहयोगी वर्ग एकत्रित हुए। खातमुहूर्त एवं शिलान्यास के मुहूर्त पर विचार–विमर्श किया गया। महान् वास्तुशिल्पी रामजी भाई शिल्पशास्त्र में जितने निष्णात थे, ज्योतिष शास्त्र में भी उतने ही प्रखर थे। उत्साह और भक्ति से भरपूर मोतीशा ने चर्चा को अंतिम रूप देते हुए एक ही बात कही कि अगर कल खातमुहूर्त हो तो परसों नहीं होना चाहिए। हमें अतिशीघ्र कार्य करना है। मेरे पास समय ज्यादा नहीं है।

मोतीशा ने तो यह अंतिम वाक्य बड़ी सहजता से कहा पर रामजी भाई उनके इस वाक्यों को सुनकर भावुक हो उठे। उन्होंने भर्रायी आवाज में कहा–हम जानते हैं कि आप कभी भी विलम्ब पसंद नहीं करते। आपको प्रत्येक कार्य में त्वरित गति चाहिए। हम आपके निर्देशानुसार ही शुभ मुहूर्त में कार्ययोजना को प्रारंभ करना चाहते हैं, परन्तु उससे पूर्व आपको अपने वाक्य में संशोधन करना होगा। आपने यह क्यों और किस संदर्भ में कहा कि आपके पास समय की

अल्पता है।

भाई से भी अधिक प्रिय रामजी की भावुक बातों से मोतीशा का हृदय भी भर आया। उन्होंने कहा–पता नहीं यह वाक्य मेरे मुँह से अचानक क्यों निकल गया?सहजता से ही यह वाक्य मेरे द्वारा कहा गया है। अवश्यंभावी घटनाओं को हम अन्यथा नहीं कर सकते। रहूँ या न रहूँ, मैं इस निर्माण को अपनी आँखों से देखने को उत्सुक हूँ। तुम चिंता न करो। तन्मयता पूर्वक काम देखो।

वातावरण कुछ पलों के लिए गमगीन हो गया। मोतीशा के शब्दों की गंभीरता से सभी प्रभावित हो गए। सभी की आँखों मे नमी तैर आई। मोतीशा ने स्थिति को संभाला। वातावरण की बोझिलता को समाप्त करने के लिए कुछ हँसी–मजाक किया और पुनः मूल–प्रसंग पर आते हुए उन्होंने कहा–देखो शिलान्यास का मुहूर्त कितने समय बाद आ रहा है?

रामजी भाई ने पंचांग के आधार पर ग्रह नक्षत्रों की गणना करके कहा–सेठजी! मुहूर्त निकट में दिखाई नहीं दे रहा है, अतः कुछ इंतजार करना पड़ेगा। अभी तो मिगसर प्रारंभ हुआ है और मुहूर्त पौष से पूर्व नहीं आएगा।

मोतीशा ने सुना तो इतने विलम्ब की कल्पना से अनमने हो गए। कुछ देर तो वे सोचते रहे और फिर मन ही मन दृढ़ता और विश्वास से भरकर उन्होंने कहा–इस

ज्योतिष शास्त्र का निर्णय कब और किससे हुआ?

रामजी भाई ने कुछ आश्चर्य से बात की गहराई को तोले बिना कहा–खगोलशास्त्र के आधार पर महापुरुषों ने इस ज्योतिष ग्रंथ की रचना की है।

मोतीशा–इसका तात्पर्य है– महापुरुष जिस मार्ग अथवा पथ का निर्माण करते हैं, छोटों को उसी पथ पर चलना चाहिए।

रामजी भाई – निःसंदेह छोटों को बडों के निर्णय और आदेशों की अनुपालना करनी चाहिए।

मोतीशा–इस प्रांगण में उपस्थित हम सभी के बीच बड़ा कौन ?

कोई समझ नही पाया कि आखिर मोतीशा इन विचित्र प्रश्नों से कौन–सा समाधान चाहते हैं। मोतीशा के अंतिम प्रश्न से सभी की जिज्ञासाएँ बेलगाम घोड़ों की तरह अनियंत्रित होकर दौड़ने लगी।

अभिमान से शून्य कर्म सिद्धांत के अनन्य पुजारी मोतीशा के अंतिम प्रश्न से प्रांगण में सर्वथा सन्नाटा छा गया। कोई कुछ बोलने की स्थिति में नहीं था। चारों ओर मौन ने अपना साम्राज्य फैला दिया था। कुछ पल की इस नीरवता से मोतीशा बैचेन हो गए। उन्होंने अपने प्रिय मित्र हेमाभाई को संबोधित किया और पूछा–क्या मैंने कोई अबूझ पहेली प्रस्तुत की है, जो आप समाहित नहीं कर पाए हैं?

हेमाभाई ने कहा—आइने की तरह स्पष्ट है कि हम सभी में आप ही बड़े है।

मोतीशा ने उत्साहित होकर कहा—बस ठीक है, अब मैं जैसा कहूँ, बिना तनिक संशय लाए उसी कार्य को संपन्न कर लो। सच्चा और सार्थक मुहूर्त तो हृदय के आनन्द, उल्लास और भावों पर निर्भर करता है। जिस समय हृदय में उत्साह की उर्मियाँ तरंगित हो रही हो, उस समय प्रारंभ किए कार्य को अवश्य ही शासन देवता निर्बाध रूप से संपन्न करते हैं। आप एक—दो दिन में शिलान्यास का निर्णय करो।

रामजी भाई ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाता थे, उन्हें ज्योतिष के प्रति अगाध श्रद्धा भी थी। उन्हें यह कार्य कतई अच्छा नहीं लगा कि मोतीशा अति उत्साही बनकर मुहूर्त के अभाव में इतना विशाल और ऐतिहासिक कार्य प्रारंभ करें। उन्होंने मोतीशा के अत्यंत निकट के मित्र तुल्य व्यापारिक कार्यों के सहयोगी श्री वीरचंदभाई को बुलाकर कहा—सेठजी उचित निर्णय नहीं ले रहे हैं। हम भी चाहते हैं कि कार्य शीघ्र हो, परन्तु क्या इतने बड़े कार्य का इस रूप में प्रारंभ संभव है?आप इन्हें समझावें कि यह न तो उचित है और न संभव है।

वीरंचदभाई क्या कहते?वे तो मोतीशा के स्वभाव से पूर्णतया परिचित थे। वे रामजी भाई को इस दिशा में कैसे आश्वस्त करते कि मोतीशा के हृदय में मुहूर्त के प्रति श्रद्धा

स्थापित करने में सफल हो जाएँगे। उन्होंने कहा—मैं भी जानता हूँ कि मुहूर्त का अपना अस्तित्व है पर मोतीशा के दृढ़संकल्प को न तो मुहूर्त का अभाव तोड़ सकता है और न उनके उत्साह और लगन को कुछ समय का विलम्ब भी सह्य हो सकता है। हाँ, अगर कल की अपेक्षा परसों का दिन अच्छा हो तो एक दिन का विलम्ब करा सकता हूँ।

टूटते अरमानों से, धड़कते दिल से रामजी भाई ने मोतीशा के आदेशानुसार मुहूर्त निकाल दिया। मोतीशा के उत्साह में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया। उनकी सामर्थ्य होती या उनमें कोई शक्ति होती तो वे संभवतः उसी दिन अपनी माँ की अनुभूति और अपनी कल्पना को साकार कर लेते। वे अपना सर्वस्व त्यागकर भी अपनी भावना को सत्य और हकीकत का जामा पहनाना चाहते थे।

रामजी भाई ने 1886 में मिगसर माह में मुहूर्त दे दिया। सेठ ने उत्साहपूर्वक सारी तैयारी प्रारंभ करवाई। उनके हृदय में मुहूर्त से संबंधित किसी प्रकार का ऊहापोह नहीं था। उत्साहपूर्वक समस्त संघ की उपस्थिति में सेठ ने खातमुहूर्त एवं शिलान्यास संपन्न किया।

शिलान्यास की पलों में मोतीशा का हृदय प्रसन्नता से विभोर हो रहा था। आज उनका हृदय माँ के आदेश की पूर्ति होने से पुलकित था। उनकी माँ ने उनके आगमन से पूर्व जो सपना देखा था, उसकी पूर्ति की कल्पना ने उन्हें प्रसन्नता

से परिपूर्ण कर दिया था। प्रसन्नता के साथ ही वेदना के बुलबुले भी उनके अंतर को कचोट रहे थे। इस अवसर पर उन्हें अपनी संस्कारी और प्रेममूर्ति माँ की रिक्तता खल भी रही थी। एक आँख में आनंद तो दूसरी आँख में अश्रूकण छलक रहे थे।

प्रसन्नता और वात्सल्य से परिपूर्ण माँ का चेहरा उनके स्मृति पटल में बार–बार उभर रहा था। ऐसा लग रहा था कि माँ आज प्रसन्न और आनन्द से उन्हें आशीर्वाद के अमृत से अभिषिक्त कर रही है। अपनी कल्पना की तूलिका से उन्होंने तृप्ति से परिपूर्ण जब माँ की आदमकद छवि बनाई तो वे स्वयं समझ नहीं पाए कि सत्य क्या है?लम्बे समय तक वे माँ को मानस में उकेरते रहे और विविध अनुभूतियों से स्वयं को भरते रहे। आँखों से सावन का पानी बरसता रहा पर हृदय आदेश की पूर्ति के बहार का आनन्द उठाता रहा।

निःसंदेह मोतीशा को इस प्रभुभक्ति व मातृभक्ति का ऐसा नशा चढ़ा था कि उसमें संसार और संसार से संबंधित औपचारिकता को कोई स्थान नहीं मिल रहा था। शराब और शबाब, इनका नशा तो क्षणिक है। किसी माध्यम से इस नशे को तो तोड़ा जा सकता है। साथ ही साथ जब तक उस नशे की बोझिलता रहती है, तब तक पतन के गर्त में गिरने की संभावना अधिक रहती है। पर मोतीशा का जो नशा था, वह आदर्शस्वरूप, स्तुत्य और उन्हें उत्थान की ओर ले जाने

वाला था।

मोतीशा उत्साह से भरकर बम्बई लौटे। सर्वप्रथम उन्होंने अपनी प्रियतमा को यह शुभ संवाद सुनाया। दीपा का मन बल्लियों उछलने लगा, पर इतने विशाल स्तर के निर्माण की कल्पना ने उसे भी हिला दिया। उसके चेहरे पर छाई उदासी की हल्की किरणें मोतीशा की पैनी नजरों से छिपी नहीं रही।

उन्होंने कहा–दीपा! तुम भी निराश हो रही हो। तुम्हें तो सबकुछ ज्ञात है कि मेरा तो जन्म ही इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हुआ है। प्रकृति ने मेरे हाथों ही इस कार्य की संपूर्ति का निर्णय लिया है। फिर यह तो पवित्रतम कार्य है। मैं इस प्रक्रिया में बाधक बनने का प्रयास क्यों करूँ?

जन्म पूर्व माँ का सपना बार–बार विभक्त शिखरों के जुड़ने की कल्पना आज साकार होने जा रही है। तुम तो माँ के साथ मेरे से भी अधिक रही हो अतः तुम्हें तो पूरी कहानी ध्यान में होनी चाहिए।

दीपा का हृदय मोतीशा की बात से आश्वस्त हुआ। उसका आत्मविश्वास लौट आया। उसने भी मन ही मन समझ लिया कि निःसंदेह माताजी के स्वप्न की पूर्ति का समय आ चुका है। अवश्य ही अदृश्य सत्ता का इसमें योगदान रहेगा। दिवंगत सास–ससुर का आशीर्वाद, अधिष्ठायक देव का सहयोग एवं हजारों–लाखों परमात्म

भक्तों की शुभकामना के सहकार से इस महान् सपने को आकार मिलेगा।

इधर रामजी भाई के निर्देशन में निर्माण कार्य चल रहा था। तलहटी से शिखर तक का निर्माण कार्य साधारण घटना नहीं थी। सामान्य मंदिर के निर्माण कार्य में भी वर्षों व्यतीत हो जाते हैं, फिर यह तो ऐसा निर्माण था, जहाँ समतल (लेवल) जमीन के अभाव में आड़ी–तिरछी भूमि पर नीचे से ऊपर तक पहुँचना था।

मंदिर और मकान इन दोनों के निर्माण में गहरा अंतर है। मकान के स्वरूप में स्थायीत्व की अपेक्षा फैशन और वर्तमान की प्रचलित डिजाइन को अधिक महत्व दिया जाता है, जबकि मंदिर में विधि एवं स्थायीत्व की ओर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

सबसे प्रथम काम था कुंतासर तालाब को भरना। यही कार्य महत्वपूर्ण एवं विराट स्तर का था। पूर्वजों द्वारा लिखे गए इतिहास द्वारा यह सूचना प्राप्त होती है कि आदीश्वर मूलनायक के पास रहा हुआ यह कुंतासर का गाला इतना गंभीर था कि तालाब पर खड़ा व्यक्ति शिखर से देखने पर वेंत मात्र नजर आता था। यह तो मोतीशा का अपना साहस, प्रभुभक्ति और माता के सपने को पूर्ण करने की उत्कंठा थी, अन्यथा इतने विशाल स्तर पर होने वाले कार्य की कल्पना मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

असामान्य व्यक्ति कभी सामान्य निर्णय नहीं लेता और न भविष्य में आने वाली कठिनाइयों से आतंकित होकर निर्णय बदलता है। मोतीशा अपने वर्तमान के ही नहीं, आने वाले भविष्य की प्रेरणा बनने वाले थे। उनका परिचय और उनका अस्तित्व मात्र वर्तमान में ही सिमटने वाला नहीं था। उनके अस्तित्व की महक तो हजारों वर्षों तक संसार को होने वाली थी। मोतीशा द्वारा लिया गया टुंक का निर्णय उनके दृढ़ एवं लौह व्यक्तित्व का परिचायक है। उनके जीवन काल के ऐसे कई निर्णय हैं, जिनसे सहज ही उनके हृदय की दृढ़ता और संकल्प की प्रखरता की ध्वनि गूँजती है।

मंदिर का शिलान्यास भी असामान्य होता है। उतनी गहराई में गड्ढा खोदना पड़ता है, जहाँ तक बाल अथवा किसी अपवित्र वस्तु की संभावना होती है। जहाँ मूलनायक को गद्दीनशीन करना हो, वहाँ तो पवित्रता के लिए पूर्ण सावधानी रखनी पड़ती है। इसमें माप का भी बड़ा महत्व है। एक अंगुल अथवा अंगुली के आंशिक जितना भी अंतर नहीं रहना चाहिए।

जिस स्थान पर मुख्य शिला रखी जाती है, उसके ठीक मध्यभाग में परमात्मा का ब्रह्मरंध (ललाट का मध्यभाग) आना चाहिए। शिल्प कार्य में आंशिक त्रुटि भी शिल्पकार के लिए विधिवेत्ता द्वारा अपने ज्ञान का अपमान बन जाती है।

शिल्पकार्य की कोई भी त्रुटि मंदिर निर्माता के अस्तित्व को भी प्रभावित कर लेती है। विधियुक्त निर्माण निःसंदेह निर्माता के भविष्य का निर्माता भी बनता है।

जिस प्रकार मंदिर का शिल्पकार्य महत्वपूर्ण एवं चुनौतीभरा होता है, वैसे ही शिखर का निर्माण भी सामान्य नहीं होता। कुछ शिखर ऊपर के भाग से ही प्रारंभ होते हैं, जबकि कुछ नीचे से ही प्रारंभ होते हैं। शिखर का निर्माण भी सामान्य व्यक्ति द्वारा नहीं हो सकता। इसमें भी पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। जैसे–तैसे एक–दूसरे पत्थर पर स्थापित करना उचित नहीं माना जाता। समस्त पत्थर पूर्ण निश्चित आकारयुक्त ही स्थापित किए जाते हैं।

इसके साथ ही साथ परमात्मा की नासिका उनकी दृष्टि आदि में भी पूर्ण सावधानी रखनी पड़ती है एवं मंदिर में ही पूजार्थी श्रद्धालुओं के लिए स्नानघर, पानी आदि की भी पूर्ण व्यवस्था रखनी होती है।

मोतीशा ने अपनी टुंक निर्माण की योजना को अपने आचार्य भगवंत गुरुदेव श्री जिन महेन्द्रसूरि के समक्ष रखी और शिलान्यास आदि की चर्चा भी कर ली। आचार्य भगवंत ज्योतिष विद्या के ज्ञाता थे। अंबिका माँ उनके प्रत्येक शासन सेवा के क्षेत्र में सहयोग देती थी।

आचार्य भगवंत ने सहजता से खातमुहूर्त एवं शिलान्यास का समय पूछा। मोतीशा ने समय बता दिया।

आचार्य भगवंत ने ज्योतिष के आधार पर उस समय की ज्योंहि गणना की, उनका माथा ठनका। आँख सिकुड़ गई। चेहरा उदास हो गया।

मोतीशा ने आत्मीय मुस्कान में मजाक का पुट देते हुए कहा—क्या आप भी वहीं सोचते हो, जो मेरे अन्य सहयोगी सोचते हैं?

आचार्य भगवंत ने दर्दभरी गंभीरता से कहा—आपको आज नहीं, कल इस बात का उत्तर दूंगा। मोतीशा आनन्द भरे वातावरण में यकायक उदास होते आचार्य भगवंत को देखकर भी नहीं घबराए। उनका आत्मविश्वास और प्रभु श्रद्धा इतनी दृढ़ थी कि वे मानते थे कि आखिर अशुभ किस सीमा तक हो सकता है। जो मेरा है, वह मुझसे वियुक्त हो नहीं सकता और जो मेरा है ही नहीं , वह आज जावे तो क्या, और कल जावे तो क्या?

यह घटना निःसंदेह उनकी भौतिक अनासक्ति का जीवंत नमूना है। संभवतः उन्होंने भगवान महावीर की अमृतवाणी देशना को सुना ही नहीं, अपितु आत्मसात् भी किया था—

लक्ष्मी अने अधिकार वधतां, शुं वध्युं ते तो कहो?
शुं कुटुंब के परिवारथी, वधवापणुं ए नय ग्रहो!
वधवापणुं संसारनुं नरदेहने हारी जवो,
एनो विचार नहीं अहो! हो! एक पल तमने हवो!!!

आनन्द और पूर्ण प्रफुल्लता से अनेकों विषयों पर आचार्य भगवंत से उन्होंने रात्रि के शांत और एकांत वातावरण में चर्चा की और सुखपूर्वक प्रभु स्मरण करते हुए निद्राधीन हो गए।

आचार्य भगवंत आज असाधारण रूप से खामोश थे। रह–रहकर उनकी आँखों में भीगापन आ रहा था। आसपास के भक्तगण भी अपने आराध्य गुरुदेव की उदासी से चिंतित थे, पर कुछ पूछने का साहस किसी का भी नहीं था। वे मोतीशा के सामने पड़ने से बार–बार सप्रयास स्वयं को बचा रहे थे। मोतीशा की आँखों में आँखें डालने का उनका साहस नहीं हो रहा था। मोतीशा ने भी इस परिवर्तन को नोट अवश्य किया पर कारण समझ नहीं पाये।

पूजन–व्याख्यान, भोजन आदि से निवृत्त होकर मोतीशा श्रद्धा एवं भावभरी मुद्रा के साथ गुरुचरणों में उपस्थित हुए। कोई हड़बड़ी अथवा प्रश्न का उत्तर जानने की उत्सुकता नहीं। आचार्य भगवंत ने ही चर्चा का सूत्र थामते हुए कहा–मोतीशा! आपने बिना मुहूर्त जल्दबाजी में आकर शिलान्यास करके उचित नही किया। ज्योतिष एवं माँ के अनुसार संभवतः इसकी प्रतिष्ठा....अपनी बात की प्रतिक्रिया जानने के लिये आचार्य भगवंत ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया व आँखें मोतीशा के चेहरे पर गढ़ा दी।

मोतीशा ने कहा–भगवन्! आप यह देखने की कृपा

करें कि शिखर निर्माण की मेरा परिकल्पना साकार होगी या नहीं?मंदिर बन गया तो प्रतिष्ठा तो होगी ही। मैं नहीं कराऊंगा तो मेरा बेटा करायेगा।

मोतीशा की साहसभरी बातें सुनकर आचार्य भगवंत का मुँह तो खुला ही रह गया। वे अवाक् रह गये अपने प्रियभक्त की इस निस्पृह वृत्ति पर। अपनी धन संपदा से भी लोग अनासक्त नहीं रह पाते। फिर स्वयं के शरीर की आसक्ति का तो कहना ही क्या?यह इंसान हैं या अजूबा?इतनी बड़ी बात कही पर यह घबराने के स्थान पर मंदिर का ही भविष्य जानने को उतावला हो रहा है। आचार्य भगवंत का हृदय शिष्य की इस योग्यता से धन्य–धन्य कह उठा।

उन्होंने कहा–मंदिर की तुम्हारी कल्पना आशा से भी अधिक साकार होगी। इसका भविष्य भी महान् रहेगा पर....।

आनन्द से पुलकित होकर मोतीशा ने कहा–बस मैं मंदिर का भविष्य ही जानना चाहता था। मैं, मेरा धन और मेरी सत्ता सबकुछ अशाश्वत और अनित्य है। अनित्य और क्षणभंगुर इसके भविष्य की मुझे कोई चिंता नहीं है। बस इस घड़ी में मैं, साधुमर्यादा के विपरीत पर शासन सेवा का ही उपक्रम है अतः एक वचन आपसे लेना चाहता हूँ। आप मेरे गुरु हैं। मेरे जीवन के अंधेरे को दूर कर प्रकाश से भरने वाले हैं। अगर मेरा शरीर नहीं रहे तो इसकी प्रतिष्ठा का

उत्तरदायित्व आप पर छोड़ता हूँ। विधिपूर्वक आपको प्रतिष्ठा संपन्न करनी है।

आचार्य भगवंत की आँखों से अश्रुकण छलक पड़े। उनका हृदय इस शासन समर्पित, पूर्ण सक्षम, सुयोग्य श्रावक की भक्ति भावना से स्वतः भीग गया।

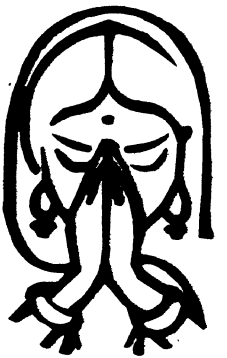

पालीताणा में रामजी भाई ने सेठ के निर्देशों का अक्षरशः पालन करते हुए गड्ढा भराने का कार्य युद्धस्तर पर प्रारंभ कर दिया। ध्रांगध्रा, हलवड़, वढवाण आदि से कारीगर और मजदूर बुलाए गए। जब वे भी संख्या में कम नजर आए तो जामनगर, राजकोट, गोंडल, जुनागढ़, धोराजी, अमरेली आदि क्षेत्रों से भी बुलाए गए। इस निर्माण में ऐतिहासिक दस्तावेजों के अनुसार ग्यारह सौ कारीगर एवं तीन हजार मजदूर दिन–रात कार्यरत थे। शिलान्यास से प्रतिष्ठा के बीच सात वर्ष की अवधि में हजारों कारीगर एवं मजदूरों ने इस पुण्य कार्य में अपना योगदान दिया था।

हम पूर्व में ही यह स्पष्ट कर आए है कि मोतीशा की वणिक् प्रवृत्ति कम, शाही प्रवृत्ति अधिक थी। वे शोषण की अपेक्षा पोषण में विश्वास करते थे। वे अपने निर्माण कार्य में लगे किसी भी कर्मचारी को कभी भी असंतुष्ट नहीं करते थे। टुंक के कार्य में लगे समस्त कारीगर एवं मजदूरों को तनख्वाह के अतिरिक्त दो किलो अनाज, आधा किलो गुड़, पाव किलो घी आदि एवं पीने के लिए तम्बाखू भी देते थे।

वे मजदूर एवं कारीगरों को मेहनताना अन्य सभी की अपेक्षा अधिक देते थे अतः मोतीशा के नाममात्र से दूर–दूर से लोग आ जाते थे। उस समय जब 1888 का भयंकर

दुष्काल था, तब घी का भाव 11 रुपए मण था। उस समय मोतीशा मजदूर को कम से कम डेढ़ आना तो देते ही थे। वर्तमान में यह मेहनताना अल्प लगता है, पर उस समय यह भी अच्छे स्तर का माना जाता था।

स्वयं महान् शिल्पी रामजी भाई एवं उनके पुत्र की मासिक तनख्वाह 50 रुपए थी।

निर्माण कार्य अत्यंत तेजी से चल रहा था। ऐसा लग रहा था कि मजदूर और कारीगरों का अपना नया नगर बस गया है।

संवत् 1888 में चातुर्मास में वर्षा के अभाव में दुष्काल की स्थिति हो गई। ऐसी स्थिति में भी निराश न होते हुए मोतीशा ने शंत्रुजय नदी से पानी मंगाया, परन्तु काम में किसी प्रकार की बाधा नहीं आने दी। उस समय एक कलश पानी की चार आना कीमत थी। इतना महँगा पानी आ रहा था फिर भी मोतीशा की पेशानी में एक भी सलवट नहीं आई। एक कलश में चार गेलन पानी की क्षमता होती थी।

यद्यपि मोतीशा उस समय के व्यस्ततम व्यापारी थे फिर भी कार्य समर्पण की गहरी भावना होने से वे बार–बार समुद्री यात्रा करके भी पालीताणा आते। कार्यगति देखकर उनकी आँखों में एक चमक उभर जाती थी। उन्होंने निर्माण कार्य की सम्पूर्ण बागडोर अपने मुख्य सलाहकार मित्रप्रवर श्री अमरचंद, खीमचंद दमणी मुनीमजी, वीरचंद कल्याणजी,

कहानजी के सुपुत्र दीपचंद भाई (बालाभाई) आदि को सौंप रखी थी। वे भी सेठजी का पूर्ण आत्मीयता से कार्य संभाल रहे थे।

उस युग में वर्तमान की तुलना में आवागमन के साधनों का सम्पूर्ण अभाव था। न तो गाड़ियाँ, न वेगनें और न मोटर आदि की सुविधा थी। मात्र एक ही चीज शत–प्रतिशत समग्रतया समर्पित थी, और वह थी मोतीशा की तन–मन–धन की सम्पूर्णता। इस एक ही चीज पर इतना भव्य और ऐतिहासिक निर्णय लिया गया था। जहाँ हृदय का समर्पण होता हैं, वहाँ अन्य सारी सामग्री स्वतः उपलब्ध हो जाती है। इस एक के अभाव में सब कुछ शून्य है।

विशाल मंदिरों के निर्माण के साथ–साथ उन्होंने प्रतिमा निर्माण हेतु भी प्रसिद्ध एवं चतुर मूर्तिकारों को निमंत्रित किया। उन्होंने कारीगरों का विशेष ध्यान केन्द्रित किया कि वे ऐसी प्रतिमाओं का निर्माण करें, जिनको देखते ही हृदय स्वतः अमृतधारा में नहाने लग जाए। जयपुर मकराणा आदि से दुगुना खर्च देकर पालीताणा में ही मूर्ति निर्माण हेतु कारीगरों को आग्रह किया।

मोतीशा द्वारा निर्मित प्रतिमाओं की सौम्यता, शान्त रस झीलती मुखमुद्रा निःसंदेह कला,सौंदर्य एवं शास्त्रीय विधि का स्पष्ट नमूना है। प्रतिमा निर्माण में पवित्रता एवं

शास्त्राज्ञा की भी पूर्ण सावधानी रखी थी। मूर्तियों की यद्यपि प्रतिष्ठाविधि नहीं हुई थी, फिर भी कारीगर विशेष आदेश के कारण मुख पर मुखकोश बाँधकर, स्नान एवं पवित्र वस्त्रों से विभूषित होकर ही प्रतिमा निर्माण करते थे।

प्रतिष्ठाविधि जब तक संपन्न नहीं होती, तब तक किसी प्रकार की पवित्रता आवश्यक नहीं मानी जाती, परन्तु चूँकि मोतीशा की धारणा, उनकी श्रद्धा और समर्पण विलक्षण था। वे सोचते थे, जिस प्रतिमा को भविष्य में साक्षात् ईश्वर या परमात्मा मानेंगे, उसकी वर्तमान में भी पवित्रता और शुद्धता बरकरार रहनी चाहिए।

स्वर्ग की ऊँचाइयों को छूती सेठ मोतीशा की टुंक का निर्माण तेजी के साथ चल रहा था। जिस तेजी से मोतीशा अपनी टुंक का निर्माण करा रहे थे, उसकी कल्पना और चर्चा से भी जनता में कंपकंपी छूटती थी। सभी को यह अविश्वसनीय घटना लग रही थी। संपन्नता में मोतीशा को भी मात और चुनौती दे ऐसे अनेकों श्रीमंत थे पर मात्र आर्थिक संपदा योजना के लिए आवश्यक नहीं है। आर्थिक समृद्धि से भी अधिक हृदय की उदारता व श्रद्धा भरे भावों की अनिवार्यता है।

शक्तियाँ प्राप्त करना पुण्य का प्रतीक है, पर प्राप्त शक्तियों को सुकृत में नियोजित करना निःसंदेह पुण्यानुबंधी पुण्य का प्रतीक है।

मोतीशा की दानवीरता, उनकी भवभीरूता और उनका उल्लास आश्चर्यजनक तो था ही, साथ ही अनुकरणीय भी था। निःसंदेह ऐसे पुण्यवान् देशरत्नों ने ही देश की आन–बान–शान और उसकी गरिमा में अभिवृद्धि की है।

मोतीशा स्वयं पुण्यवान थे। अर्जन और विसर्जन इन दोनों ही प्रक्रियाओं को उन्होंने अपनाया था पर अपने परिचितों, मित्रों को और संबंधियों को भी उन्होंने ऐसा सुनहरा अवसर उपलब्ध करवाया था, जिससे वे भी प्राप्त लक्ष्मी का जिनमंदिर निर्माण में मुक्त हस्त उपयोग करके उस इतिहास निर्माता के साथ अमर बने।

मोतीशा का रोम–रोम आनन्द सागर में डुबकियाँ लगा रहा था। दिन–रात मात्र पालीताणा शिखर के दृश्य उनकी पुतलियों के समक्ष नाचा करते थे। उन्हें देखकर कोई कल्पना नहीं कर सकता था कि वे अपनी व्यस्तता में से इतना समय सुगमता से निकाल सकते होंगे, पर वास्तविकता यही थी। रात–दिन उन्होंने टुंक निर्माण के लिए एक कर दिया था। न धन की कमी आने दी, न तन की।

कहते हैं इस टुंक पर मात्र निर्माण हेतु प्रतिमाएँ चढ़ाने के लिए अस्सी हजार रस्सियाँ बाँधी गई थी।

अगर वर्तमान की विकसित तकनीक के अंतर्गत इस कार्य को संपन्न करना हो तो इतना कठिन नहीं लगता,

क्योंकि इस यांत्रिक युग में निर्माण सामग्री को ऊपर पहुँचाने के लिए अनेकों साधन उपलब्ध हैं, परन्तु वह युग न तो यांत्रिक था, न थी वहाँ सुविधाओं की भरमार। समस्त निर्माण सामग्री मानवीय शक्ति के आधार ही ऊपर पहुँचती थी।

सेठानी दीपा भी पूर्ण समग्रता से सहयोग कर रही थी। अपने मात–पिता के सपने को साक्षात् धरा पर उतारकर जहाँ मोतीशा और दीपा ने पितृश्रद्धा को अभिव्यक्त किया, वहीं उनके आदेश की पालना से पूर्णतृप्ति का अहसास किया।

भव्य टुंक रचना का ऐतिहासिक कार्यक्रम सानन्द चल रहा था। लगभग विगत 6 वर्षों से कार्यक्रम निरंतर गतिशील था। टुंक निर्माण का अधिकांश भाग तैयार हो चुका था कि सेठ अब जहाँ पूर्व में निर्माण के सपने देखते थे, अब वहीं प्रतिष्ठा के सपने देखने लग गए थे। उनकी कल्पनाएँ पंख लगाकर हवा में उड़ने लगी थी। प्रतिष्ठा किससे करानी यह तो तय ही था पर कैसे करानी, इसी के संबंध में निरंतर स्वप्नों का ताना–बाना बुनते रहे, परन्तु मानव की सभी आकांक्षाएँ कहाँ और कब पूरी होने दी है कर्मराजा ने?अभी तो उन्होंने प्रौढ़त्व में पदार्पण किया था। युग की वे अनमोल अमानत थे। कितनी जरूरत थी उनकी युग को, परन्तु काल की क्रूरता ने युग की आवश्यकता को कब मंजूरी दी हैं?

भयंकर गर्मी जनजीवन को अस्त–व्यस्त कर रही थी। मानव ही नहीं, पशु भी उन गर्म हवा के थपेड़ों से त्रस्त हो रहा था। व्यस्त मानव भी कार्य करने में कठिनाई का अनुभव कर रहा था। ऐसा लगता था जैसे प्रकृति मानवीय व्यस्तता को चुनौती दे रही है और साथ ही अपनी सफलता पर कुप्पा भी हो रही है। तुम्हें काम से फुरसत नहीं हैं पर मैं ऐसी स्थितियाँ खड़ी कर रही हूँ कि तुम बाहर ही नहीं निकल सकते। आकाश से बरसती आग घरों में छिपने को मजबूर कर रही थी।

मोतीशा भी इस प्राकृतिक प्रकोप की चपेट से स्वयं को सुरक्षित नहीं रख पाए। उनका स्वस्थ संतुलित शरीर भी उष्णता से दहकने लगा। पोर–पोर असहनीय ताप से संत्रस्त हो उठा। यद्यपि मोतीशा उस कर्मसत्ता से, जो विश्व को जैन दर्शन की अद्‌भुत देन हैं, परिचित थे, फिर भी उसके उदयकाल में कुछ समय के लिए व्याकुल हो गए।

दीपा देवी ने जब प्रियतम की इस आकुल–व्याकुल स्थिति को देखा तो वे भी परेशान हो उठी। कर्मशील मोतीशा को पल भर भी विश्राम की मुद्रा में उसने नहीं देखा था और अचानक व्याधि से ग्रस्त शय्या पकड़े उनको देखा तो उसका मन आतंकित हो उठा।

मोतीशा ने व्याकुलता की उस स्थिति में कुछ पलों के लिए सो गए विवेक को जगाया और दीपा देवी को बुलाकर कहा....मैं अपने जीवनकाल में अर्जित संपत्ति की वसीयत करना चाहता हूँ।

दीपा देवी ने सुना तो रोम–रोम अन्तरवेदना से भीग उठा। सम्पूर्ण और सक्षम समझकर जिसका आश्रय लिया था, वही उसे भँवरजाल में छोड़कर जाने की खतरनाक बातें कर रहा है। पेड़ ही जब उखड़ने की तैयारी करे तो डालियाँ किसके सहारे दीर्घजीवी बन सकती है? दीपा का पोर–पोर एक वाक्य मात्र से कराह उठा। उसने तो मोतीशा के जीवन को ही अपना अस्तित्व समझ लिया था और उन्हीं में विलीन–सी हो गयी थी। अपने हार्दिक समर्पण द्वारा अद्वैत की कल्पना का वह साकार स्वरूप थी। निःसंदेह कल्पना का महल जब धराशायी होता है, तो बेआवाज होता है। न उसके चटखने का शोर होता है और न उसको खण्ड–खण्ड होते कोई देखता है।

मानवीय संबंधों की यह कैसी चरम परिणति है। जिसे जिगर समझकर सम्हाला, अपनी समग्रता समर्पित कर जिसके सपने पूरे किए, वही एक पल में ऐसा पराया बन जाता है कि मात्र मरघट ही उसका पड़ाव बनता है।

दीपा देवी का समर्पण भव्य व अद्‌भुत था। वे यद्यपि पति–पत्नी के संबंधों से जुड़े हुए थे, परन्तु उनका आपसी

संबंध तो आत्मिक था, जहाँ समस्त अनुभूतियाँ शब्दातीत हो जाती है। जहाँ स्वार्थ परक अथवा इंद्रियपरक राग होता है, निःसंदेह वहाँ समर्पण निश्छल, पवित्र और आनंदपरक हो ही नहीं सकता, क्योंकि स्वार्थ–लिप्सा असीम होती है। एक कामना की पूर्ति दूसरी कामना की जन्मदातृ मानी जाती है। समस्त कामनाओं की पूर्ति सामान्य मानव तो क्या, स्वयं चक्रवर्ती सम्राट् भी संपन्न नहीं कर सकता।

प्रेम वासनात्मक भी होता है, और प्रेम अध्यात्म की पावन सलिला भी बनता है। प्रेम के मात्र एक ही पहलू को देखना स्वयं के दृष्टिकोण की तुच्छता है। लौकिक अथवा वासनात्मक प्रेम बांधता है, जबकि अध्यात्मिक प्रेम अथवा ईश्वरीय प्रेम बंधनों की श्रृंखला से मुक्तकर शाश्वतता और अमरता प्रदान करता है, पर यह अध्यात्मिक प्रेम सामान्य मानव की समझ और बुद्धि से परे होता है। स्वयं 'प्रसाद' उस प्रेम के लिए कह उठते है–

"इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत–भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचाना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।।
अथवा उस आनन्दभूमि में जिसकी सीमा कहीं नहीं।
यह जो केवल रूप जन्य है मोह न उसका स्पर्धी है।।"

इस पथ पर अगणित काँटें बिछे पड़े हैं। यह अद्भुत प्रेमपंथ विरले व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है, क्योंकि जहाँ सांसारिक प्रेम हैं, वहाँ ऐसा उदात्त प्रेम रह नहीं सकता। या

तो संसार का प्रेम हमारी चेतना को आकृष्ट करता है और या चेतना का समर्पण परमपिता परमेश्वर के चरणों में हो सकता है। जहर और अमृत दोनों संयुक्त होकर नहीं रह सकते।

दीपा देवी के हृदय में सीता और सावित्री जैसा अद्भुत पातिव्रत्य तेज था तो अनुपमा देवी की कर्मठता भी विद्यमान थी। जब उसे आभास हुआ कि मोतीशा शंत्रुजय के संबंध में निर्णय नहीं ले रहे हैं तो उसने तुरंत उन्हें प्रेरणा दी कि वे शीघ्र और तत्काल निर्णय करें। निःसंदेह भारतीय महापुरुष की कर्मठता और महानता की प्रेरणा नारी शक्ति ही रही है। जैसा भी धरातल उसे मिला, उसने उसी को माटी होते हुए चंदन सा महका दिया। माँ, पत्नी, बहिन और बेटी बनकर सदैव पुरुष की राह में आ रहे काँटों को अपनी पलकों से चुना और इसीलिए नारी अबला न होकर शक्ति और ऊर्जा का साक्षात् स्वरूप है। उसका समर्पण बेड़ी बनकर पुरुष को बांधता नहीं अपितु प्रेरणा बनकर कर्त्तव्यनिष्ठ और कर्मशील बनाता है।

मोतीशा कर्मशील थे, तो दीपा समर्पण और प्रेम का अद्भुत संगम थी। उसने जहाँ समर्पण की खुश्बू से मोतीशा के जीवन को महकाया था, वहीं प्रेरणा की उर्जा भरके कर्मयोगी भी बनाया था। अगर मोतीशा के जीवन में दीपा के प्रेम की मधुरिमा और पवित्रता नहीं होती तो संभवतः मोतीशा इतने ऊर्जावान् और प्राणवान् बनकर ऐतिहासिक व्यक्तित्व

के रूप में अपनी अमिट छाप अंकित नहीं करते।

दीपा ने मोतीशा की प्रसन्नता को अपना जीवन समझ लिया था। उन्हीं की खुशी और उन्हीं की आकांक्षा पर वह सम्पूर्णतः न्यौछावर हो चुकी थी। आज वही उसके सपनों का देवता वसीयत बनाने की बात कर रहा था, अर्थात् कहीं किसी कोने से वे अपने जीवन के प्रति अविश्वस्त हो गए थे।

दीपा की आँखों में सावन और भादों उतर आया। झर–झर उसके आँसू बरसते रहे। मोतीशा उसके प्रेम और उसकी कल्पनाओं से परिचित थे। वे भावुकता में वसीयत की बात नहीं कर रहे थे। अगर उन्होंने भावुकता में यह बात कही होती तो मजाक में उड़ा देते पर किसी अदृष्ट ने ही उन्हें वसीयत करने का संकेत दिया था, फिर भी उन्होंने दीपा के कोमल मन को आश्वस्त किया कि वसीयत से मेरा तात्पर्य यह नहीं था कि अब मैं मृत्यु को ओर बढ़ रहा हूँ। इतना विशाल कारोबार है, अतः व्यवस्थित व्यवस्था आवश्यक समझता हूँ। खीमचंद सरल और निश्छल है। परिवार से अधिक मुझे अपने मित्रों व व्यापारिक भागीदारों पर विश्वास है। इतनी अधिक धार्मिक व सामाजिक संस्थाएँ हैं। कभी अचानक सांसों की डोर टूट जाए तो संस्थाओं की व्यवस्था में कोई परेशानी नहीं हो, बस इसी लक्ष्य से मैं वसीयत करना चाहता हूँ।

दीपा देवी का दर्द कम नहीं हो पाया। उसकी आशंका

बढ़ती रही। कल्पनाओं की तूलिका द्वारा वह अनिष्ट की रेखाएँ खींचती रही। मोतीशा ने मित्रों से विचार–विमर्श करके वसीयत करवा ही ली। वसीयत की मूल कॉपी स्व. श्री मोतीचंद कापड़िया द्वारा लिखित "मोतीशा" में प्रकाशित है। यहाँ उस वसीयत के कुछ मुद्दों पर चर्चा मात्र करूँगी–

मोतीशा के रोम–रोम में गोडी पार्श्वनाथ प्रभु पर अटल श्रद्धा थी। उन्होंने वसीयत का प्रारंभ गोडी पार्श्वनाथ की वंदना से किया है। उन्होंने अपनी वसीयत में सूचना दी कि मृत्यु के एक वर्ष पर्यन्त जो भी धार्मिक, सामाजिक कार्य हो, उस कार्य को उन्हीं के नाम से सम्पन्न करना है और उसका पुण्यलाभ उन्हें ही होना है। निःसंदेह यह पंक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह पंक्ति इस बात की सूचक है कि उनका या तो ईष्ट प्रबल था या उनके निर्मल हृदय में भवितव्यता का चित्रण पूर्व में ही अंकित हो जाता था। यह वसीयत 92 के वै. की है और प्रतिष्ठा 93 के माघ में सम्पन्न हुई। प्रतिष्ठा यद्यपि उनके द्वारा सम्पन्न नहीं हुई पर प्रतिष्ठा का श्रेय उन्हीं को प्राप्त जाता है।

यद्यपि पारिवारिक संबंधों को व्यावहारिक धरातल पर उन्होंने अवश्य निभाया, परन्तु उनकी वसीयत के अनुसार यही निष्कर्ष निकलता है कि वे अपने परिवार से सन्तुष्ट नहीं थे। उन जैसे निर्मल, दानवीर, भावुक व्यक्ति अपनों से नाराज रहे हैं तो अवश्य ही उसके कारण गहरे होंगे? नाराज

होते हुए भी उन्होंने स्वयं कर्त्तव्यों से मुँह नहीं मोड़ा और न श्री खीमचंद को ऐसा करने को कहा। उन्होंने अपनी वसीयत में श्री खीमचंद शाह को यही दिशा निर्देश दिया कि व्यवहार में कभी न्यूनता नहीं आने दें।

उन्होंने अपनी पत्नी के लिए भी अलग से व्यवस्था करके उसके आत्मसम्मान को सुरक्षित कर दिया था। उन्होंने उस युग में, जब कारीगर को दैनिक मजदूरी डेढ़ आना थी,, अपनी पत्नी के लिए 50,000 अलग से जमा करवा दिए थे। 10,000 अपनी पुत्रवधु के लिए भी अंतिम समय में वात्सल्य भावना से जमा करवाए। सास–बहु के पास मोतीशा की गरिमा के अनुकूल ज्वेलरी भी थी। परन्तु यह व्यवस्था अलग से इसलिए की ताकि उन्हें धार्मिक कार्य में खर्चे के लिए कभी खिन्नता का अनुभव न हो।

पत्नी की गरिमा की सुरक्षा तो उन्होंने की ही, साथ ही उनके हृदय में वात्सल्य भी गहराई से छलकता था। उनके स्वयं के पुत्री नहीं थी, परन्तु उस स्नेह की पूर्ति उन्होंने पुत्रवधु से ही की थी। उन्होंने कभी पुत्रवधु को बेटी से कम नहीं समझा। उन्होंने पुत्रवधु गुलाब को व्यावहारिक प्रतिष्ठा देते हुए उसकी आवश्यकताओं पर कभी प्रहार नहीं किया। धीर, उदात्त, पारिवारिक और धार्मिक मोतीशा महानायक की संपूर्ण गरिमा से ओतप्रोत थे। वे इस बात का पूर्ण ध्यान रखते थे कि माता–पिता आदि संपूर्ण परिवेश को छोड़कर

आयी अपनी पुत्रवधु को किसी भी प्रकार की रिक्तता अथवा अभाव की अनुभूति न हो। आखिर इसी से तो उनका आंगन और उनके परिवार की गरिमा थी। गुलाब भी फूल ही थी। मोतीशा ने गुलाब को बेटी समझकर स्नेह, ममता और वात्सल्य दिया था, तो गुलाब ने भी उन्हें पिता का ही आदर, श्रद्धा और गरिमा प्रदान की थी।

अपनी कुल परंपरा के अनुरूप ही उसने अपने जीवन और चिंतन को ढाल दिया था। समय पर उठना, घर के समस्त कार्यकलापों को अपने निर्देशन में करवाना, पूजा–पाठ आदि के लिए ठीक समय पर तैयार हो जाना उसकी नित्यक्रिया थी।

मोतीशा स्वयं सादा खाते थे और पूर्ण सादगी से रहते थे परंतु यह जरूर चाहते थे कि गुलाब शाही तरीके से रहे। इसकी पूर्ति वे समय–समय पर करते रहते थे। गुलाब का जन्मदिन हो अथवा दीपावली, उसे कीमती उपहार देना कभी नहीं भूलते थे। गुलाब उनकी इस पितृवत्सलता पर अभिभूत थी।

वह इस घर की कुलवधु बनकर सम्पन्नता के कारण इतरायी नहीं थी अपितु देवतुल्य सास–ससुर को पाकर स्वयं को भाग्यशाली ही समझती थी। उनकी सेवा को उसने कर्त्तव्य न समझकर सौभाग्य समझा था। ऐसे महामानव का स्नेह–प्यार और दुलार भी भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है।

गुलाब का उनकी ममता पर एकाधिकार था। अपने सास–ससुर की शीतल छाँव में उसने सदैव स्वयं को अल्हड़ और निश्चिंत समझा था। अपनी मासूमियत से वह घर की ही नहीं, मोतीशा और दीपा के आँखों की कीकी थी।

निश्चित रूप से मोतीशा का व्यक्तित्व किन्हीं अद्भुत परमाणुओं से निर्मित था। उनके विशिष्ट और आश्चर्यजनक व्यक्तित्व को देखकर लगता था कि क्या ऐसा कोई गुण शेष भी रहा था, जो उनमें नहीं था। क्या वे मिट्टी और हाड–मांस से बने न होकर साक्षात् गुणों के पिंड थे? प्रेम की गंभीरता, उदारता, दानवीरता, कोमलता, तेजस्विता, प्रभुभक्ति और प्रखरता उनमें कूट–कूट कर भरी हुई थी।

उनकी वसीयत के अनुसार उन्होंने स्पष्ट निर्देश दिए कि व्यवस्था में कभी विवाद की स्थिति पैदा हो तो धैर्य के साथ अमरचंद दमणी की सलाह के अनुरूप ही निर्णय ले परंन्तु कोर्ट कचहरी से बचने का प्रयत्न करे। इससे उनकी भावना और गरिमा का अहसास होता है कि वे धन और सम्पत्ति की अपेक्षा इज्जत को प्राथमिकता देते थे। वे कभी भी गृहक्लेश की बातों को घर की चौखट से चौराहे पर लाना पसंद नहीं करते थे।

वसीयत के अंतिम मुद्दे में उन्होंने समस्त वाद–विवाद का अंतिम निर्णय करने के लिए अपने परम मित्र सेठ जमशेदजी, जीजीभाई, वाडियाजी, सेठ वरमजी होरमजी को

अधिकृत किया था।

इसके साथ ही जो कमजोर और कर्ज चुकाने में असमर्थ हैं, उन्हें किसी भी स्थिति में परेशान नहीं करने का भी आदेश दिया। 1 लाख रुपए की व्यवस्था उसी कार्य के लिये अलग कर दी। कितनी संवेदनशील होगी उनकी मानसिकता। आज मानव अपने आनंद के लिए भले ही लाखों–करोड़ों का चूना लगा दें परंतु दान के नाम पर और वह भी अनाम और कमजोर तबके के लिए तो वह प्रतिशत भी देना नहीं चाहता। नाम और कीर्ति की चाहत में वह भले ही उदारता से खर्च कर दे परंतु जहाँ न कीर्ति की आशा है और न नाम के स्थायित्व की संभावना है, वहाँ कुछ रुपए खर्च करना भी मानवीय संवेदनाओं की पराकाष्ठा है।

धीरोदात्त नायक के जो भी आवश्यक गुण होते हैं, वे सारे मोतीशा में जन्मजात थे। वे संपन्न थे, पर विपन्नता भी उन्होंने देखी थी अतः विपन्न मानव की मानसिकता को वे सूक्ष्मता से पहचानते थे। स्वयं कभी कर्जदार रहे थे अतः कर्जदारों की चिंता से वे अपरिचित कैसे रह सकते थे? खीमचंद को स्पष्टतः कह दिया था कि वे उनके समय के समस्त कर्जदारों का हिसाब साफ कर दें।

पालीताणा का कार्य अधूरा था। अतः उन्होंने पालीताणा के विशाल कार्य को ध्यान में रखते हुए संभावित राशि की अलग से घोषणा कर दी थी। लगभग ढ़ाई लाख

का कार्य अभी बाकी था। यद्यपि वे चाहते थे कि प्रतिष्ठा का कार्य अपने हाथों ही संपन्न करे, पर यदि यह संभव नहीं हो तो भी खीमचंद शाह पर किसी प्रकार का बोझ न पड़े। इस हेतु उन्होने सारी व्यवस्थाएँ स्वयं के निर्देशन में ही कर दी थी।

वसीयत पर उन्होंने अपने हस्ताक्षर करके उसकी मूल कॉपी बम्बई की सुप्रीम कोर्ट में 1892, वैशाख शुक्ला तृतीया को रजिस्टर्ड करवा दी थी।

उनके स्वास्थ्य में निरंतर गिरावट आती जा रही थी। सेठानी दीपा देवी, बेटा खीमचंद शाह, पुत्र वधु एवं मित्रादि वर्ग उनकी शारीरिक स्थिति से व्यथित थे। प्रतिष्ठा कराने के लिए उन्होंने गुरुदेव से मुहूर्त भी पुछवाया परंतु दुर्भाग्य से 93 से पूर्व मुहूर्त की संभावना नहीं थी। वे समझ गए कि जीवन का यह महत्वपूर्ण अमरस्तंभ मेरे द्वारा पूर्णता को प्राप्त नहीं करेगा।

रोम–रोम में रमा यह सपना नियति की क्रूरता के द्वारा अधूरा ही रहा। यद्यपि स्वास्थ्य ने अपनी चंचलता और अपनी बेवफाई को प्रकट करने में कसर नहीं छोड़ी पर उससे संघर्ष करने वाला भी असाधारण महामानव था। वे न तो मौत से घबराए और न युग की धारा के साथ सामान्य व्यक्ति की तरह बहे।

रुग्णता की इस स्थिति में उन्होंने अपनी पत्नी व अन्य सभी निकट के स्वजनों को बुलाकर कहा–मैंने बहुत बपचन में यह दोहा सुना था–

"जब तू आया जगत में, जग हँसे तू रोय।
करणी ऐसी कर चलो, तुम हँसो जग रोय।।"

जहाँ तक संभव हुआ, मैने इस दोहे के अनुरूप अपना जीवन जीने का प्रयत्न किया है। मैंने अपनी बुद्धि और क्षमता

का यथासंभव लोकहित में उपयोग किया है। यद्यपि कोई भी मानव स्वयं परिपूर्ण नहीं होता। किसी न किसी रूप में वह अवश्य ही त्रुटियां करता है। मैंने भी अपने जीवनकाल में किसी अवसर पर जाने–अनजाने किसी के हृदय को दुःखाया ही होगा। आज मैं चेतना की समग्रता से उन भूलों की क्षमा चाहते हुए अपने मित्रों व निकट संबंधियों से एक वचन लेना चाहता हूँ।

मोतीशा अनवरत बोलते जा रहे थे और इर्द–गिर्द जमा सभी लोग प्रेम की अधिकता से अश्रुकण बहाते जा रहे थे।

मोतीशा ने आगे कहा–मृत्यु शाश्वत सत्य है। मैं मृत्यु को वस्त्र परिवर्तन की घटना ही समझता हूँ। मैं जानता हूँ आप सभी को मुझसे गहरा लगाव है पर अब उस आत्मीय लगाव की परीक्षा है। कोई भी मानव अपने जीवनकाल में सारे सपने पूरे नहीं करता। कुछ न कुछ सपने अपूर्ण रह ही जाते है। मेरे अपने सपने भी अधूरे रह गए। मेरे जीवन का मुख्य लक्ष्य शंत्रुजय शिखर का निर्माण व प्रतिष्ठा कार्य था पर स्वास्थ्य की स्थिति देखकर लगता है, मेरा यह सपना अधूरा रहेगा।

यदि मेरा जीवन न रहे तो जो तयशुदा मुहूर्त हैं, प्रतिष्ठा उसी मुहूर्त में होनी चाहिए। (मोतीशा ने प्रतिष्ठा हेतु उपक्रम किया था पर उनके भाग्य ने यहाँ धोखा दिया था।)

संपूर्ण जीवन में अपराजित रहने वाला वह महान् योद्धा यहाँ अपना अभिप्सित नहीं कर पा रहा था। उन्होंने विद्वान् ज्योतिषाचार्य से निवेदन किया था कि वे प्रतिमा प्रवेश व प्रतिष्ठा का मुहूर्त 92 में तय करे। ज्योतिषाचार्यों ने गणना के आधार पर अस्वीकृति देते हुए 93 में माघमास हेतु स्वीकृति दी थी।

मोतीशा ने अपनी स्थिति से अनुमान लगा लिया कि वे 93 तक नहीं बच पायेंगे। उस समय शोक की परम्परा अधिक समय रखी जाती थी। इसी को लक्ष्य में रखते हुए मोतीशा ने दीपा देवी व पुत्र–मित्रादिकों को सूचित किया कि मेरी अनुपस्थिति को भी उपस्थिति मानकर पूर्ण उल्लास के साथ प्रतिष्ठा करावें।

मोतीशा ने कहा–मेरी मृत्यु पर किसी भी परम्परा का पालन नहीं किया जाए। रीति–रस्मों के स्थान पर मेरी स्मृति में अधिक से अधिक आराधना करें। उत्साह से चातुर्मास बाद पालीताणा संघ सहित यात्रा करें व आचार्य भगवंत गच्छनायक श्री जिनमहेन्द्रसूरि की निश्रा में प्रतिष्ठा विधि संपन्न करे।

उपस्थित सभी लोगों की हिचकियाँ बंध गई। मोतीशा इन्सान नहीं, देवता थे। निःसंदेह समय बीत जाता है पर उसके हस्ताक्षर अमिट होते हैं। मोतीशा की आर्थिक उदारता ने आवश्यकता के अनुरूप कितने ही लोगों की

इज्जत बचायी थी। धार्मिक संस्थाओं की स्थापना की थी। स्थापत्य और संस्कृति के अमरतत्वों का निर्माण किया था। पशुजगत की पीड़ा को अपनी संवेदनशीलता से समझकर उन्हें पीड़ामुक्त करवाया था। वे सर्वधर्म समन्वय के प्रवक्ता नहीं अपितु अनुयायी थे। पारिवारिक प्रेम से रोम–रोम अनुप्राणित था। मित्र व संबंधियों की आवश्यकता के मूक व्यवस्थापक थे। धर्म के सजग प्रहरी थे। अतः उनके इस संवाद से चारों ओर शोक की लहर तो फैलनी ही थी।

गुलाब की मासूम और श्रद्धापूरित भावनाएँ बिलख उठी। दीपा की स्थिति विचित्र थी। एक ओर उसका देवता मृत्युशय्या पर था, तो दूसरी ओर खीमचंद और गुलाब मोतीशा के पाँवों में अपना सिर टिकाकर जार–जार रो रहे थे। वह किसे संभाले?स्वयं को या रो रहे परिवार को।

वह पत्नी के साथ माँ भी थी। अपनी भावनाओं पर जबरन् नियंत्रण करके उसने फूट–फूट कर रो रहे बेटे और बहू को संभाला। उन्हें वहाँ से दूसरे कक्ष में भेजा ताकि मोतीशा मानसिक रूप से घायल न हो। उसने साहस करके मोतीशा को इस प्रकार की बातें नहीं करने को समझाया व तुरंत वैद्य को उपचार हेतु आमंत्रित किया।

मोतीशा ने पूर्ण धैर्य व संतुलित शब्दों में पुनः दीपा को दृढ़संकल्प होने का आग्रह किया। दीपा कैसे वचन देती?वह जान देने को तत्पर थी। पर मृत्यु से संबंधित संवाद पर

गंभीर होने का उसमें साहस नहीं था। उसने इधर–उधर की चर्चा द्वारा मोतीशा का ध्यान विकेन्द्रित करने का प्रयास किया पर असफल रही। मोतीशा के बार–बार आग्रह पर उसने संकल्पबद्ध होने को हाथ फैलाया पर हाथ मोतीशा को नहीं छू सका। वह लड़खड़ायी और वहीं बेहोश होकर गिर पड़ी।

धैर्य की साक्षात् प्रतिमा, कर्मयोगी मोतीशा का धीरज नहीं टूटा। उनके होठों पर दीपा की वचनबद्धता की मानसिकता से क्षीण मुस्कान आ गई। वे दीपा की इस क्रिया से अभिभूत हो गए। दीपा संकीर्ण एवं रूढिवादिता की पराकाष्ठा में जीने वाले युग की 18वीं शताब्दी की नारी, पर वैचारिक दृष्टि से पूर्ण आज्ञांकित।

दीपा अनवरत मोतीशा को प्रभुशक्ति से सराबोर रखने का उपक्रम करती। वह एक पल के लिए भी मोतीशा की आँखों से ओझल नहीं होती। मोतीशा लगभग छः माह अस्वस्थ रहे पर उन्होंने स्वयं को अवांछित या बोझ जैसा महसूस नही किया। होठों पर स्निग्ध मुस्कान और आँखों में प्रेम का गंभीर सागर लिए दीपा प्रतिपल सेवा में प्रस्तुत रहती थी।

समय व्यतीत होता जा रहा था। मोतीशा का तन रोग से जर्जरित होता रहा पर मन पूर्ण समाधि में लीन था। पर्युषण पर्व की पवित्र आराधना चल रही थी। मोतीशा का

मन घायल पंछी की तरह छटापटाकर रह जाता था। वे चाहते थे कि वे भी इन पवित्र दिनों में पवित्र साधना द्वारा स्वयं को पवित्र बना ले। परमात्मा के मंदिर में पहुँचकर घंटोपर्यन्त उनकी अमृत रस झरती प्रतिमा से अपनी आत्मकथा कहे, परंतु स्वास्थ्य उनकी आकांक्षापूर्ति में बाधक बन रहा था।

यद्यपि अब वे अपने नए भायखला मंदिर के ठीक सामने बने भवन में ही रहते थे, जहाँ शिखर में विराजमान प्रतिमा स्पष्ट नजर आती थी, परंतु प्यासे को एकाध बूंद से कहाँ तृप्ति मिले?प्रभुभक्ति तो उनके जीवन की अनिवार्यता थी और उसी के अभाव में अब उन्हें मजबूरन रहना पड़ रहा था। इसी कारण हर समय उन्हें अपने जीवन में एक खालीपन की अनुभूति हो रही थी।

उनकी आँखों में तैरता सूनापन स्पष्ट परिलक्षित होता था, फिर भी वे शेर बनकर हालात का मुकाबला कर रहे थे। इस स्थिति में भी उन्होंने स्वयं के विवेक द्वारा समझौता कर लिया था कि "आंगन से मैं परमात्मा की प्रियमुद्रा का अवलोकन तो कर सकता हूँ।" समय अपनी अबाध गति से निरंतर आगे बढ़ रहा था।

उस युग में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि पति की मृत्यु के अत्यल्प समय बाद ही समारोह का आयोजन हो। जहाँ व्यक्तिगत निष्ठा हो, वहाँ मात्र इसी बात की

सावधानी रखी जाती है कि अपने आराध्य की समस्त आकांक्षाओं का और मूक आदेशों का पालन हो। वहाँ यह नहीं देखा जाता कि उसकी इस क्रिया की वातावरण में क्या प्रतिक्रिया होगी?

मोतीशा अब पूर्णतः शान्त और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ थे। दीपा ने उन्हें पूर्णतया निश्चिंत कर दिया था। वे जानते थे कि उनके बेटे–बहू इतने संस्कारी, गुणवान् और मातृभक्त हैं कि अपनी माँ के आदेशों का उल्लंघन स्वप्न में भी नहीं कर सकते। वे तो जन्मजात धार्मिक और संस्कारी पुत्ररत्न है।

मोतीशा सेठ का समय धार्मिक आराधना और प्रभुभक्ति में बीतने लगा। स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिरता गया। महँगा इलाज भी मोतीशा के स्वास्थ्य को स्वस्थ नहीं बना सका। दीपा निरंतर उनके पथ्य औषध का व्यवस्थित ध्यान रखती थी पर जहाँ आयु क्षीण हो जाए, वहाँ न दवा काम आती है न दुआ।

दीपा का मन बड़ी कठिनाई से कर्त्तव्य और प्रेम में समन्वय स्थापित कर पाया था। उसने भारतीय आदर्श एवं कर्त्तव्यनिष्ठ पत्नी का बाना पहनकर अपने हृदय सागर में उठती प्रेम की तरंगों को अंदर ही अंदर मार दिया था। इसी कर्त्तव्यनिष्ठा ने उसे अपने प्रियतम की डूबती और निरंतर मद्धिम होती जा रही जिंदगी की बाती को देखने और उस

पर गंभीर होने को मजबूर कर दिया था। वह भी आखिर उसी परंपरा की बहू थी, जिस परंपरा को उसकी सास ने कायम किया था। उसने अपने ससुर की रूग्णावस्था में चुपके–चुपके आँसू बहाती और प्रत्यक्ष में पूर्णतः शांत, स्वस्थ व आराधना का पाथेय करवाती सास को देखा था।

पर्यूषण का पाँचवा दिन प्रकृति के आंगन में प्रसन्नता के फूल बिखेरता उदित हो गया था। आज का उल्लास अनोखा था, क्योंकि आज का प्रभात प्रभु महावीर के जन्म का संदेश लेकर आया था। चारों ओर प्रकृति मुक्त हास्य बिखेर रही थी। जनता का हृदय भी अनेक उमंगों से तरंगित हो रहा था।

यद्यपि प्रभु महावीर तो हजारों वर्ष पूर्व प्रकाश की अगणित किरणों के साथ धरती पर अवतरित हुए थे व अपने उपदेशों की चाँदनी बरसाकर जनता को आनंदामृत की अनुभूति कराके निर्वाण को प्राप्त हो चुके थे, परंतु उनकी भक्त जनता आज की भाद्रपद की शुक्ला एकम को उनके जन्मदिन का संदेश श्रवण कर धन्यता का अनुभव करती है। निःसंदेह उस दिन ऐसा अनुभव होता है, जैसे प्रकृति का कण–कण नृत्य करता हुआ प्रभु के जन्म महोत्सव के उपलक्ष्य में बौरा रहा है।

प्रकृति का यह आनंद, प्रभुभक्तों की यह खुशियाँ आज मोतीशा के घर में चिराग लेकर ढूंढे से भी नजर नहीं आ रही

थी। नयी अरूणिमा....नया प्रभात.....नया सवेरा जरूर हो गया था पर मोतीशा की दहलीज बासी फूल की तरह कुम्हलायी हुई थी। सभी के चेहरे आँसुओं से नहाए हुए थे।

आज मोतीशा अधिक अस्वस्थ थे। बुजुर्गों की अनुभवी आँखों ने उनकी डूबती जीवन–ज्योति को ताड़ लिया था। नवकार महामंत्र की धुन प्रारंभ थी। मोतीशा की निस्तेज पड़ी आँखों में तृप्ति व संतोष के भाव लहरा रहे थे। यद्यपि वे इस समय साक्षात् मौत से संषर्घ कर रहे थे और इस युद्ध में पराजय का उन्हे शत–प्रतिशत अंदेशा था पर न आँखों में कंपन था, न हृदय में बेचैनी परंतु स्निग्ध और सुकोमल तृप्ति का गौरव उनके होठों पर छलक रहा था। छलकता भी क्यों नहीं ? उन्होंने जीवन का मंगल–प्रवेश निर्माण के अमृत कलश द्वारा किया था। मौत से तो वह इंसान घबराता है, जो जीवन में दूषित प्रवृत्तियों द्वारा स्वयं के जीवन को मलिन बना देता है और स्वयं मलिन होने के साथ–साथ अपने कार्य–कलापों द्वारा दूसरों के लिए भी पीड़ा और कष्ट का सतत सर्जन करता रहता है।

मोतीशा का जीवन पूर्ण परोपकारमय था। परोपकार की रंगबिरंगी आभा से उनका आभावलय पूर्ण दैदिप्यमान था। जितना संभव हुआ, तन–मन–धन से उन्होंने श्रेष्ठ, मंगलमयी प्रवृत्तियों का सूत्रपात किया। कहीं कोई अभाव अथवा कमी नहीं आने दी। धर्म के प्रत्येक विभाग को पूर्ण

समृद्ध और सक्षम बनाया था। उनके चेहरे पर बड़ी पवित्र मुस्कान तैर रही थी। ऐसा लग रहा था कि वे हार कर भी जीत गए हैं। जीवन मूल्यवान नहीं है अपितु मूल्यवान उस जीवन के माध्यम से सम्पन्न कार्यकलाप है। अगर जीवन की लम्बी आयु प्राप्त करके स्मरणीय और अनुकरणीय इतिहास का सर्जन नहीं कर पाए हैं तो वह प्राप्त दीर्घायु भी निरर्थक और भूतल पर बोझिल बन जाती है। अल्पायु को पाकर भी मानव अपनी अनूठी साधना पद्धति द्वारा महान् इतिहास पुरुष के रूप में स्मरणीय बन जाता है।

मेरी स्मृति स्वतः दिल्लीपति मदनपाल के प्रतिबोधक प्रकट प्रभावी श्री जिनचंद्र सूरि की ओर घूम रही है, जिन्होंने मात्र आठ साल की उम्र में आचार्य पदवी प्राप्त की और 26साल की उम्र में तो वे स्वर्गवासी भी हो गए पर आज भी देश में ही नहीं, विदेशों में भी उनके नाम की धूम है। मानव उम्र से नहीं, ऊर्जा के सदुपयोग से पहिचान कायम करता है।

मोतीशा की उम्र अधिक नहीं थी पर उनके आदर्शों ने, परोपकारिता की खुश्बू ने देश–विदेश में उनके नाम को लोगों की जुबां पर चढ़ा दिया था। वे इंसान के रूप में एक समृद्ध संस्था थे। और यही कारण था कि उनका जीवन जनता की मुस्कान थी।

मोतीशा की अधिक अस्वस्थता के समाचार वायु के

साथ संपूर्ण बम्बई में फैल गए। जिसने भी सुना, वही कर्त्तव्यनिष्ठ, समाज समर्पित मानवरत्न की झलक पाने के लिए भायखला के बंगले पर पहुँच गया।

मृत्यु जीवन का परिणाम है। यह परिमणाम प्रत्येक मानव की जिंदगी में आता है। सुखद भी हो सकता है, दुःखद भी। मृत्यु अंतिम पड़ाव के साथ ही मानव की जीवन पद्धति का परीक्षण काल भी है। यह समय ही जीवन की वास्तविक स्थिति का सांगोपांग चित्रण प्रस्तुत करता है कि उसके प्रति चाहत है अथवा नफरत।

निःसंदेह आज यह पल....यह घटना....इस घटना का अंकन मेरे लिए भी अग्नि परीक्षा की स्थिति का सर्जन कर रहा है। मैं मोतीशा का जीवन मात्र लिख ही नहीं रही हूँ अपितु स्नेह और श्रद्धा का एक महीन धागा भी उनके साथ महसूस कर रही हूँ। ऐसा पल–पल महसूस कर रही हूँ कि वे एक खीमचंद शाह के ही नहीं, सभी के पितृ पद पर प्रतिष्ठित थे। हाथों में एक कंपन है, हृदय की धड़कनें असामान्य हैं, अंगुलियाँ बेबस हैं। जिसके जीवन के साथ मैं विगत आठ माह से निरंतर भावनात्मक स्तर पर जुड़ी हुई हूँ, कैसे स्वयं को कुछ ही पंक्तियों द्वारा मुक्त करूँ?

आँखों में स्वतः भीगापन उतर आया है। हृदय में गहरी टीसें उठ रही हैं पर लेखिका की कर्त्तव्यनिष्ठा का प्रमाण पत्र प्रस्तुत करते हुए उस घटना का अंकन करना ही होगा,

जिसकी कल्पना भी रौंगटे खड़े करती है। लेखिका की यह कैसी मजबूरी है कि उसे अपने ही इतिहास पुरुष को अनंत की यात्रा पर स्वयं के लेखन द्वारा ही प्रस्थित कराने का दायित्व निभाना पड़ता है। काश! मैं इस कर्त्तव्य से स्वयं को मुक्त करती परंतु प्रारंभ किए कार्य को समाप्ति के पूर्व त्यक्त करना भी तो इतिहास और साहित्य की दृष्टि से अपराध है। मैं स्वयं की भावनाओं को आहत करके भी इस कठोर पगडंडी पर अविचलित भावों से चलूंगी ही क्योंकि साहित्यिक निष्ठा की यह भी कसौटी है।

यद्यपि ऐसे धीरोदात्त महामानव के प्रयाण से प्रकृति में विचित्र सा सन्नाटा छा जाता है पर वह भी मौत के समक्ष निरुपाय और हताश है। यद्यपि मोतीशा स्वनिर्मित टुंक के मंदिर की प्राण–प्रतिष्ठा के लिए जीना चाहते थे पर सांसों का कोष समाप्त हो चला था। एक बार कोष समाप्त हो जाए तो उसे पुनः भरना परमात्मा के लिए भी असंभव था तो मोतीशा उसे भरने की कल्पना भी कैसे करते?

मोतीशा की आँखें परमात्मा पर स्थिर थी, हृदय परमात्म भक्ति के तारों में बंधा हुआ था। होठों पर नवकार महामंत्र के अक्षर थे। चारों ओर संसार के स्वरूप का विश्लेषण करते भजन गूँज रहे थे। संसार के प्राणीमात्र से वे क्षमायाचना कर चुके थे। आवश्यक और उपयोगी वस्तुओं के अतिरिक्त संपूर्ण सामग्री का उन्होंने त्याग कर लिया था।

इतने में एक हिचकी आई और मोतीशा की गर्दन एक ओर लुढ़क गई। आँखे खुली ही रह गई।

दीपा ने जैसे ही अपने स्वामी के मृत शरीर को देखा, वह चीख मारकर रो पड़ी। हाथों में पहनी चूड़ियाँ दीवारों पर दे मारी। उसका सजा सजाया गुलशन, सपनों का संसार पलभर में बिखर गया। वर्षों का साथ एक पल में छूट गया। जन्मों–जन्मों तक साथ निभाने की कल्पना करने वाला मीत पलक झपकते ही अन्यलोक की ओर प्रस्थित हो गया। दीपा टूटी लता की तरह गिर पड़ी। उसका सरताज, जो उसकी पलभर की उदासी को भी नहीं सह सकता था, वही सदा–सदा के लिए बेसहारा छोड़कर चिरनिद्रा में सो गया।

आज वह कितना भी रो ले, पाषाण भले ही पिघल जाय पर मोतीशा की न चेतना लौटनी थी और न उसके सुन्न पड़े हाथ आँसू पोंछने को आगे बढ़ने वाले थे। वह रोती रही अपने स्वामी के कदमों को पकड़–पकड़ कर, उन्हें उठाने का उपक्रम करती रही पर नाकाम रही।

आसपास उपस्थित महिलाओं ने ही दीपा को सान्त्वना के शब्दों से जैसे–तैसे बहलाया और मोतीशा के शरीर से जुदाकर उन्हें दूसरे कक्ष में ले गई। दीपा की जगमगाती सिंदूरी माँग सूनी हो गई।

एक महानायक के जीवन का अंत अवश्य हो गया था पर उनके अपने अधूरे कार्य इस रंगमंच पर मौजूद थे। मोतीशा के सात्विक अनुराग से रंगी दीपा ने वही किया, जैसा उसके प्रियतम का आदेश था। उसने अपनी रोम–रोम में व्याप्त पीड़ा को अंदर ही अंदर समेट लिया। न उसने परम्परानुसार रूदन द्वारा अपने हृदय के दर्द को बाहर निकाला और न शोक की परम्परा का वहन किया। जो भी सान्त्वना देने आता, उन्हें माला दे दी जाती ताकि वे भी नमस्कार महामंत्र का जाप करें और मोतीशा की स्मृति को अपनी पवित्र श्रद्धांजलि समर्पित कर सके।

जब मोतीशा की मृत्यु को कुछ दिन हो गए तो मोतीशा की संपूर्ण सलाहकार व मित्र मण्डली खीमचंद शा के नेतृत्व में उन्हीं के बंगले पर एकत्रित हुई। मृत्यु के तुरंत बाद होने वाला संघ और प्रतिष्ठा के कार्यक्रम को स्थगित किया जाय अथवा सेठजी के आदेशों का पालन करते हुए पूर्व निश्चित तिथि पर आयोजन तय किया जाय, इस मुद्दे पर गंभीर चर्चा चली। न आदेश का उल्लंघन करने का साहस था और न आदेश की पालना का। निर्णय कौन करे?प्रतिक्रिया कौन संभालेगा?अंत में सेठानी दीपा देवी का क्या मानस है, उसी अनुरूप क्रियान्विति का निर्णय लिया गया।

सेठानी दीपा देवी–एक ओर पति वियोग की दारूण व्यथा, दूसरी ओर स्वर्गीय पति का अंतिम आदेश। बड़ी विचित्र स्थिति थी। कशमकश की इस भयावह स्थिति से उबरने में उसकी मदद की उसके स्वयं के विवेक और स्वर्गीय मोतीशा की अदृश्य प्रेरणा ने। उसने विवेक के द्वारा मोहग्रस्त भावनाओं पर नियंत्रण करते हुए सोचा–उनके आदेश की अवहेलना करके क्या मैं उन्हें पा सकूंगी?क्या तयशुदा मुहूर्त को अनिश्चित समय के लिए आगे धकेलकर स्वयं को संतुष्ट कर सकूंगी? मुहूर्त को आगे करने से और शोक का दिखावा करने से अगर प्रियतम के लौटने की संभावना बनती है तो अवश्य ही मैं इससे भी अधिक शोक करूँ तथा धार्मिक और आत्मिक उत्थान के उपक्रमों में बाधक भी बनूँ, परन्तु ऐसी कोई संभावना नहीं है, फिर आदेश की अवहेलना क्यों करूँ ?

आखिर मोतीशा जैसे संतपुरुष के सहवास में वह वर्षों रही थी। जीवन का प्रत्येक पल उनके साथ एकरुपता से जीया था, फिर संग का रंग कैसे नहीं चढ़ता। उसने स्वयं की भावनाओं को कर्त्तव्य की कठोर वेदिका पर चढाने का संकल्प कर लिया। उसने स्वयं के अंतर में दुर्गा की शक्ति और सावित्री की निष्ठा को प्रज्ज्वलित कर सभी को आदेश दिया कि उनके प्रत्येक अधूरे कार्यों की पूर्णाहूति उसी शालीनता और गौरव से होगी, जैसी उनकी उपस्थिति में होती। आप सभी तय मुहूर्त को लक्ष्य में रखते हुए ही संघ

और प्रतिष्ठा की तैयारी करें। वे नहीं रहे तो क्या हुआ, मैं उनकी प्रतिनिधि बनकर उनके अधूरे कार्यों को सम्पन्न करूँगी।

फिर क्या था। दीपा देवी का शालीन पर ओजस्वी आदेश पाकर सभी तैयारियों में जुट गए। वर्तमान का यांत्रिक युग नहीं था, जहां सब कुछ पलक झपकते ही हो जाए। समस्त तैयारियां वक्त और परिश्रम, दोनों चाहती थीं। सेठजी के गौरव और आदेश के अनुरूप ही सारी व्यवस्थाओं को अंजाम देना था और उसके लिए न अर्थाभाव था न उदारता का अभाव।

दीपावली के तुरंत बाद संघ प्रयाण की आवश्यक तैयारियां प्रारंभ हो गयी। चारों ओर इस शुभ संवाद को पहुंचा दिया गया। टेन्ट, बर्तन व खाने–पीने की आवश्यक सामग्री संग्रहित होने लगी। कुछ व्यक्ति पालीताणा भी व्यवस्था हेतु प्रस्थित हो गये। हजारों दर्जी पालीताणा में चन्दरवा, तम्बू, वस्त्र आदि के निर्माण में लग गये। पालीताणा और बम्बई दोनों ही स्थानों पर युद्धस्तर से संघ व अंजनशलाका प्रतिष्ठा की तैयारियां होने लगीं।

उस युग में वर्तमान की तरह महोत्सवों की भरमार नहीं थी। लोगों का उत्साह इस कारण अधिक था। व्यवस्थापक मंडली को आशा थी कि पालीताणा के एक विशाल और ऐतिहासिक महोत्सव पर कम से कम डेढ़–दो लाख जनता एकत्रित होगी। इतनी जनता की व्यवस्था

कोई साधारण घटना नहीं थी पर मोतीशा का पुण्य–प्रभाव प्रबल था और उसी कारण सारा कामकाज व्यवस्थित सम्पन्न हो रहा था।

पालीताणा का शहर व मोतीशा का आँगन तो जैसे तैयारियों का केन्द्र स्थान बन गया। अमरचंद दमणी के मुख्य निर्देशन में सारी तैयारियां होने लगी। यद्यपि अंदर ही अंदर शोक न रखने की प्रतिक्रिया अवश्य हुई पर उससे प्रभावित कोई नहीं हुआ। जब स्वयं दीपा देवी ने अपने सीने पर पत्थर रखकर शोक की परम्परा का त्याग कर दिया तो अन्य व्यक्ति का हस्तक्षेप स्वतः निस्तेज पड़ गया। ऐसा लग रहा था, जैसे मोतीशा आयोजन संबंधी किसी कार्य हेतु बाहर गये है और शीघ्र ही लौटने ही वाले हैं।

चारों ओर रंग–बिरंगे वस्त्र और कीपधड़ियां नजर आने लगी। कोई नहीं सोच सकता था कि अत्यल्प अवधि में इतनी विशाल पैमाने पर तैयारियाँ हो सकती है, पर जहां निष्ठा और श्रद्धा हो, वहां कोई भी कार्य असंभव नहीं होता। मोतीशा की मित्र–मण्डली भरे हृदय से बार–बार आँखों से बाहर आते आंसुओं को पोंछते हुए प्रत्येक कार्य को निष्ठापूर्वक अंजाम दे रही थी।

बम्बई का प्रत्येक व्यक्ति संघ प्रस्थान के दिन का बड़ी बेसब्री से इंतजार कर रहा था। आखिर इंतजार के पल समाप्त हो गये और पोष वदी सप्तमी का दिन आ ही गया, जिस दिन संघ को प्रस्थान करना था।

दीपा का हृदय विविध भावों से भरा हुआ था। उसे आज विशेष रूप से मोतीशा की स्मृति व्यथित कर रही थी। बार–बार आंसू उसके गालों पर लुढ़कते जा रहे थे। मोतीशा की सदाबहार प्रसन्न मुद्रा, भायखला प्रतिष्ठा की स्मृतियां उसके जेहन में डंक की तरह चुभ रहीं थी। कितना विचित्र हो रहा था स्वयं को संभालना उसके लिये। ऐसा कोई कन्धा नहीं था, जिसे थामकर वह अपने हृदय का गुबार निकालती और न ही ऐसी कोई गोद थी, जिसमें छुपकर वह अपने दर्द का लावा बहाती। इतना ही नहीं, उदास होने से पूर्व उसे यह भी देखना पड़ता था कि उसे कोई देख न ले।

प्रातः से ही चहल–पहल हो रही थी। चारों ओर मंगलगीतों की ध्वनि गूंज रही थी। मांगलिक बाजे बज रहे थे। नुपूरों की मधुर झंकार कानों को आनंद दे रही थी। सभी के चेहरे पर प्रसन्नता और आनंद की आलौकिक आभा नृत्य कर रही थी। प्रकृति की शीतलता अंग–अंग में चुभन पैदा कर रही थी, पर संघ में प्रयाण करने की उमंग शीत ऋतु को मात्र चुनौती ही नहीं दे रही थी अपितु विजय का उल्लास रोम–2 को निखार रहा था।

दीपा देवी के चेहरे पर दर्द अैर पीड़ा के भाव तो लहरा ही रहे थे, पर कुछ अस्वस्थता के चिन्ह भी परिलक्षित हो रहे थे पर वह साहस और धैर्य की प्रतिमूर्ति बनकर दृढ़–संकल्प के सहारे प्रत्येक कार्य में सहयोग कर रही थी। फिर भी उसका तन और मन विपरीत दिशाओं में भाग रहा था।

शंख ध्वनि के साथ हजारों संघयात्री खीमचंद शाह के नेतृत्व में घर से प्रस्थित हुए। विशाल और सुसज्जित हाथी पर खीमचंद सेठ अभिवादन की मुद्रा में आसीन हुए। विशाल जुलूस बम्बई के मुख्य मार्गों से होता हुआ समुद्र किनारे पहुंचा। जिस समय जुलूस समुद्र किनारे पहुंचा, उस समय जुलूस का स्वरूप ऐतिहासिक और अद्‌भुत हो चुका था। लगभग एक लाख व्यक्ति जांत–पांत का भेद किये बिना जुलूस में सम्मिलित हुए थे। इतना व्यापक जुलूस बम्बई के इतिहास में आज तक कभी नहीं निकला था।

समस्त पारिवारिक सदस्यों ने संघपति खीमचंद शाह को यथाशक्ति तिलक निकालकर भेंट प्रदान की। स्वयं जमशेदजी जीजीभाई ने, जब वरघोड़ा उनके घर से होकर निकला तो हाथी को रोककर हाथी पर बिराजमान संघमाता दीपा देवी, संघपति सेठ खीमचंद शाह व उनकी धर्मपत्नी को क्रमशः बहुमूल्य शॉल, साफा व चुनड़ी से सम्मानित किया एवं उसके साथ ही एक लाख रुपये भेंट स्वरूप तिलक करके प्रदान किये। मोतीशा ने अपने जीवन काल में अपने पवित्र, उदार और निर्मल आचरण से जिन बीजों का वपन किया था, खीमचंद शाह उन मीठें फलों का रसास्वादन कर रहे थे।

वर्तमान की संकीर्ण मनोवृत्ति के लोगों के लिये उपरोक्त घटना आदर्श और सर्चलाईट का कार्य करती है। धर्म के नाम पर क्लेश करके सुर्खियों में छाए रहने वाले

नेतागण आपस में सारे सामाजिक और व्यावहारिक घटनाक्रमों में पूर्ण एकता और समन्वय से रहते हैं। उनका प्रपंच और भ्रम से परिपूर्ण जीवन भोली जनता के लिये तो खतरनाक होता ही है, पर स्वयं उनके लिये भी कम खतरनाक नहीं हैं।

संघ में मात्र बम्बई के लोग ही सम्मिलित नहीं थे, अपितु कच्छ, हालार, गुजरात, गोडवाड, मारवाड़, मालवा, मेवाड़ आदि विभिन्न प्रांतों से लोग यात्रा लाभ हेतु सम्मिलित हुए थे।

अहमदाबाद से सेठ हेमाभाई भी विशाल संघ लेकर पालीताणा पहुंच रहे थे। ऐतिहासिक दस्तावेजों के अनुसार कुल मिलाकर छोटे बड़े एक हजार संघपति संघ लेकर पालीताणा पहुंचने को प्रस्थित हो गये थे।

संघ चूंकि पैदल नहीं था, जहाजों द्वारा ही संघ के पालीताणा पहुंचने की व्यवस्था थी। मात्र प्रातः दो घंटे जहाजें चलती थीं, उसके अतिरिक्त समय में धर्म आराधना, प्रभुभक्ति आदि आध्यात्मिक कार्यक्रमों की व्यवस्था रहती थी। संघ के खाने–पीने, रहने आदि की समस्त व्यवस्थाओं का उत्तरदायित्व अमरचंद दमणी आदि अपने कुशल नेतृत्व में संभालते थे।

जब क्रमशः समुद्री यात्रा संपन्न कर संघ माघ कृष्ण एकम को पालीताणा पहुंचा, तब वहां लगभग डेढ़ लाख की जनता एकत्रित हो गयी थी। जब संघ प्रवेश हुआ, उस

समय का वातावरण रंग–बिरंगा और अनूठा था। भक्ति और आराधना के नशे में चूर जनता की उमंगें आकाश की बुलंदियों को छू रही थी। पालीताणा की उस समय स्थानीय जनता की संख्या 10 हजार के आसपास थी परन्तु बाहर से आयी जनता की संख्या तो डेढ़ लाख से भी ऊपर हो चुकी थी। वर्तमान की तुलना में उस समय का पालीताणा इतना अधिक व्यापक और विस्तृत नहीं था। सबसे बड़ी धर्मशाला मोतीशा की ही थी।

पालीताणा की समस्त धर्मशालाओं की कुल क्षमता 5 हजार से अधिक न थी अतः यात्रीजनों के लिए विशाल तम्बू खींचे गये। यात्री लोग भी आपस में स्नेह और प्रेमपूर्वक रहने लगे। तलहटी के समीप ही विशाल, सुंदर और आकर्षक रंगमंडप बनाया गया, जहाँ पर भव्य और नयनरम्य पांच हजार मूर्तियों को अंजनशलाका हेतु विराजमान किया गया। मंडप की साज–सज्जा महंगी पर पवित्रता से भरपूर थी। उसके बाह्य मंडप में हजारों लोग एक साथ बैठकर भक्ति और पूजा का आनंद ले सकें, इस हेतु विशाल पूजा मंडप (समारोह स्थल) का निर्माण कराया गया।

जब यात्रियों की कुल संख्या डेढ लाख से ऊपर थी तो इन सभी की व्यवस्था में लगे स्वयंसेवकों की संख्या कितनी अधिक होगी? निःसंदेह इतनी विशाल जनसंख्या को लगभग डेढ़ माह तक पूर्णतया नियंत्रित करना, उनकी समस्त सुविधाओं पर सतर्क नजरें रखना, सभी समस्याओं

से मुक्त रखना व्यवस्थापकों के पूर्ण समर्पण और कुशल प्रशासन का नतीजा था। कुछ समय के लिये सामान्य भीड़ पर नियंत्रण करना भी चुनौती मानी जाती है, वहाँ इतने विशाल जन–संकुल की व्यवस्था करना कार्यनिष्ठा और कार्यकुशलता का ही परिणाम है।

आहार की व्यवस्था तो फिर भी संभव है परंतु इतने अधिक लोगों के शौच की व्यवस्था..... निःसंदेह समस्या हो सकती थी परन्तु देव, गुरु और धर्म की अनुकंपा, मोतीशा की पूनीतात्मा की दिव्याशीष और कार्यकर्त्ताओं का समर्पण, इस त्रिवेणी संगम से यह समस्या भी सुलझ गयी थी। सभी यात्री शासन द्वारा नहीं, आत्मानुशासन से संचालित थे। कार्यक्रम में किसी प्रकार की बाधा डालना या व्यवस्थापकों की व्यवस्था में हस्तक्षेप करना आशातना समझते थे।

लगातार इस दीर्घ प्रवास के दौरान शौच की व्यवस्थित व्यवस्था न होती तो संभव है हैजा, मलेरिया अथवा अन्य किसी भी बीमारी का प्रकोप हो सकता था परन्तु ऐसे स्थान पर शौच की व्यवस्था थी, जहां से कीटाणु आहार आदि के माध्यम से पेट तक नहीं पहुंचते थे, साथ ही सभी स्वच्छता के प्रति अति जागरुक थे।

भोजन मंडप का निर्माण वर्तमान में जहाँ सेठ नरसी केशवजी, मोती सुखिया, चंपा निवास एवं पुरवाई आदि की धर्मशाला है, वहाँ किया गया था। पानी के लिये मोतीवाव का विशेष रूप से निर्माण कराया गया था।

यात्रियों को आमंत्रित करके ही व्यवस्थापकों ने अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं समझी थी अपितु अपना समस्त आराम, विश्राम छोड़कर सतत् यात्रियों की सुधि लेना, उनकी सुविधाओं का पूरा–पूरा ध्यान रखना वे अपना अहोभाग्य समझते थे।

उस समय पालीताणा रियासत के शासक ठाकुर श्री प्रतापसिंहजी गौहेल थे। उन्होंने अपनी सीमा और राज्य में आये बेताज बादशाह श्री खीमचंद एवं संपूर्ण संघ का आदर और स्वागत करने में किसी प्रकार की कोई न्यूनता नहीं रखी। इस विशाल और विराट् मेले को देखकर वे भी रोमांचित थे और मुक्तकंठ से जैन समाज की दानवीरता, प्रभुभक्ति और समर्पण की प्रशंसा करते थे। समारोह के अंतर्गत समय–समय पर उनकी उपस्थिति कार्यकर्ताओं और भक्तों के मनोबल को ऊँचा उठाती थी। यद्यपि खीमचंद शाह एवं उनकी टोली संपूर्ण व्यवस्था लेकर बम्बई से प्रस्थित हुई थी, पर प्रतापसिंह ठाकुर अपने कर्त्तव्य, प्रसन्नता औरा अहोभाव से सहयोग कर रहे थे।

लाखों व्यक्तियों के जन समूह को किसी भी प्रकार की परेशानी न हो इस हेतु बड़े–बड़े तंबुओं के बाहर बड़ी–बड़ी पानी की कोठियां रख दी गयी। उपचार हेतु विशिष्ट वैद्यों की व्यवस्था थी परन्तु वातावरण इतना पवित्र था, परमाणु इतने निर्मल थे कि किसी को सिरदर्द का अहसास भी नहीं हुआ।

वैसे संपूर्ण संघ की समग्र व्यवस्था सेठ खीमचंद शाह की तरफ से ही थी। साथ ही प्रतिष्ठा समारोह में लगातार 18 दिन तक तो संपूर्ण फलेचुन्दड़ी का आयोजन भी रखा गया था। फलेचुन्दड़ी से तात्पर्य है 36 कौम को सेठ की तरफ से भोजन। इस अवधि में कोई भी अपने घर चूल्हा नहीं जला सकता था।

रसोडे के आगे सात फुट का चबूतरा बनाया गया था और उस चबूतरे पर 35 फुट लम्बा बांस खड़ा किया, जिस पर जैन धर्म की ध्वजा खीमचंद सेठ ने फहरायी थी। यह फहराती ध्वजा इस बात का प्रतीक थी कि शहर में कोई आयोजन हो रहा है। इसके उपलक्ष्य में सभी कौमों को भोजन का आमंत्रण है।

प्रतिष्ठा की निशानी यह धर्मध्वजा, जब पुरवाई धर्मशाला का निर्माण कराया गया, तभी समाप्त हुई थी। चारों और मानवों की श्रृंखला और मानवों का समूह ही नजर आता था। कभी भक्ति की तल्लीनता तो कभी आराधना का आनंद छलक रहा था। स्वयं सेवकों की टोलियां पांवों पर खड़ी थी कि कब कोई सेवा का अवसर मिले।

लगभग दो माह तक दो लाख की कुल संख्या, जिनमें यात्री, व्यवस्थापक और मजदूर सम्मिलित है, की व्यवस्था असंभव और आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। किसी मानवीय शक्ति और पुरुषार्थ द्वारा इतना विराट् आयोजन असंभव लगता है, वह भी उस युग में जब सारी व्यवस्था मानवीय

हाथों से ही संभव थी, निश्चित ही कल्पित नजर आती है, पर दूसरे ही क्षण सत्य का उजाला आँखों के सामने फैल जाता है। जहाँ श्रद्धा, संपत्ति और क्षमता हो, वहाँ असंभव कुछ भी नहीं है। फिर भी परम्परा से ऐसा कहते हैं कि मोतीशा की आत्मा अदृश्य रूप से व्यवस्था की सफलता में सहयोगी बनी थी। मोतीशा व्यावहारिक दृष्टि से मृत्यु को प्राप्त हुए थे पर यथार्थ में उनकी उपस्थिति प्रत्येक कार्यक्रम में अनुभूत होती थी। वे उस समारोह की सतत् चौकसी कर रहे थे। न बीमारी, न अव्यवस्था, न उपद्रव, यह सब अदृश्य सत्ता के कारण ही संभव था। इतनी पवित्रता....इतना आनंद.....इतनी उमंगें.....इतनी उदारता.....पर इन सबके बीच एक ऐसी घटना घटी जिसने सारे आनंद को छिन्न–भिन्न कर दिया।

श्रीमती सेठानी दीपादेवी, जिसने पति मृत्यु की घटना को भी पति के आदेश के समक्ष दबा दिया था, जिसने मात्र मोतीशा के अंतिम आदेश को दर्द का जहर पीते हुए भी पूर्णतः साकार करके वीरांगना का आदर्श प्रस्तुत किया था, यकायक ही गंभीर हालात की शिकार हो गयी। मन की भावनाएं आखिर कहाँ तक दबती? वह मोतीशा की मृत्यु के साथ ही वास्तविक रूप से तो समाप्त हो ही गयी थी। मात्र हाडमांस का चलता–फिरता पिंड मौजूद था। अपने वजूद के साथ लम्बे समय वह अन्याय नहीं कर सकी। जब से मोतीशा ने शरीर छोड़ा था, वह अंदर ही अंदर गीली लकड़ी की तरह सुलग रही थी। परिवार की प्रसन्नता के लिए वह

होठों पर जबरन मुस्कान अवश्य ले आती थी पर घुटन.... अंदर ही अंदर जलते रहना, रात्रि के सन्नाटे में मोतीशा की यादों में व्यथित होना ही उसका जानलेवा हो गया।

परमात्मा के स्मरण के साथ ही सभी को यथावत् कार्य में लगे रहने की प्रेरणा देने के साथ ही वे संघमाता सिद्धाचल की शीतल और आनंदमयी छाँव में दिवगंत हो गयी। यह घटना ऐसे घटी, जैसे वह अपने पति को खुशियों भरे माहौल की अग्रिम सूचना देने गयी हो। वातावरण में पुनः मायूसी छा गयी। खीमचंद सेठ व गुलाबदेवी के दर्द की कोई सीमा नहीं रही। मात्र कुछ ही माह की अवधि में वे अपने माता–पिता के वियोग की आग को सहने के लिए मजबूर थे, परन्तु वे दीपादेवी की भावुक भावनाओं से भी परिचित थे। जिस समय संघ बम्बई से प्रयाण कर रहा था, उस समय भी दीपादेवी का स्वास्थ्य अनुकूल नहीं था, परन्तु उन्होंने स्वास्थ्य पर अतिक्रमण करते हुए पालीताणा की यात्रा का प्रवास किया था।

व्यवस्थापक मंडल धर्मश्रद्धा से ओत–प्रोत था, अतः दीपादेवी की मृत्यु दर्द का कारण अवश्य बनी पर धर्म की आराधना में बाधक नहीं बनी। आचार्य श्री जिन महेन्द्रसूरि, जिनसे सेठ स्वयं प्रतिष्ठा का वचन ले चुके थे, उनके उपदेशों ने भी संघ को दिशा दी एवं मृत्यु को महोत्सव के रूप में परिणत करने को प्रेरित किया। शाही एवं सरल स्वभावी खीमचंद सेठ तो परम गुरुभक्त और आराधक थे,

अतः गुरु आज्ञा को ब्रह्म वाक्य के रूप शिरोधार्य कर दिया। मृत्यु की मायूसी के बादल छँट गए और महोत्सव की रंगबिरंगी आभा चारों ओर छितराने लगी।

अंजनशलाका प्रतिष्ठा में परमात्मा के सम्पूर्ण जीवन को अनेकों पात्रों द्वारा साकार किया जाता है। विशाल मंडप में पंच कल्याणक की उजवणी प्रारंभ हुई। परमात्मा के माता–पिता बनने का सौभाग्य खीमचंद व गुलाबदेवी को मिला। माघ कृष्णा दशमी को जलयात्रा का वरघोड़ा आयोजित किया गया। सुसज्जित रथ में धर्म पत्नी सहित खीमचंद सेठ आसीन हुए।

माघ कृष्णा बारस के दिन कुंभ स्थापना की गयी। कुंभ स्थापना के साथ ही रात्रि जागरण प्रारंभ हो गए। नित्य नयी–नयी प्रभावना होती। रात्रि जागरण में पुरुष एवं महिला वर्ग दोनों भाग लेते। काफी लोग गुजराती थे, अतः डांडिया रास में सभी की विशेष रूचि थी। मुहूर्त के अनुसार ही नवग्रह, दशदिक्पाल पूजन आदि भी समारोह के साथ सम्पन्न किए गए। समारोह के तीसरे दिन नद्यांवर्त पूजन, चौथे दिन क्षेत्रपाल पूजन आदि सम्पन्न हुए।

पंच कल्याणक का साक्षात् समारोह दर्शनीय था। जनमेदिनी कुछ समय के लिए भूल गई कि वह अन्य नहीं अपितु अनेकों विशिष्टताओ के साथ सजीव पात्रों द्वारा सत्य के प्रतिबिम्ब को देख रही है। पात्रों की साज–सज्जा, उनके संवाद, मंच सज्जा इतनी सटीक थी कि अतीत साक्षात्

प्रतीत हो रहा था।

सर्वप्रथम च्यवन कल्याणक समारोह मनाया गया। इतिहास और आगमों में वर्णित चौदह महास्वप्नों का अवतरण, उनका महारानी मरुदेवी बनी गुलाब देवी द्वारा दर्शन, नाभि राजा बने खीमचंद सेठ के समक्ष स्वप्न कथन आदि की सांगोपांग प्रस्तुती अत्यंत भावप्रवण बनी थी। दर्शक उस प्रसंग को देखकर मुग्ध हो रहे थे।

जन्म कल्याणक के दौरान 56 दिक् कुमारियों द्वारा विविध प्रकार से सूतिकर्म सम्पन्न करते हुए अपने आनंद की अभिव्यक्ति, सौधर्मेन्द्र द्वारा स्वयं के पांच रूपों का निर्माण, चौसठ इन्द्रों द्वारा प्रभु का मेरुपर्वत पर जन्मोत्सव आदि का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया। इसकी प्रस्तुति देखकर जैन और जैनेतर समाज ने आश्चर्य से दाँतों तले अंगुलियां दबा दी।

प्रभु का सुनंदा और सुमंगला के साथ विवाह सम्पन्न कराया गया। प्रभु की (अपूज्य) प्रतिमा, जिसे आधार बनाकर सारी अंजनशलाका संपन्न की जा रही थी, उसे लेकर खीमचंद शाह हाथी के होदे पर बैठकर बारात के साथ सेठ अमरचंद दमणी के वहाँ पहुँचे, जो कन्या पक्ष की भूमिका निभा रहे थे। वहाँ परमात्मा का शादी का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। समस्त व्यावहारिक रस्मों का निर्वाह किया गया। दहेज में बहुमूल्य सामग्री अर्पित की गयी। अमरचंद दमणी कुछ पल तो विस्मृत हो गए कि कन्या के वे वास्तविक पिता

न होकर मात्र रोल अदा कर रहे हैं। उन्होंने उसी स्तर पर मान–सम्मान और प्रसन्नता अभिव्यक्त की, जैसी अपने वास्तविक समधी के साथ की जाती है। कुछ पलों का भी यह अहसास जीवन का अनुपम आनंद होता है कि वे साक्षात् परमात्मा को दामाद रूप में प्राप्त कर रहे हैं।

बारात के साथ आयी महिलाओं ने शादी के मांगलिक गीत गाए जिन गीतों को श्रवण कर उपस्थित जनता ने निर्दोष आनंद की अनुभूति की। हास्य रस चारों ओर बिखर गया, क्योंकि विवाह के गीतों में आपस में समधी लोग जी भरकर मजाक और व्यंग्य करते हैं, जिसे आनंद और मुस्कान के साथ सुना जाता है।

क्रमशः प्रभु का राज्याभिषेक मनाया गया। नाभिराजा और मरुदेवी माँ का रोल कर रहे खीमचंद और गुलाबदेवी ने प्रभु का विशाल समारोह के साथ राज्याभिषेक किया। प्रभु प्रतिमा पर खीमचंद शाह की पुत्री ने बहिन बनकर राज्यतिलक किया। राजा बने खीमचंद शाह ने अपनी पुत्री को भाई के राज्याभिषेक की मंगलबेला में जी भरकर आभूषण दिए।

राज्याभिषेक के पश्चात् प्रभु का दीक्षाभिषेक समारोह मनाया गया। दीक्षा के उपकरण की छाब महारानी बनी गुलाब देवी ने उठायी और प्रभु को लेकर अलंकृत हाथी पर नाभिराजा बने खीमचंद शाह आसीन हुए। विशाल वरघोड़ा मुख्य–मुख्य मार्गों से होता हुआ पुनः समारोह स्थल पर

आकर विसर्जित हो गया। सम्पूर्ण मार्ग से सम्राट की उदारता को भी शर्मिन्दा करे, इतना अधिक वर्षीदान दिया। दीक्षा वक्त पर आचार्य भगवंतश्री जिन महेन्द्रसूरि ने प्रभु का केशलोचन किया और लोच के केश मां के आंचल में डाल दिए।

हर्ष से दमकता नाभिराजा का चेहरा आज दर्द और विषाद की रेखाओं से भरा हुआ था। उन्हें वास्तव में यही लग रहा था कि उनका लाडला बेटा आज संयम पथ पर प्रस्थान कर रहा है। जिस बेटे को गोद में खिलाया, विवाह और राज्याभिषेक की क्रियाएँ सम्पन्न की, वहीं आत्मकल्याण की प्रशस्त भावना से संयम पथ पर आरूढ़ हो रहा है। बेटे के वियोग की कल्पना से महाराजा नाभि की आंखें आंसू बरसा रही थी। सारा श्रृंगार फीका हो गया था। चेहरे पर विवशता के चिन्ह स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। वे चाहकर भी स्वयं को संतुलित नहीं रख पाए। हृदय रो पड़ा। जब महाराजा की यह स्थिति थी तो महारानी में व्याकुलता होनी ही थी। महारानी की हिचकियां बंध गईं। वे बार–बार आंसू पोंछ रही थीं, पर आंसू थे कि रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे। महाराजा एक ओर अपने आंसू पोंछ रहे थे तो दूसरी ओर महारानी को सांत्वना दे रहे थे। उपस्थित सारी जनता व्याकुल और व्यथित हो रही थी। साक्षात् दीक्षा का वातावरण बना हुआ था। दीक्षा वेला में इन्द्र महाराजा ने कीमती देवदुष्य वस्त्र परमात्मा के कंधे पर डाला।

सजीव पात्रों द्वारा की गयी इस समस्त प्रस्तुति ने दर्शकों को रोमांचित व आश्चर्य मुग्ध कर दिया। प्रस्तुति की वेला में जनता विविध भावों से तरंगित होती रहती थी। आश्चर्य और आनंद से उनकी रोमराजि उल्लसित थी। पालीताणा तीर्थ इन दिनों प्रभुमय और ऋषभदेवमय हो रहा था। मात्र प्रतिष्ठा और समारोह की ही गूंज थी। आलोचना के स्वर लाख ढूँढे भी नहीं सुनने में आ रहे थे। चारों ओर मोतीशा के नाम के गीत गाए जा रहे थे। डोली वालों ने भी अपनी लोकभाषा में मोतीशा के गीत बनाए। प्रत्येक जुबां पर मात्र एक ही नाम चढ़ा हुआ था।

माघ शुक्ला दशमी, बुधवार रात्रि को बारह बजे इक्कीस पल पर अंजनशलाका विधि आचार्य भगवंत श्री जिन महेन्द्रसूरि के द्वारा, तपागच्छ के श्रीपूज्य श्री धनेश्वर सूरि (उस समय उस संप्रदाय में कोई आचार्य नहीं था) सागरगच्छ के आचार्य शांतिसागर की उपस्थिति में सादर सम्पन्न की गई। पंद्रह दिन का यह अंजनशलाका का समारोह नीचे सम्पन्न हो जाने के पश्चात् उन अंजनशलाका की हुई प्रतिमाओं को गिरिराज पर चढ़ाना व उन्हें गद्दीनशीन करना अवशिष्ट था।

माघ शुक्ला दशमी की शाम श्री खीमचंद एवं श्रीमती गुलाबदेवी संपूर्ण संघ के साथ प्रभु प्रतिमा के समक्ष उपस्थित हुए एवं परमात्मा से शिखर पर ले जाने की अनुमति मांगी।

दूसरे दिन चतुर्विध संघ के साथ परमात्मा की समस्त प्रतिमाओं को ऊपर ले जाने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। बिंब ले जाने वाले सारे श्रद्धालुजन पवित्र वस्त्रों से आवेष्टित थे। दशांग धूप से सारा शिखर महक रहा था। हाथों में दीपक थे। परमात्मा के बिंब की डोलियां बड़ी सावधानी से तैयार की गई थी। आशातना, पवित्रता और सुरक्षा के प्रति पूर्ण सतर्क थे। अब समारोह का केन्द्र मोतीशा की टूंक थी।

मोतीशा की टूंक में विशाल मंडप था। अन्य जितने भी जिनालय थे, उनमें भी छोटे मंडप बनाए गए ताकि उसमें मंदिर से संबंधित सारी सामग्री, बिंब, ध्वजादंड, घंट आदि प्रतिष्ठा तक रखे जा सके। वहां भी पुनः कुंभस्थापना, अठारह अभिषेक, नवग्रह, दशदिक्पाल पूजन, नंद्यावर्त पूजन आदि विधि की गई। अंतर इतना ही रहा कि तलहटी में किया गया सारा समारोह मात्र मोतीशा की ओर से था, जबकि शिखर का आयोजन मंदिर निर्माताओं का था। सभी मंदिर निर्माताओं ने अपने–अपने मंदिर में अपनी ओर से आठ दिन का समारोह आयोजित किया।

अंत में वह पवित्र और बहुप्रतीक्षित पल भी आ गया, जिसके लिए लाखों हृदय बेचैन थे। पूरे भारत की जिस समारोह पर नजरें स्थित थी, वह अवसर उपस्थित हो गया। लाखों लोगों की साक्षी से पूर्ण श्रद्धा और पूर्ण उमंग से भरकर खीमचंद शाह ने भक्तिपूरित हृदय से तुमुलध्वनि के बीच नियत समय पर ऋषभदेव परमात्मा को स्थापित किया।

इसी के साथ गुलाबदेवी ने पुंडरिक गणधर को एवं अन्य सभी मंदिर निर्माताओं ने अपने–अपने मंदिर में प्रभुबिम्बों को स्थापित किया। जैसे ही खीमचंद शाह ने परमात्मा को प्रतिष्ठित किया, मोतीशा की दिव्यात्मा ने केशर की अमीवृष्टि की। पूरा शिखर जयध्वनि, शंखध्वनि और घण्टनाद से गूंज उठा। आत्मविस्मृत जनता हर्षविभोर हो नृत्य करने लगी। मीरा ने तो घुंघरू बांध नृत्य किया था पर प्रभुभक्त उपस्थित जनता बिना घुंघरू बांधे ही प्रभु भक्ति में आनन्दमग्न होकर नाचने लगे। न होश था, न जोश। मात्र प्रभुभक्ति की तन्मयता थी।

आचार्य भगवंत ने वासक्षेप पूजाकर प्रतिष्ठाविधि को पूर्णता प्रदान की और इसी के साथ मोतीशा को दिया उनका वचन पूरा हुआ।

यद्यपि प्रतिष्ठाविधि में किसी प्रकार की न्यूनता न थी और न किसी प्रकार से आदेशों की अवहेलना थी, फिर भी वासक्षेप डालते समय आचार्य श्री की आंखें डबडबाए बिना नहीं रही। मोतीशा का अक्स उनकी कल्पनाओं में उभर आया और साथ ही उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा, संवेदनशीलता, उदारता, गुरुभक्ति और प्रभुभक्ति स्मृतिपथ में उभर आई। उनके हाथों में कंपन आ गया। चुपचाप उन्होंने आंसू पोछें, भावों पर नियंत्रण किया और प्रभु स्तवनों में लीन हो गए।

लोग जिस समय मूलमंडप से बाहर आए, ऐसा कोई शख्स नहीं था, जिसने इस आयोजन के सूत्रधार मोतीशा को

याद न किया हो। होठों पर जहाँ आनन्द और तृप्ति की मुस्कान थी, वहीं आंखों में नमी थी। सभी के होठों से बरबस यह स्वर निकल गया, काश! आज सेठजी स्वयं होते। पर उन्हें क्या पता था कि हमारे इस आयोजन की निर्विघ्न समाप्ति की डोर मोतीशा की दिव्यात्मा ही तो परदे में रहकर थाम रही थी। प्रतिपल उनकी दिव्यात्मा आनन्द के आंसुओं से अपने लाडले को और अपनी मित्र मण्डली को नहला रही थी। उनके अधूरे कार्य को अतिशीघ्र पूर्णता के मुकाम पर पहुंचाने के लिए वे आंखें बलिहारी भी हुई जा रही थीं।

सेठ खीमचंद और समस्त व्यवस्थापक मंडल भी इतने उच्च स्तरीय कार्य के शांतिपूर्वक सम्पन्न होने पर निश्चिंत हो रहे थे। मोतीशा की अंतिम इच्छा को छः माह के अंदर ही अंदर उन्होंने पूर्ण कर दिखाया था। असंभव को भी संभव बनाकर अद्‌भुत और अनुकरणीय इतिहास का सर्जन किया था।

प्रतिष्ठाविधि सम्पन्न होने के बाद आचार्य श्री जिन महेन्द्रसूरि ने मूल दादा दरबार में चतुर्विध संघ की उपस्थिति में सपत्नीक खीमचंद शाह को अपनी ओर से संघपति की माला पहनाकर संघवी की पदवी अर्पण की। इस आयोजन के आयोजक यद्यपि खीमचंद शाह थे, परन्तु कार्यक्रम की सारी डोर अमरचंद दमणी, जो सम्पूर्ण व्यवस्था के संयोजक थे, उनके एवं सलाहकार कीका भाई, बालाभाई, हेमाभाई, हठीसिंह केसरीसिंह, दीपचंद भाई के हाथों में ही थी। सम्पूर्ण

व्यवस्था का नियंत्रण उन्होंने बड़ी ही सूझबूझ के साथ किया था। खीमचंद शाह तो एक शाही ठाठ से ही रहे। व्यवस्था पर इतनी सूक्ष्मता से ध्यान रखा जाता था कि कहीं किसी को शिकायत न हो और न परेशानी हो।

कार्य दुरुह और असंभव था पर साहस और संकल्प की दृढ़ता से संभव बन गया। वास्तव में यह मोतीशा की मानवीय क्षमता का एक नमूना है। मानव स्वयं में एक परिपूर्ण ऊर्जा है। वह चाहे, और निर्णय कर ले तो अकल्प्य भी संभव हो जाता है। दिनकर के शब्दों में–

"खम ठीक ठेलता है जब नर,
पर्वत के जाते पैर उखड़।
मानव जब जोर लगाता है
पत्थर पानी बन जाता है।।"

हमारी लेखनी के प्राण, अक्षय ऊर्जा के स्वामी, प्रखर पुरुषार्थ के धनी, परम पुण्यवान मोतीशा ने मात्र जैन समाज में ही नहीं, संपूर्ण विश्व के रंगमंच पर अपनी क्षमता की अद्‌भुत मिसाल कायम कर ली थी। वे स्वयं इतिहास थे। उनका जीवन, उनके जीवन की क्षमता मात्र मानव जगत के लिये ही नहीं , संपूर्ण प्राणी जगत के लिये उपयोगी थी। बम्बई की पांजरापोल आज भी मोतीशा की करुणा और स्नेह की संवेदनशीलता का अमरस्तंभ बनी हुई है।

उनके जीवन का प्रत्येक पहलू अभिनंदनीय था। वे धार्मिक थे, तो सामाजिक भी थे। वे राष्ट्रभक्ति की ऊर्जा से दैदीप्यमान थे, तो पशु पक्षियों की करुणा से भी पिघल उठते थे। उनके जीवनकाल में निर्मित बम्बई के सभी मंदिर, पालीताणा में निर्मित मोतीशा की टूंक उनकी धार्मिक आस्था का उद्‌गान करती हैं, वहीं बम्बई की पांजरापोल उनके हृदय की कोमलता और परदुःखकातरता की अद्‌भुत ध्वजा हैं, जो उनकी कीर्ति की निर्मल चांदनी को चारों ओर विस्तार देती हैं।

वे समय–समय पर सरकार को भी आवश्यकतानुसार सहयोग करते रहते थे। एक बार उन्होंने लगभग पांच–छह लाख भेंट स्वरूप दिये थे, और प्रतिफल में सरकार ने उन्हें

'बेरोनेट' की पदवी से सम्मानित किया था। इस अलंकरण से सम्मानित होने वाले वे प्रथम भारतीय थे।

बेरोनेट पदवी एक अधिकार संपन्न पदवी है। इसमें मात्र प्रशस्ति पत्र देकर अथवा नाम का विस्तार करके ही तृप्त नहीं होते अपितु राष्ट्रपति की तरह ही उसे साल में दो व्यक्ति की फांसी की सजा माफ करने का अधिकार भी होता है। जिस रास्ते से बेरोनेट गुजरता हो, उस रास्ते में किसी को फांसी नहीं हो सकती। अगर किसी को फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया हो और उस समय भी यदि बेरोनेट वहाँ से गुजरें तो उस व्यक्ति को उसी स्थिति में नीचे उतार दिया जाता है।

मोतीशा ने इस पदवी का गाहेबगाहे उपयोग भी खूब किया। वे जिस राह से होते हुए घर से दुकान जाते थे, उसी रास्ते में पशुओं का बूचड़खाना चलता था। मोतीशा का कोमल मानस इसे सहन नहीं कर सका। उन्होंने तत्कालीन अंग्रेज सरकार को दरखास्त देकर उसे बंद करवा दिया।

यह बेरोनेट पद उनके लिए मात्र अलंकरण नही था, अपितु उनके रग–रग में बहती करुणा के लिये उपयोगी साधन था।

बेरोनेट के रूप में उनकी करुणा को एक व्यापक क्षेत्र प्राप्त हो गया था। अधिकारों को पाकर उन्होंने अपनी परदुःखकारता का व्यापक परिचय दिया था। मानवीय मूल्यों

में उनकी गाढ़ आस्था थी और इस आस्था को कदम–कदम पर उन्होंने साकार भी किया था।

दादा श्री जिनकुशल सूरि के वे परम भक्त थे। संकट की घड़ी में उन्होंने गुरुदेव का ही शरण लिया था और गुरुदेव ने ही उनकी शुभ और प्रशस्त भावनाओं को मार्गदर्शन दिया था। यद्यपि टूंक की प्रतिष्ठा में अन्य सम्प्रदाय के आचार्य आमंत्रित थे परन्तु प्रतिमाओं पर उन्होंने अपनी गुरुपरम्परा के आचार्य के ही नाम अंकित करवाये थे। इससे जहाँ उनकी साम्प्रदायिकता, सौहार्द्रता अभिव्यक्त हुई, वहीं उनकी गच्छनिष्ठा और गुरुभक्ति भी अपने स्थान पर सुरक्षित रही। भायखला की दादावाडी तो उन्होंने बनायी ही परन्तु मद्रास की विशाल दादावाड़ी के लिये भूमिक्रय हेतु भी 50,000 की विशाल राशि उन्होंने अर्पित की।

उनके जीवन काल में बम्बई का एक भी ऐसा काम नहीं था, जिसमें उनकी सहभागिता नहीं हो। कार्य चाहे धार्मिक हो या सामाजिक, राजनैतिक हो या व्यावहारिक, उनकी उदारता की मिसाल थी।

राग और विराग के वे सेतु थे। यद्यपि विरक्ति उनका लक्ष्य थी परन्तु पारिवारिक स्नेह और आत्मीयता से भी वे लबालब थे। पत्नी दीपा उनकी मात्र पत्नी ही नहीं अपितु विचारों की और हृदय की सहचरी थी। पत्नी वासना अथवा कामना पूर्ति का माध्यम न होकर उनके लिये जीवन की मधुर सरिता थी। जीवन के प्रत्येक पल को उन्होंने प्रेममय

जीया। पत्नी से उचित सलाह मशविरा करके ही उन्होंने अपने निर्णय को क्रियान्वित किया था। दीपशिखा सी निर्मल और पवित्र दीपादेवी भी उनके जीवन की प्रेरणा बनी थी। लाखों का दान मोतीशा ने अपने हाथों से किया था पर दीपा में नारीसुलभ कृपणता के स्थान पर और अधिक उदारता थी।

पुत्री का अभाव उनके वात्सल्यपूरित मानस को प्रारंभ में अवश्य अखरता था पर गुलाबदेवी के आगमन ने उनके वात्सल्य भीगे हृदय को पूर्णता से जगमगा दिया था। उन्होंने पुत्रवधु को हमेशा बेटी का ही वात्सल्य प्रदान किया। अपनी पुत्रवधु को बेटी का अनमोल वात्सल्यामृत का पान तो करवाया ही पर उसकी जायज आकांक्षा और कामना की पूर्ति में भी कभी पीछे नहीं हटे। गुलाबदेवी ने भी अपने ससुर के स्नेह का नाजायज लाभ उठाने का कोई उपक्रम नहीं किया। प्रत्येक नजरिये से मोतीशा अपने युग की ज्योति थे, जिसके प्रकाश को आज भी यत्र–तत्र सर्वत्र शताब्दियों बाद भी हम महसूस करते है।

परिवर्तिनी संसारे, मृत को वा न जायते।
स जातो येन जातेन, याति वंश समुन्नतिम्।।"

यह श्लोक मोतीशा के व्यक्तित्व पर संपूर्णतः सार्थक है। उनके जन्म से मात्र नाहटा गौत्र ही नहीं, अगणित मानव अनुग्रहित और उपकृत हुए थे। मानव ही क्यों, पशु और पक्षी जगत भी उनके अनुग्रह से वंचित न रहा।

सेठ मोतीशा की टूंक की विशालता, नयनरम्यता एवं कला सौंदर्य के विवेचन की निःसंदेह सीमा है। मैं अपनी समग्र ऊर्जा और प्रतिभा द्वारा भी इसके सौन्दर्य को शब्दों की सीमा में बांधने में असमर्थ हूं। इसका सौंदर्यपान तो निःसंदेह वहां प्रत्यक्ष जाकर ही किया जा सकता है। अगर कुछ देर तन्मयता, एकाग्रता और समग्रता से स्थितप्रज्ञ होकर इस विशाल टूंक के दर्शन किये जाएं तो आंख और हृदय को परम आनंद की तृप्ति हो सकती है।

इस भव्यतम, दर्शनीय, वंदनीय और पूजनीय निर्माण का निर्णय लेकर उन्होंने अपने जीवन और जीवन से संबंधित समस्त ऊर्जा को सार्थक और मुल्यवान बना दिया था।

मोतीशा का मंदिर– मोतीशा का यह मंदिर तीन गंभारा युक्त है। इसके शिखर में तीन मंजिल हैं और शिखर भी तीन है। शिल्प, स्थापत्य और कला सौंदर्य में यह मंदिर मुख्य है। इसके मूलनायक श्री ऋषभदेव हैं। इसमें रूपे की पांच, धातु की चार और आरस (पत्थर) की 65 प्रतिमा है। दोनों ओर क्रमशः शांतिनाथ और सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा है।

इसके रंगमंडप में ऊँ के आरस के चार गोखले है। मूलनायक के ठीक सामने स्वयं मोतीशा और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती दीपादेवी के गोखले है। मूलनायक की

गादी के नीचे निम्न शिलालेख उपलब्ध है–

"सं 1893 मिते शाके 1758 प्रवर्त्तमाने माघशुक्लदशम्यां तिथौ बुधवासरे मुंबइबिंदरवास्तव्य ओशवंशे नाहटागोत्रे सेठ साकरचंद तत्पुत्र संघनायक सेठ अमीचंदेन श्री शांतिनाथ बिंब कारितं खरतरपीपलिया गच्छे भ.। जं.। यु। श्री जिनदेवसूरि तत्पट्टे भ श्री जिनचंद्रसूरि विद्यमाने सपरिकरसंयुते जंगमयुगप्रधान–भट्टारक श्री जिनमहेन्द्रसूरिभिः प्रतिष्ठितं च. खरतरगच्छे पालीताणानगरे।।"

इसी प्रकार के लेख क्रमशः शांतिनाथ और सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा पर भी उत्कीर्ण है। शांतिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण आलेख–

"सिद्धचक्राय नमः। संवत् 1893 प्रभृते वर्षे शाके 1758 प्रवर्तमाने मासोत्तममाघमासे शुक्लपक्षे दशम्यां बुधवासरे श्री पादलिप्तनगरे गोहिलवंश श्री प्रतापसिंह विजयिराज्ये श्री मुंबइबिंदरवास्तव्य ओशवाळज्ञातीय वृद्धशाखायां नाहटागोत्रे शेठ अमीचंद तद् भार्या रूपाबाई तत्पुत्र शेठ मोतीचंद तद् भार्या दीवाळीबाइ तत्कुक्षीसमुद्भूति पुत्ररत्न श्री शत्रुंजयतीर्थयात्रा–विधानसंप्राप्तश्रीसंघपतितिलक नवीनजिनभवन–बिंबप्रतिष्ठासाधर्मिकवात्सल्यादिभिःवित्तसफली कृत संघनायक खेमचंदजी सपरिवारयुतेन श्री

सिद्धाचलोपरि श्री आदिनाथबिंब कारितं खरतरपीपलीआ गच्छे श्री जिनदेवसूरिपट्टे श्री जिनचंद्र सूरिविद्यमाने सपरिवारयुते प्रतिष्ठितम् च. श्रीबृहत्खरतरभट्टारकगच्छे जं। यु.। भ। श्री जिनहर्षसूरिपट्टप्रभाकरंभ श्रीजिनमहेंद्रसूरिभिः"

सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा पर आकीर्ण लेख निम्न है–

'सिद्धचक्राय नमः। संवत् 1893 मिते शाके 1758 प्रवर्तमाने मासोत्तममाघमासे शुक्लपक्षे दशम्यां तिथौ बुधवासरे श्री मुंबइबिंदरवास्तव्य ओसवंशे वृद्धशाखायां नाहटागोत्रे शेठ अमीचंद तद् भार्या रूपाबाई कारितं खरतरपीपलीआगच्छे श्री जिनचंद्रसूरिभिः विद्यमाने जं। यु.। भ। श्री श्रीजिनमहेंद्रसूरिभिः प्रतिष्ठितं खरतरगच्छे"

इस मुख्य मंदिर में रंगमंडप के दायीं ओर सेठ मोतीशा एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती दिवाली (दीपा) देवी की भावभरी प्रतिमाएँ हैं, जिनपर निम्न शिलालेख अंकित हैं–

"सं. 1893 माघशित 10 बुध श्रीमुंबइ वा. ओशवाळ ज्ञातिय वृद्ध शा. नाहटागोत्रे शेठमोतीचंद तद् भार्या बाई दीवाळीका मूर्ति शेठ खेमचंदे कारितं खरतरपीपलीआ गच्छे।"

रंगमंडप के बायीं ओर अपनी मां रूपा, जिनका सपना तीर्थ निर्माण का प्रेरक बना, उनकी प्रतिमा है। उस पर निम्न

लेख अंकित हैं–

"सं. 1903 ना शाके 1768 ना प्र. माघमासे सुदम पक्षे 5 मी तिथौ भृगु वा. श्रीमुंबइबंदरे वास्तव्य ओशवालज्ञातिय नाहटागोत्रे सा श्री प शा. मोतीचंद तस्य माजी बाइ रुपबाइनी मूर्ति शाह क्षेमचंदेन भरापीतूं. पटहतः खरतर पीपलीआ गच्छे भट्टारक श्रीजिनमहेंद्रसूरीश्वरजी राजे. श्री।"

2. इस मंदिर के ठीक सामने ऋषभदेव के पौत्र पुंडरिक गणधर को स्थापित किया गया है। अगर यह कहा जाय कि कला एवं सौंदर्य की दृष्टि से पालीताणा तीर्थ पर विराजित समस्त मूर्तियों की अपेक्षा यह प्रतिमा सर्वश्रेष्ठ है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

ऐसा नियम है कि मूलनायक की नासिका का अग्रभाग एवं पुण्डरीक स्वामी की नासाग्र का भाग एक ही भूमिका (लेवल) का होना अनिवार्य है। इसमें एक धागे जितना अंतर भी अशुभ माना जाता है। कैसे इसका माप संभव हुआ होगा, निःसंदेह यह एक पहेली है। पर यह सत्य भी है कि अंतर एक धागे का भी नहीं है।

मोतीशा की स्वयं की यह दृढ़ मान्यता थी कि इतने विशाल और असंभव निर्माण में मात्र उनका तन, मन और धन ही सहयोगी नहीं है, अपितु स्वर्गीय माता–पिता का आशीर्वाद, मां अंबिका एवं सिद्धाचल तीर्थ के अधिष्ठायक

कपर्दी यक्ष का अनुग्रह भी अदृश्य रूप से उनका संबल और आधार है। इस मंदिर में अन्य 13 आरस की, तीन रौप्य की व चार धातु की प्रतिमाएँ है।

3. मोतीशा की टूंक में प्रविष्ट होते ही बायीं ओर वीरचंद भाई के मंदिर के ठीक सामने बाबू प्रतापमल जोइतादास (बॉम्बे) का चौमुखाजी का मंदिर है। इनमें मूलनायक पद्मप्रभुजी है। इसमें पाषाण की 35 व धातु की एक मूर्ति है। इस मंदिर से लगती 11 देहरियां अग्नि और नैऋत्य कोण में है। यह दो मंजिल का है। इसकी बनावट अत्यंत सुंदर है। यह मुख्य मंदिर के बायीं ओर होने से टूंक की शोभा को अत्यंत रमणीय बनाता है।

ये प्रतापमलजी मोतीशा के मामा और मूलनिवासी खंभात के थे। सेठ मोतीशा भी मूल रूप से खंभात के थे। संभवतः प्रतिष्ठा के अवसर पर प्रतापमलजी भी विद्यमान नहीं थे। प्रतिष्ठा समारोह में इनकी पत्नी व इनके पुत्र विमलकुमार की उपस्थिति थी। प्रतिष्ठा के समय ये भी खंभात से पालीताणा का संघ लेकर आए थे।

4. मोतीशा की टूंक में प्रविष्ट होते ही दायीं ओर उत्तर दिशा में सेठ मोतीशा के मुनीम वीरचंदभाई का चौमुखजी का मंदिर है। इसमें मूलनायक ऋषभदेव है। इस मंदिर में 32 पत्थर की व एक धातु की प्रतिमा है। यह भी दो मंजिल का है।

इस चौमुखजी की रचना निःसंदेह आनंददायक है। इसकी स्थापत्यकला आल्हादक है। इसमें एक सुंदर तलघर (बेसमेंट) भी है। इसकी रचना भी दर्शनीय है। इस देरासर को लगती दो देहरीयाँ भी है।

5. कीकाभाई सेठ के मंदिर के सामने मुख्य मंदिर के पीछे उत्तर दिशा में सेठ नानजी जेकरण मांगरोल वालों का सुंदर मंदिर है। इसमें मूलनायक चंद्रप्रभु विराजमान किए गए हैं। इसमें 21 पाषाण की एवं एक धातु की प्रतिमा है। (इनका विवेचन हम मोतीशा की जीवनी में कर आए है।)

इस टूंक के पीछे का भाग बड़े पत्थरों वाला था। वहीं भीम की सीढ़ियां थी। यह भाग अत्यंत ऊँचा होने से उसके मध्य भाग में प्रवेश द्वार के बराबर सामने पीछे की सीढी नहीं रखी जा सकी। ऊपर के मुख्य मंदिर, अमरचंद दमणी के मंदिर व गोधरी कीकाभाई के मंदिर के बीच जो अंतर पड़ा, उस चौक की सीधी लाईन में पीछे डेली रखी गई है, इससे नवटूंक में जाने का रास्ता भी सुगम हो गया है। यह पीछे की डेली सेठ बालाभाई की टूंक के बराबर सामने आती है।

6. सहस्त्रकुट व गणधर पगले से उत्तर दिशा की ओर तीन शिखर युक्त गुलाबबाई का मंदिर है। इसके मूलनायक ऋषभदेव हैं। इसमें 13 आरस की और 15 धातु की प्रतिमाएँ है।

7. सहस्त्रकूट और गणधर पगला की उत्तर दिशा में ही पाटणवाले सेठ प्रेमचंद रंगजी का मंदिर है। यह स्थापत्य कला की दृष्टि से सेठ अमरचंद दमणी, सेठ हठीभाई एवं गोधारी फूलचंद भाई के मंदिर जैसा है। इस मंदिर की अनुपम और सामान्यतः दुष्प्राप्य विशिष्टता है इसका अपना वाघा मंडप। मंडप के तीन ओर द्वार रखकर फरती दीवार जहां निर्मित हो, उसे वाघा मंडप कहते हैं। इसमें एक विशाल तलघर भी है। इसमें मूलनायक पद्मप्रभु हैं। ये सेठ वैसे मारवाड़ी थे। इनका मोतीशा के साथ व्यापारिक संबंध था।
8. पीछे की डेली से आते वक्त (13 नं. की) दक्षिण दिशा में सूरत के सेठ ताराचंद नथुभाई का मंदिर है। इसके तीन तरफ चौकियां हैं। इन चौकियों के तीनों तरफ गंभारे बनाकर उनके ऊपर शिखर बनाए हैं। इसके मूलनायक पार्श्वनाथ है।
9. इसी दिशा में सूरत के सेठ जवेरचंद करमचंद का मंदिर है। इसमें एक गंभारा और तीन चौकियां हैं। इसमें मूलनायक संभवनाथ है।
10. ऊपर के मंदिर दक्षिण दिशा की तरफ सेठ सरूपचंद रामचंद खंभात वालों का एक गंभारे वाला छोटा मंदिर है। गंभारे पर शिखर है और आगे के भाग में मंडप के बदलते दो पद का चौकियों वाला और चैत्यवंदन करने

के लिए पडदीवाला बंद स्थान है। इसके मूलनायक श्री सुपार्श्वनाथ हैं।

11. सेठ सरूपचंद के छोटे मंदिर के दक्षिण की तरफ देहरियों की भमती के पास पाटण के सेठ हीराचंद भूखणदास का मंदिर है। यह मंदिर सुरम्य और दर्शनीय है। यह देवचंद जेचंद के मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। इसके मूलनायक महावीर स्वामी है।

12. मुख्य मंदिर के पीछे दक्षिण दिशा में उत्तराभिमुख गोधावाले सेठ कीकाभाई फूलचंद का मंदिर है। इसमें कोरनी अत्यंत सुन्दर व दर्शनीय है। इसके मूलनायक ऋषभदेव हैं। सेठ मोतीशा के समय कीकाभाई के पिता श्री फूलचंद व कपूरचंद उनके विश्वासपात्र मुनीम थे। सेठ कीकाभाई की दानवीरता बेजोड़ थी।

स्वयं मध्यमवर्गीय होने पर भी अपनी समस्त सम्पत्ति का उपयोग धार्मिक, सामाजिक क्षेत्रों में करके गोधारी समाज का मस्तक ऊँचा किया था।

13. पीछे की डेली की दक्षिण दिशा में सहस्त्रकुट है। उसके उत्तर दिशा में वैसा ही 1452 गणधर के पगलियों का मंदिर और ऊपर चौमुखजी है। यह सूरत के सेठ नेमीचंद केसरीचंद ने बनाया है। गणधरों के चरणों के अतिरिक्त इसमें धर्मनाथ के चरण हैं। चौबीस तीर्थंकरों के कुल गणधरों की संख्या के आधार पर सभी के चरणों की

स्थापना की गई है।

गणधरों के इस मंदिर के पूर्व की तरफ एक ही पंक्ति में सात मंदिर हैं।

14. रायणचरणों की फरती छोटी–छोटी देहरियों की भमती बनाई गई हैं। ऐसी 23 छतरियों के बींच रायणचरणों की छत्री हैं। प्रतिमाएं भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा स्थापित हैं। इनका प्रवेश द्वार आधुनिक है। ये टूंक की स्थापत्य कला से भिन्न हैं, अतः टूंक की शोभा में अभिवृद्धि नहीं कर पाती।

15. सेठ देवचंद कल्याणचंद का मंदिर भी है। ये सूरत के निवासी थे। इसमें मूलनायक अजितनाथ हैं।

16. सेठ अमरचंद प्रेमचंद दमणी का भी मंदिर है। यह भी हठीभाई से मिलता है। इसमें तीन शिखर हैं। इसमें रत्नों का स्वस्तिक है। मूलनायक धर्मनाथ है। सेठ अमरचंद मोतीशा के अंतरंग मित्र व मुख्य सलाहकार के साथ धार्मिक, व्यवहारिक और पुरुषार्थी थे। इस मंदिर निर्माण में काफी संपत्ति उपयोग में आई।

इन्होंने मंदिर निर्माण के साथ ही इसके रख–रखाव हेतु अलग से आर्थिक व्यवस्था की। आज भी उसी अर्थ से इनके मंदिर की व्यवस्था होती है।

17. अहमदाबाद के प्रमुख सेठ श्री हठीसिंह केसरीसिंह का पूर्वाभिमुख पांच शिखर का मंदिर है। इस मंदिर की

स्थापत्य कला आकर्षक व सुन्दर है। मूलनायक धर्मनाथ है। सेठ मोतीशा के साथ इनके गहरे दोस्ताना संबंध थे। सेठ केसरीसिंह साहसी, पुण्यवान एवं कुशल व्यापारी थे। इनका अपना व्यक्तित्व भी अद्‌भुत था। इसकी व्यवस्था आज भी इन्हीं के परिवार से सम्पन्न होती है।

रामपोल में प्रवेश करते समय दाहिनी ओर दो मंदिर हैं। इनकी व्यवस्था मूल टूंक के साथ ही होती है। इनका विवेचन निम्न है–

18. पीछे के भाग की डेली की दक्षिण तरफ सहस्त्रकुट हैं। इसमें धांगध्रा का पत्थर काम में लिया गया है। इस मंदिर का कार्य खूब बारीकी से दर्शनीय हुआ है। शिल्प का नमूना इस मंदिर निर्माण में कारीगरों ने कड़ा परिश्रम किया है। यह मंदिर सेठ नवलभाई सूरत वालों ने बनाया है।

19. शा मोहनलाल वल्लभदास औरंगाबाद वालों की ओर से उनके सुपुत्र स्व. शा शाकरचंद की धर्मपत्नी श्रीमती ओलजाबाई ने बाहर के भाग में दूसरा मंदिर बनाया है। उसकी व्यवस्था सेठ आणंदजी कल्याणजी की पेढ़ी की ओर से होती है। इसके मूलनायक विमलनाथ हैं।

इसके अलावा सेठ प्रतापमल जोइताशाह के मंदिर के पास 13 देहरियाँ और मुनीम वीरचंदभाई के मंदिर के साथ (चौकियों के साथ) दो देहरियाँ हैं।

विश्व का प्रथम राष्ट्रीय मन्दिर